

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178827

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83
S53 S

Accession No. H 3141

Author शर्मा, यादवेंद्र

Title सपना १९५९.

This book should be returned on or before the date
last marked below.



यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

प्रायना



राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली-६

© १९५९ राजपाल एण्ड सन्ज

मूल्य	:	चार रुपए
प्रथम संस्करण	:	सितम्बर, १९५९
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली
मुद्रक	:	हिंदी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

मैं इतना ही कहूंगा

‘सपना’ मेरा नया उपन्यास है।

इस उपन्यास की रचना जीवन के नए पहलुओं के अध्ययन के आधार पर की गई है। उपन्यास सत्य घटनाओं पर आधारित है, कल्पना का सम्बल कला-पक्ष को मुखरित करने के लिए लिया गया है।

उपन्यास मनोवैज्ञानिक है; उन अटूट, साक्षीय सम्बन्धों का दिग्दर्शन कराता है जिन्हें हम चाह कर भी नहीं तोड़ सकते, भूलकर भी नहीं भूल सकते। उन सम्बन्धों के साथ हमें किसी न किसी रूप में जुड़ा ही रहना पड़ता है; चाहे प्यार से अथवा घृणा से।

महान् उपन्यासकार शरत्चन्द्र ने एक स्थान पर लिखा है, ‘जो चले गए हैं, जो सुख-दुख से परे हैं, इस सृष्टि का देना-पावना चुकाकर जो लोकांतरित हो गए हैं, उनकी इच्छा, उनकी चिंता, उनका निर्दिष्ट पथ का संकेत ही क्या बहुत बड़ी चीज है, और जो जीवित हैं, व्यथा-वेदना से जिनका हृदय जर्जरित है, उनकी आशा, उनकी कामना क्या कुछ भी नहीं? मृत की इच्छा ही क्या सदा के लिए जीवित का पथ रोके रहेगी? तरुण साहित्यकार तो केवल इसी बात को कहना चाहते हैं। उनके विचार, उनके भाव असंगत, यहां तक कि अन्यायपूर्ण भी लग सकते हैं, लेकिन अगर वे नहीं बोलते हैं तो बोलेंगे कौन? मानव की वासना, नर-नारी की नितान्त आकांक्षा का विवरण वे नहीं प्रकट करेंगे तो करेगा कौन? मनुष्य को मनुष्य के रूप में कैसे? वह जीवित रहेगा कैसे? ...’

इस कथन में मानव-आत्मा के शिल्पी का तरुण साहित्यकारों को एक आह्वान है और उस आह्वान पर मैं कहां तक अग्रसर हुआ हूं, आप ही निर्णय करेंगे।

परिणय की शुभ एवं मादक मधुर स्मृति से नरोत्तम का अंग-अंग प्रफुल्लित हो रहा था। जीवन के शीर्ण पंखों में नवीन आनंद और उल्लास की शक्ति का संचार हो गया था। इधर उसे अपना जीवन उल्लासमय होते हुए भी विजन प्रान्तर-सा नीरस लग रहा था। यौवन का एकाकीपन अब उसके लिए असह्य हो उठा था।

दिन के कोलाहलमय वातावरण में वह अपने गांव के खारे पानी के कुएं के पीपल के नीचे मधुर कल्पनाओं का वितान बुना करता था और रात के समय तारों की फीकी झिलमिलाहट के तले मधुर स्वप्न की मृग-मरीचिका के पीछे बेतहाशा भागा करता था। उसे न तो अब मित्र अधिक अच्छे लगते थे और न ही घर। वह एकांत चाहता था, ऐसा एकांत जहां वह अपनी भावी दुलहिन के बारे में निश्चित होकर सोच-विचार कर सके। उसके मित्र उसकी इस एकांतप्रियता का मजाक उड़ाया करते थे। उसके घरवाले इस प्रकार की अन्तर्मुखता को बुरा लक्षण समझते थे। यदा-कदा वे इसके बारे में हल्की चर्चा भी कर लिया करते थे।

उस रात आकाश-गंगा के आसपास प्यासे मृग-शावकों की भांति बादल के टुकड़े तैर रहे थे। मन्दिरों में देव-दर्शन की अन्तिम भांक्तियां हो रही थीं। दूर नरोत्तम के घर से थोड़ी दूर पर सिद्ध बाबा विद्यानंद धूनी में आग प्रज्वलित किए प्रवचन कर रहे थे। कभी-कभी उनके तेज स्वर की भनक नरोत्तम के कानों में पड़ जाती थी।

और नरोत्तम सोच रहा था, 'मेरी दुलहिन का रूप-रंग अच्छा है, सुनते हैं कि स्वभाव की भी वह बड़ी मधुर है। मैं उसे शहर ले जाऊंगा, उसे पढ़ाता ही रहूंगा, समस्त दकियानूसी बन्धनों को तोड़ डालूंगा, फिर आनंद ही आनंद ! मंगल, महा-मंगल !'

अपने दो मंजिले मकान की छत पर वह लेटा हुआ था। उसके पास उसकी

दो छोटी बहिनें तथा एक भाई सोया हुआ था। अभी उसे वे अच्छे नहीं लग रहे थे। वह इस छत पर अकेला ही सोना चाहता था। गहरी शून्यता और कल्पना के रंग-बिरंगे पंख—इसके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता था वह।

वह उठा और उसने अपनी दृष्टि दूर तक फैलाई। गांव के जमींदार की हवेली के अलावा उसे सभी घर ऐसे लगे जैसे वे वसुंधरा के वक्ष पर फफोले हों, और वह भी अपनी चरम पीड़ाजनक अवस्था में।

वह कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा। सोचता रहा कि किस बेवकूफ ने इस देश को सोने की चिड़िया कहा? यहां तो पूरी तरह से लोहा भी नहीं है। सच कहा जाए तो यह कंगाल देश है।

नूपुरों की छुम-छुम ने उसका ध्यान भंग कर दिया। उसने इस ध्वनि की ओर बिना ध्यान दिए ही अपने आपसे कहा, भाभी भैया के पास जा रही है। इन दोनों की अच्छी जोड़ी है। भाभी महामूर्ख और भैया जड़ भरत। मैंने तो कभी उनके कमरे में हंसी की आवाज तक नहीं सुनी। कैसे रात गुजारते हैं ये दोनों? ... और तो और, जैसे ही भाभी और भैया कमरे में पहुंचते हैं, वैसे ही वे दीया बुझा देते हैं। मां कहती है कि अच्छे और लजीले लड़कों के ये ही गुण होते हैं। उसे मौन हंसी आ गई। आंखों में भावुकता भरी प्रसन्नता नाच उठी, 'कल भैया सुमति को कितनी सिहरन के साथ कह रहा था कि सुमति, अभी तक तो मैंने अपनी घरवाली का मुंह भी अच्छी तरह नहीं देखा है, तू बता न यार, वह कैसी है?' सुमति ने चुटकी बजाते हुए कहा कि तेरी बहू गोरी-चिट्ठी है और आंख-नाक का नक्शा भी अच्छा है। भैया आनंद के अतिरेक में डूब गए। लेकिन भाभी जरा चतुर है। कल ही तो कोने में खड़ी-खड़ी घूँघट में से एक आंख से भैया को देख रही थी। उस भांकती एक आंख में जीवन की अपरिसीम प्रीति की सृष्टि थी। '...पर मैं इन सभी रुढ़ियों और कष्टों से मुक्त हो जाऊंगा। ...और यह सब आखिर है क्या?' ...क्या गांव का इन प्रथाओं से उद्धार नहीं हो सकता? आखिर पति-पत्नी का भी अपना स्वच्छंद जीवन है।'।

नरोत्तम ने गहरी सांस ली। कहीं से उल्लू पंख फड़फड़ाता गुजरा। एक चमगादड़ ने भी एक पलटा नरोत्तम के आगे से लिया। नरोत्तम बिस्तरे पर आकर लेट गया। कल्पना की उड़ानें समस्त अनंत में व्याप्त हो रही थीं।

स्वप्निल वातावरण में मस्त नरोत्तम लम्बे-लम्बे सांख ले रहा था। धीरे-धीरे वह गहरी नींद में निमग्न हो गया।

सहसा भाभी ने हड़बड़ाकर उसे जगाया। वह डर से कांप गया। बोला, 'क्या बात है भाभी !'

'अभी-अभी सुमति आया था, कह रहा था कि सूबारांम के छोटे लड़के राजिया की लाश खेत में मिली है।'

'राजिया की लाश !' हठात् उसने कहा और उसकी आंखें भर आईं। वह खेत की ओर भागा।

खेत में उदास बालें सिर झुकाए खड़ी थीं। हवा थम गई थी। सारा वातावरण चुप था। लगता था जैसे सब रो-रोकर थक गए हैं।

नरोत्तम भीड़ को चीरता हुआ घटनास्थल पर पहुंचा। राजिया का शव पड़ा था। एक चाकू उसके पेट में लगा था और दो गले में। एक चोट बड़ी निर्ममता-पूर्वक उसके कलेजे पर लगाई गई थी। वह खून से लथपथ राजिया को देखकर चीख उठा। आदमी आदमी को इतनी बुरी तरह मार कैसे सकता है? उफ ! कौन नहीं कह सकता कि आदमी आदमखोर का बच्चा नहीं है ?

तभी राजिया की मां विकराल बनी आ गई। दूर से उसका रूप ऐसा लगता था जैसे कोई पिशाचिनी हो। नग्न छाती, अस्त-व्यस्त धोती, बिखरे बाल और सिर को निरन्तर पीटती-चीखती। लोग उसे संभाल रहे थे पर वह संभाले नहीं संभल रही थी। 'राजिया रे ! बेटा राजिया !'

करुणा और मातृत्व से भीगी उस मां का हृदय असीम के अन्तराल को दहला रहा था। वह आई। राजिया की लाश से लिपटकर चिंघाड़ पड़ी। उसका अंग-अंग राजिया के लहू से लाल हो गया। उसके चेहरे पर करुणा का सागर लहरा रहा था।

रोते-रोते वह बोली, 'छिनाल, तू अपने बेटे को खाती ! ए भागफूटी, तू अपने भाई को मरवाती ! मेरे बेटे को अपने यार से क्यों मरवाया ! ए राम-मारी, तू खुद क्यों नहीं मर जाती !'

वह उठी। उसने गांव के चौधरी के पास जाकर तीखे स्वर में कहा, 'आप जानते हैं कि मेरे बेटे को किसने मरवाया है ? ... इसकी भाभी ने, इसकी छिनाल

भाभी ने !’

उपस्थित लोगों में गहरा सन्नाटा छा गया। सबमें जड़ता आ गई।

राजिया की मां बोल रही थी, ‘कल वह सांगा से यही सब कह रही थी। उसे बन्दूक की तरह भर रही थी कि वह राजिया को अपने रास्ते से हटा दे।’ ‘हे राम, मैं मर गई ! राजिया रे, बेटा राजिया !’

नरोत्तम को लगा कि उसके तन को एक सहस्र विच्छू डंक मार गए हैं। वह पीड़ा से तिलमिला उठा। भय से उसका रोम-रोम सिहर उठा।

पुलिस आ गई। उसने लाश को अपने कब्जे में कर लिया। भीड़ छंट गई। नरोत्तम मन मारकर अपने चिरपरिचित पीपल के नीचे पड़ गया। उसके आगे नाच उठे—राजिया, उसकी जवानी, खून, छुरा और घाव।

वह तड़प उठा। उसकी समग्र चेतना खून, छुरा और घाव पर केन्द्रित हो गई। नरोत्तम के ललाट पर पसीना आ गया। वह अपने आपसे कह उठा, ‘आदमी का सबसे बड़ा शत्रु आदमी के सिवाय और दूसरा कोई नहीं है।’

सुमति ने आकर पूछा, ‘भैया, इस तरह मन मानकर क्यों बैठे हो?’

‘सुमति, राजिया को किसने मारा?’

‘सांगा ने।’

‘क्यों?’

‘उसकी भाभी के कहने पर। तुम्हें नहीं मालूम है भैया, राजिया की भाभी बड़ी छिन्नाल है। जब उसका रिश्ता राजिया के भाई से तय हो रहा था तभी गांववालों ने राजिया की मां से कहा था कि राजिया की मां तुम्हें बाद में पछताना पड़ेगा। यह घराना अच्छा नहीं है।’ ‘पर राजिया की मां ने सस्ता सौदा देखकर कानों में उंगली डाल ली। पांच सौ रुपयों में बेटे को ब्याह लाई।’ सुमति उसके पास बैठ गया, ‘भैया तुम्हें क्या बताऊं। यह राजिया की मां है न, बड़ी लोभिन है, अपनी बेटी के पूरे तीन हजार रुपये लिए और बेटे को पांच सौ में ब्याह लाई। कहा है सो ठीक ही कहा है :

‘सस्ता रोवे बार-बार और मंहगा रोवे एक बार।’

‘राजिया का भाई क्या करता है?’ नरोत्तम ने हठात् पूछा।

‘वाकी है, उसे पूरा करता है। बीबी कमाकर लाती है और खुद खाता है। और वह बेचारा करे भी क्या ? उसकी घरवाली बड़ी विकट है। जन्तर, मन्तर, जादू-टोना और मूठ चलाना, सभी कुछ तो जानती है। उसकी सास डायन है। हर महीने एक न एक बच्चे खा जाती है। और तो और, अपनी बड़ी बेटी के पति को उसने मूठ से मरवा दिया। अब उसे रुपयों की थैली की तरह रखती है।’ ‘अब तुम्हीं बताओ कि ऐसी हालत में राजिया का भाई बेचारा क्या करे ? वह लहंगे का नाड़ा बन गया है। पर राजिया को यह सब अच्छा नहीं लगता था। आखिर आदमी की भी अपनी कोई गैरत होती है। वह अपने सामने अपनी इज्जत को लुटते नहीं देख सकता। राजिया आदमी का बच्चा ठहरा। उसने भाभी को पहले समझाया, बाद में टोका और अन्त में उसने भाभी को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। कल रात भाभी ने सांगा को बुलाकर समझा दिया और रातोंरात सांगा ने राजिया को...’

‘मैं कहता हूँ कि उस औरत को काटकर खेत में गाड़ देना चाहिए, नालायक, बदमाश...’ नरोत्तम उत्तेजित हो गया।

‘भैया, यह औरत जात ही ऐसी होती है। एक कहावत है कि ‘त्रिया चरित्र न जाने कोय, पती मारकर सत्ती होय।’ यह तो राजिया था, यदि उसका खसम भी ज़रा गड़बड़ी करता तो वह अपने हाथ से उसे भी अफीम खिला देती।’

नरोत्तम स्वभावतः बड़ा ही डरपोक और भावुक प्रवृत्ति का था। नारी की निर्दयता देखकर उसका मन विचित्र उधेड़-बुन में लग गया। सुमति उसे भावमग्न देखकर चलता बना।

वही एकांत। वही शून्यता।

पीपल के पत्तों की हल्की-हल्की खड़खड़ाहट।

धूल के उड़ते हुए कण।

विचारों का संघर्ष।

‘कितनी बेरहमी से राजिया को मारा गया है। यह सांगा कौन है ?’ और वह हठात् उठकर फिर सुमति की ओर भागा, ‘सुमति, अरे ओ सुमति’, उसने जोर से पुकारा।

सुमति वहीं पर खूब गया। पेड़ की छांह के नीचे एक खटिया पड़ी थी। सुमति उसपर बैठ गया और उसके पास जिज्ञासु नरोत्तम।

‘क्या बात है भैया?’ सुमति का स्वर गंभीर था।

‘यह सांगा कौन है?’

‘अरे, इसको तू नहीं जानता?’ सुमति के मुख पर ऐसे भाव आए जैसे उसे नरोत्तम के प्रश्न पर बड़ा आश्चर्य है, ‘मीना दादी का बेटा। बेचारी मीना दादी भी उसकी करतूतों से बड़ी दुखी है, बचपन में सांगा बड़ा डरपोक था और किसी-से भगड़ा-फसाद नहीं करता था। हमलोग जब खेलते थे तब वह चुपचाप बैठा रहता था। इसका बाप डाकुओं के दल का सरदार था। कभी-कभी लुक-छिपकर घर आता था। मीना दादी दैवी रूप है। उसका पति जितना लूट-खसोट करके लाता था, वह सब मीना दादी को दे जाता था। कब और कैसे वह आता था, यह आज तक कोई नहीं जान सका। अंग्रेज सरकार के गोरे सिपाही कई बार यहां आए पर सांगा के बाप को नहीं पकड़ सके। सुनते हैं कि उसे दुर्गा माई का वरदान था कि वह कुत्ते की मौत नहीं मर सकता। मरेगा तो शेर की मौत ही।

‘अंग्रेजी सरकार ने हमारे ठाकुर (जमींदार) को तंग करना शुरू किया। बेचारा ठाकुर सहदेवसिंह बहुत ही सीधी प्रकृति का मनुष्य था। जीवन में उसने शायद ही झूठ बोला हो। गांव के किसानों को वह अपना पुत्र समझता था और उनपर अत्यन्त कृपालु रहता था। यही कारण था कि उसकी मालीहालत सदा साधारण रहती थी। लगान कोई दे तो अच्छा और न दे तो अच्छा। लेकिन उसने कभी भी शक्ति का प्रयोग नहीं किया। यही कारण था कि उसके सगे-सम्बन्धी पीठ के पीछे उसे नपुंसक कहते थे।

‘सांगा का बाप दिन-दहाड़े डाके डालता था। उसका आतंक और डाकेजनी दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। एक दिन अंग्रेजी सरकार ने आकर उससे मांग की कि या तो ठाकुर सा खीरसिंह धाड़ेंती को पकड़कर दे अथवा हम उसे जमींदारी से बेद-खल कर देंगे। लाचार ठाकुर को मीना दादी के पास आना पड़ा। मीना दादी स्वयं शेरनी थी। ठाकुर को सम्बोधित करती हुई बोली, ‘भाई सा, आपकी ठकुराई में क्या पड़ा है? सांगा का बाप अमीरों को लूटता है और गरीबों को देता है, वह एक

का सुख लेकर बीस को बांटता है। मैं उन्हें पुण्य के कार्य के लिए रोक नहीं सकती।'।

‘बस इसके बाद बड़ी मछली छोटी मछली को निगल गई। नदी का अस्तित्व सागर में विलीन हो गया। चूहे को सांप खा गया।

‘जब खीर्वांसिंह को यह मालूम हुआ कि उसकी खातिर ठाकुर की जागीर चली गई है तब उसे हार्दिक संताप हुआ।

‘रात के गहरे अन्धकार में वह मृत्युंजय बनकर गांव आया। ठाकुर से मिला और उसे आश्वासन दिया कि वह उसका पालन-पोषण करेगा। उसकी कन्या की शादी से लेकर उसके लड़के की शिक्षा तक का वह प्रबन्ध करेगा।

‘इसके बाद वह मीना के पास आया।

‘साल-साल दो-दो साल बीत जाते थे, पर खीर्वांसिंह कभी भी अपनी पत्नी के पास रात में नहीं आता था। मीना भी अजीब प्रकृति की औरत थी। दाम्पत्य-सुख से वंचित रहकर भी उसे कोई पीड़ा और कोई शिकायत नहीं थी बल्कि वह दिन-प्रतिदिन अपने पति के प्रति अधिक कोमल और श्रद्धावान् होती जा रही थी। उसके अंतस् में उसका पति किसी देवता से कम नहीं था।

‘उस दिन मीना ने पति के चरणों में सिर रखकर नमस्कार किया। पौराणिक दैत्य-से विशाल और बलिष्ठ खीर्वांसिंह ने गुड़िया-सी मीना को आलिंगन में जकड़ लिया। मीना की आंखें बरबस भर आईं।

‘‘तुम रोती हो?’’ खीर्वांसिंह ने कोमल स्वर में पूछा।

‘‘नहीं तो।’’ आंसूभरी मुस्कान के साथ मीना ने उत्तर दिया।

‘‘भूठ बोलती हो।’’ खीर्वांसिंह ने उसे अपनी बांहों में भर लिया—‘‘सांगा कहाँ है?’’

‘‘सो गया है।’’

‘‘मैं जब कभी भी आता हूँ तब तुम उदास क्यों हो जाती हो ! तुम्हारी चंचलता और तुम्हारी बातें चुक-सी क्यों जाती हैं !’’

‘मीना ने भावपूर्ण दृष्टि से अपने पति को देखा। मुस्कान के कारण उसका चेहरा खिल उठा। शांत स्वर में बोली, ‘जब आप आते हैं तब मुझे इतनी खुशी, इतनी खुशी होती है कि मैं यह तय नहीं कर पाती कि आपको क्या कहूँ और क्या न कहूँ,

और इसी कशमकश में होता यह है कि आपको कुछ भी नहीं कह सकती ।’

‘उल्लू की घूं घूं ने खींवसिंह का ध्यान क्षण भर के लिए भंग कर दिया । उसने खिड़की की राह उल्लू की ओर देखा । पड़ोसी के मकान की छत की दीवार पर उल्लू बैठा-बैठा अपना गोल-मटोल सिर नचा रहा था ।

‘खींवसिंह ने अपनी बन्दूक सम्भाली और उल्लू को निशाना बनाना चाहा पर मीना ने उसे रोक दिया ।

‘इस गूंगे पक्षी को क्यों मार रहे हैं ?’

‘यदि तुम कहती हो तो लो, इसकी जान बख्श देता हूं पर ये उल्लू होते बहुत बुरे हैं ।’

‘आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते ।’

‘मेरा तो भगवान् के सिवाय यहां कोई भी नहीं बिगाड़ सकता ।...और हां, मैंने ठाकुर का सारा प्रबन्ध कर दिया है ।’

‘वह बेचारा इसीके काबिल है ।’

‘और तेरे लिए यह हार लाया हूं ।’ खींवसिंह के होंठ जो उसकी कानों से लिपटी बांकड़ली मूंछों से आछन्न थे, मुस्कान से चमक उठे । ‘लो उन्हें अपने हाथों से ही पहना देता हूं ।’

‘खींवसिंह ने हार पहना दिया ।

‘मीना की आंखों में एक बार फिर आंसू ढलक पड़े ।

‘सांगा की मां, तुम मुझे दुखी लगती हो । मेरा यह काम तुम्हें पसन्द नहीं है ?’

‘मैं हर रोज माता भवानी से यही विनती करती हूं कि वह आपको इस काम में सफलता दे । गरीबों का जिस काम में भला हो, वही काम राजपूती धर्म का है । फिर पति परमेश्वर होता है और उसकी आज्ञा, उसका कार्य नारी के लिए मान्य है ।’

‘तभी बन्दूक की आवाज सुनाई पड़ी । आवाज के साथ बाबा विद्यानन्द ने घर में प्रवेश किया, ‘खींवसिंह, भागिए, गोरे गांव में घुस आए हैं ।’

‘बाबा पिछले दरवाजे से भाग गए ।

‘खींवसिंह ने अपनी बन्दूक संभाली ।

‘आप पिछले दरवाजे से जाइए। मैं और सांगा गोरे को रोकते हैं।’ मीना ने दुनाली संभाली और सांगा को पुकारा, ‘उठ ओ सांगा, ओ सांगा !’

‘क्या है मां ?’

‘पिस्तौल संभाल।’

‘क्यों ?’

‘तेरे बाप पर आफत आ पड़ी है। जल्दी कर।’

‘पर मुझे...’

‘इसमें छह गोली हैं, बस मेरे साथ दागता जा। यदि आना-जाना की तो मैं तुझे भुरता बना दूंगी।’

‘सांगा ने पिस्तौल संभाल ली।

‘दोनों ओर से बन्दूकों की आवाज हुई।

‘खीरसिंह दस ही मिनटों में सांडनी पर सवार होकर चम्पत हो गया। उसके जाते ही मीना ने दोनों हथियारों को घास के ढेर में छुपा दिया। सांगा को कहा, ‘जाकर सो जा।’

‘सांगा जाकर सो गया। गोरो ने डरते-सहमते मीना के घर में प्रवेश किया। पूछताछ की, पर मीना ने साफ शब्दों में कह दिया कि वह डाकुओं के बारे में कुछ नहीं जानती। हां, वे उस जंगल की ओर जरूर गए हैं। उस गोरे साहब ने मीना को कहा कि यदि वह अपने पति को पकड़वा दे तो उसे सरकार बहुत बड़ा इनाम देगी। इसपर मीना ने आहत सांपिन की तरह फुंकारकर कहा कि अपने ललाट की बिन्दी के बदले वह अपना सब कुछ दे सकती है।

‘गोरा चुप हो गया। उसे लगा कि यहां के पति और पत्नी में किसी प्रकार की होड़ नहीं है, अपितु एक भक्ति है, श्रद्धा है, एक अटूट विश्वास है।

‘उस दिन के बाद हम सबने सांगा में एक परिवर्तन देखा। अब वह शेर की तरह दहाड़ता था, जो कोई उससे अकड़ता उसे पीट देता था। धीरे-धीरे वह हमारा लीडर बना गया।

‘इसी तरह दस साल गुजर गए। सांगा का बाप गोरो की गोलियों से मारा गया पर उसकी लाश आज तक नहीं मिली। इसलिए मीना दादी सदा सुहागिन

बनी हुई है। उसका विश्वास है कि उसका स्वामी एक न एक दिन जरूर आएगा। वह मरा नहीं है, वह भेष बदलकर इन गोरे बन्दरों के पीछे लगा हुआ है।

‘पर जिस दिन अपने बाप की मृत्यु के समाचार सांगा ने सुने उसी दिन से वह अपने को राणा सांगा घोषित करके गांव पर शासन करने लगा। लेकिन उसमें और उसके बाप में यही बुनियादी अंतर था कि उसका बाप गरीबों की रक्षा और पापियों का सफाया करता था पर वह गांववालों की बहू-बेटियों पर बुरी नज़र रखता है।

‘तभी तो मीना दादी उसे अपना बेटा नहीं कहती और बेचारी वह गांव की उतनी ही सेवा करती है, जितनी यह नालायक दुष्टता करता है।

इसके बाद नरोत्तम काफी देर तक किसी गहरे विचार में तल्लीन बैठा रहा। सुमति इधर-उधर की बातें करता रहा। और फिर कब गया, इसका भी उसे पता नहीं चला।

नरोत्तम की मनःस्थिति बड़ी अशान्त और उद्विग्न थी। चूंकि वह सदा से डरपोक प्रकृति का था अतः वह ‘नारी इतनी कठोर और नारी इतनी पाशविक’ याद करके भयभीत हो रहा था।

दोपहर की धूप जब चढ़ने लगी तब नरोत्तम अपने घर की ओर रवाना हुआ। उसका बदन टूट रहा था और उसे लग रहा था कि उसके कदमों में इतनी शक्ति नहीं है कि वे द्रुतगति से उठ सकें। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह इस पीतल के नीरव और निस्तब्ध वातावरण के नीचे पड़ा रहे। और यदि उसे भूख विचलित नहीं करती तो वह वहीं सोया रहता—सारे दिन।

घर पहुंचकर दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त होकर, उसने खाना खाया। उसकी मां ने गंभीरतापूर्वक पूछा, ‘तुमने अपने लिए कपड़े बना लिए होंगे?’

‘हां।’

‘देखो, मैंने विवाह की तिथि तय कर ली है। अगली चतुर्थी का मुहूर्त है। तुम अपने मित्रों को बुलाना चाहो, तो बुला सकते हो।’

‘मेरा कोई भी मित्र आने वाला नहीं है।’

‘पहले तो तुम हर रोज अपने मित्रों के बारे में कहा करते थे और आज एका-

एक इरादा कैसे बदल लिया ?' उसकी मां की आंखों में हल्का आश्चर्य था।

'ऐसे ही।' उसने मां की ओर बिना देखे ही अनिच्छा से कहा।

'अब समझी, तू समझता है कि तेरी बहू मूर्ख होगी, पर ऐसा नहीं है। वह लाखों में एक है। जैसा रंग वैसा गुण। इस बार तेरी मां ने दीपक लेकर ही बहू ढूंढी है। अच्छे खानदान की, फैशन वाली, ऊंची एड़ी की चप्पल पहनने वाली, मेम साहब !' कहते-कहते मां प्रसन्नता से हंस पड़ी। उसकी आंखों में आनंद की ज्योति विकीर्ण हो उठी जो तुरन्त गंभीरता में बदल गई, जैसे वह अपने पुत्र की चिरायु की शुभ कामना कर रही है।

नरोत्तम वहां से उठा और ऊपर के कमरे की ओर बढ़ा। सीढ़ियों के बीच ही भाभी मिल गई। भाभी के हाँठों पर मुस्कराहट थी। नरोत्तम को रोकती हुई वह बोली, 'क्यों बबुआ जी, ब्याह के बाद आप हमें भूल तो नहीं जाएंगे ?'

नरोत्तम को भाभी का मजाक इस समय अच्छा नहीं लगा। एकाएक उसकी दृष्टि उसके चेहरे पर गई। वह कांप उठा। जिस पावन मुख पर वह शुचिता व दिव्यता के दर्शन करता था, उसपर वासना और अतृप्ति के सांपों को लोटते देख, सिहर उठा।

'राजिया और भाभी' ये दो शब्द तुरन्त उसके मन में 'कांटे' की चुभन की पीड़ा और भय का संचरण करने लगे। वह तिकत स्वर में बोला, 'अभी मुझे मजाक अच्छा नहीं लगता है, भाभी जी।'

'क्यों बबुआ जी, क्या इतनी जल्दी ही हमसे किनारा करने लगे ?'

'किनारा ?' वह अपने आपसे बोला। वह हठात् उदास हो गया। उसे अपनी आदरणीय व पूजनीय भाभी के मन में खोट के दर्शन हुए। वह एकदम झुल्ला उठा, 'मैं कहता हूँ कि मुझे मजाक पसंद नहीं है, छोड़िए मेरा रास्ता।'

इतना कह उसने जैसे ही अपनी भाभी की ओर देखा, उसका मुंह सफेद हो गया। उसका हाथ यंत्रवत् हटा। तभी उसकी मां ने नीचे से पुकारा 'क्या बात है नरू ?'

'कुछ नहीं।' कहकर वह आगे बढ़ा पर एक बार संदिग्ध दृष्टि से उसने भाभी के चेहरे की ओर पुनः देखा। उसे लगा कि उसके डांटने को भाभी ने महसूस कर लिया

है। वह आन्तरिक अपमान से तिलमिला रही है। उसकी आंखों में रोप की स्फुलिंग ज्वलित हो गई है।

वह आकर बिस्तरे पर पड़ गया। आशंकाओं के भयानक चित्र उसके मानस-पटल पर विभिन्न रूपों में अंकित होने लगे। उसे लगा कि उसकी भाभी अपमान की आग में जलकर विद्वेष की पुतली बन गई है, घृणा का सागर उसके अन्तस् में घुमड़ रहा है तभी तो उसकी आंखें जड़ हो गई थीं—उस समय।

उसके अंग-अंग में सिहरन-सी दौड़ गई। दुश्चिन्ताओं के कारण वह चंचल हो उठा। चूँकि वह सदा से बड़ा कायर प्रकृति का रहा अतः उसके मस्तिष्क में यह विचार हठात् आगए कि क्या अपमान की पराकाष्ठा पर उसकी भाभी उसकी भी हत्या नहीं कर सकती ?

तब उसके मन में नई जिज्ञासा का प्रादुर्भाव हुआ। वह अपने आपसे कह उठा, 'वह जाकर राजिया की भाभी को देखेगा, वह कैसी है ?'

गांव के पश्चिमी छोर पर जो तालाब था, उसके ईशान कोण पर राजिया का घर था, वह एक गुप्तचर की तरह उधर गया। दोपहर की चिलचिलाती धूप में तालाब के किनारों पर गांव के कई बालक-बालिकाएं खड़े थे। उनके हाथ गोबर से भरे थे। तालाब में पानी पीने वाली गायों का वे गोबर इकट्ठा करते थे और बाद में जितने चुगने वाले होते थे, उतने हिस्से कर लिए जाते थे।

नरोत्तम को पलभर के लिए उन बालकों व बालिकाओं ने कुतूहल भरी दृष्टि से देखा फिर वे पुनः अपने कार्य में निमग्न हो गए।

वह पीपल के गट्टे पर बैठ गया। ठीक उसके सामने राजिया की भाभी रहती थी। थोड़ी देर बाद राजिया की भाभी बाहर कूड़ा फेंकने आई। एक अपविचित को बैठा देखकर पूछ बैठी, 'कहां से आए हो भैया !'

'शहर से।'

'पाहुने हो ?'

'नहीं, यहां तो मेरा अपना घर है। मैं गोपालप्रसाद का लड़का हूं।' उसने नम्रता से उत्तर दिया।

'यहां क्यों बैठे हो, छोटे पंडित ?' भाभी ने उदास स्वर में पूछा।

‘ऐसे ही !’

‘तेरी कुछ खातिर करूं, पर क्या करूं, उस मुंए सांगा ने आज मेरे जवान देवर पर घात कर दिया है’, उसकी आंखों में आंसू आगए। वह आंसुओं को पोंछती हुई बोली, ‘देखो न छोटे पंडित, लोग व्यर्थ में मुझे बदनाम करते हैं कि मैंने राजिया जी को मरवा दिया। भला मैं क्यों मरवाने लगी ? मुझे वह कांटा थोड़े ही लगता था। सच, मैं उसे हृदय से चाहती थी, हृदय से।’

नरोत्तम ने देखा कि राजिया की भाभी अपनी साड़ी के छोर से अपनी आंखें पोंछ रही हैं। आंखों में आंसू थे या नहीं, यह वह विलकुल नहीं जानता पर वह सिसकियां जरूर ले रही थी।

नरोत्तम कुछ नहीं बोला। वह वहां से उठकर चल पड़ा। तालाब में बाबा जी लंगोटा पहने स्नान कर रहे थे। उसे देखते ही एक बार तो नरोत्तम यह सोचकर भेंप गया कि अवश्य बाबाजी सोचेंगे कि वह भी राजिया की भाभी से सम्बन्ध बढ़ाने लगा है, पर बाबाजी ने उसके विचार को निर्मूल कर दिया। वे सव्यंग्य मुस्कराकर चुटकी भरते हुए बोले, ‘देखा रे छोटे पंडित, कलियुग की लीला, देवर पर घात करवाकर घड़ियाली आंसू बहा रही है भाभी। बड़ी जालिम है यह तिरिया, राम बचाए इससे। हरे-हरे...’

बाबा जी कपड़े निचोड़ने लगे।

नरोत्तम वहां से चला। थोड़ी देर पहले उसके मन में राजिया की भाभी के प्रति जो समवेदना जाग्रत हुई थी, वह पुनः लुप्त हो गई। उसने उसके अपूर्व सौन्दर्य पर जो शील का आवरण देखा, उससे उसे विश्वास हो गया था कि लोग सत्य को नहीं, अनुमान को पकड़ रहे हैं और अनुमान कभी भी सही नहीं होता। पर बाबा जी ने उसकी क्षणिक दृढ़ता को फिर छिन्न-भिन्न कर दिया। उसका मन उड़ने लगा।

उसके मन में भांति-भांति के विचार उठने लगे। उसकी भाभी भी सुन्दर है। और आज उसने उसका अपमान कर दिया, कहीं वह भैया के कानों को न भर दे ? नहीं-नहीं, उसे भाभी का अपमान नहीं करना चाहिए था। औरत की जात... इस तरह वह दुष्कल्पनाओं में गोते खाता रहा। अपने आपको पीड़ित

करता रहा। उसे अजीब-सी की एक कहानी याद आई। उसमें एक स्त्री का अजीबोगरीब चरित्र चित्रित किया गया था कि एक मंत्री महाशय को एक साधारण स्त्री किस तरह उल्लू बनाकर ठगती है। वैसी ही एक दूसरी कहानी थी जिसमें दो सहृदय मित्रों की मित्रता एक की चरित्रहीन पत्नी किस कलात्मक ढंग से तुड़वाती है। यहीं तक नहीं, यथार्थ दुनियां में भी सहस्रों ऐसी घटनाएं घटित होती हैं। घर के टुकड़े औरतों की कलह के बिना हो ही नहीं सकते। शरत्चन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य ही तो नारी-चरित्र की विविधताओं से भरा है।

और नरोत्तम के मन में सहस्र स्त्री-मुख नाच उठे।

स्वेद कण उसके ललाट पर उभर आए थे और जब वह अपने घर के पास पहुंचा तब वह बहुत उद्विग्न हो चुका था। घर के द्वार पर ही उसे अपनी भाभी मिल गई। हमेशा की तरह आज उसकी भाभी कमल की तरह खिलकर मुस्कराई नहीं, बल्कि नाक-भौं सिकोड़कर एक कोने में दुबक गई। उसके भावों में उपेक्षा के दर्शन स्पष्ट हो रहे थे।

उसकी उपेक्षा ने उसके भय को और विचलित कर दिया और वह जैसे ही बिस्तरे पर पड़ा वैसे ही उसके मन में नया सन्देह एकाएक पैदा हुआ, 'कहीं भाभी ने भैया को गलत रूप में बात बनाकर कह दी तो अनर्थ हो जाएगा। ये मूर्ख अत्यन्त सन्देही होते हैं।'

वह अधिक उद्विग्न हो उठा। क्योंकि वह बचपन से ही छोटी-छोटी घटना से तुरन्त विचलित हो उठता था, अतः इस समय वह विचित्र कल्पनाओं के सहारे अपने आपको व्यर्थ ही पीड़ित कर रहा था।

चिन्ताओं के आवर्तन में उसे गहरी नींद आ गई।

संध्या को जब उसकी आंख खुली तब उसने अपने आपको कुछ स्वस्थ पाया। उसे लगा कि निद्रा के पूर्व जो उसके मस्तिष्क में हथौड़े चल रहे थे, अब कम हो गए हैं। तब उसने अपने आपको धिक्कारा, 'मैं आवश्यकता से अधिक सोचने लगा हूं। मेरी भाभी कितनी भोली और दयालु है, वह भला किसीको मरवाने की सोच सकती है? ... अरे उसकी हिम्मत तो अभी तक भैया को देखने तक नहीं हुई है। ... रही राजिया की भाभी, उसका खानदान ही नीच है, उसकी मां स्वयं

हत्यारिन है, जरायम पेशेवर है, कठोर है, निर्दयी है, दुष्ट है।' और इसी प्रकार राजिया की भाभी को भला-बुरा कहकर उसने अपनी आत्मा को संतोष दिया।

हाथ-मुंह धोकर वह गांव के बाहर खुले जंगल की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसे भाभी मिली, जिसे उसने देखा तक नहीं। गांव के पूर्वी छोर पर एक 'नाथ' परिवार रहता था। यह परिवार अन्तकाल का 'सीधा' (मरने पर जो चावल, आटा, दाल, घी इत्यादि दिया जाता है, उसके लिए यह शब्द राजस्थान में प्रयोग किया जाता है) एवं मृतक के पीछे दस दिन भोजन दिया जाता है, उसपर अपना जीवन-निर्वाह करता है। चूंकि हमेशा कोई मरता नहीं अतः इस परिवार के मर्द मजदूरी भी करते हैं।

जब भाभी को अपनी विचारधारा का केन्द्रबिंदु बनाकर नरोत्तम उस परिवार की भोंपड़ी के आगे से गुजरा तब एक साठ साला बुढ़ा निश्चित होकर मोती-चूर के लड्डू खा रहा था और उसके पास एक पांच-छः साल का बच्चा बैठा हुआ ललचाई दृष्टि से उस बुढ़े को देख रहा था।

पूर्व विचारों पर क्षणिक आवरण-सा पड़ गया नरोत्तम के। वह ध्यानपूर्वक उस बच्चे को देखने लगा।

बच्चा भूखा था और बुढ़ा भी। बच्चे की आंखों में मांग थी और बुढ़े की आंखों में बेफिक्री। उसका मुंह बहुत ही जल्दी-जल्दी चल रहा था जैसे उसे इस बात का भी भय है कि उसके भीतर का आदमी कहीं पिघल न जाए और यह वद-मास छोकरा उसके लड्डूओं का बंटवारा न करा ले।

तभी उस छोकरे ने शक्ति होकर चुपचाप उस बुढ़े की ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। उसकी दृष्टि बुढ़े की ओर न होकर आकाश की ओर थी। बुढ़े ने भी हृद का पांजीपन किया। वह मुंह से कुछ नहीं बोला। उसने बड़ी नाटकीयता से उसके हाथ को नीचा कर दिया और फिर बेफिक्र होकर खाने में लग गया।

बच्चे की आंखों की कशना बढ़ रही थी और उसकी लम्बी सांस इस बात की साक्षी थी कि अब उसकी आशा का अन्तिम छोर आ चुका है।

बुढ़े ने अन्तिम कौर लेकर कमण्डल को तोड़कर बनाए हुए खप्पर को उस

बच्चे की ओर बढ़ा दिया और लापरवाही से बोला, 'ले, यह खा ले, टुकर-टुकर ऐसे देख रहा है, जैसे मुझे नज़र लगाकर ही छोड़ेगा।'

बच्चे ने चुपचाप वह खप्पर अपने हाथ में ले लिया। और अबोध की तरह चुटकी में एक-एक दाना भरकर खाने लगा। खाते समय जो उत्साह और प्रसन्नता साधारण बालकों में होती है, वह उसमें जरा भी नहीं थी। वह एक-एक दाने को चुग-चुगकर खा रहा था।

नरोत्तम इस कष्टनाशनक दृश्य से पिघल गया। उसके भयाक्रांत विचार एक पल के लिए असाधारण मानवीय भावना से भीग गए। उसे उस बूढ़े के प्रति रोष और घृणा दोनों हुए। उसने सोचा—कैसा जमाना आ गया है, आदमी आदमी के दर्द को नहीं पहचानता।

जब बच्चा वहां से उठकर चला गया तब वह खुले मैदान की ओर बढ़ा। उसका मन बहुत भारी था।

दो जाटनियों की खिलखिलाहट ने नरोत्तम के ध्यान को पुनः भाभी पर केंद्रित कर दिया। वह भाभी पर न सोचने के लाख प्रयत्न करना चाहता था पर न मालूम उसकी गहराई में कौन-सी भावना काम कर रही थी जो उसे बार-बार उसीपर सोचने के लिए बाध्य कर रही थी।

वह सोचने लगा, भाभी ने आज मेरी ओर देखा क्यों नहीं, जरूर वह अपने को अपमानित समझती है।... मुझे उसके साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए, मुझे उसका सम्मान करना चाहिए। वह कितनी निश्छल और भोली है?

वह जितनी देर भाभी के अच्छे स्वभाव के बारे में सोचता, उतनी देर उसे उन बातों को अपने मन में स्थिर करने के लिए लग जाती थी।

लेकिन हर बात के बाद उसके मन में यह वाक्य बिजली की भांति कौंधता, 'नारी के चरित्र को कोई नहीं जानता और मेरी भाभी भी एक नारी है।'

तारकावली दूज के चांद के कारण अपनी प्रखर प्रभा से दीप्त हो रही थी। मृत्यु-सी नीरवता के बीच दूज का चांद चमक रहा था। अनुपम सुन्दरी का धुंधला पुंडरीक मुख उसके सामने नाच उठा। युवती गैबर्डिन की पेंट और रेशमी बनियान पहने हुए थी। उसने अपने तमाम बालों का गुल्म बनाकर लाल फीते से बांध लिया था। उसके पांवों में लाल रंग की ऊंची एड़ी वाली चप्पल थी।

नरोत्तम अपनी छत पर खड़ा-खड़ा उस धुंधली आकृति को प्यासी आंखों से देखता रहा। वह इतना व्यग्र हो उठा था कि यदि उसका वश चलता तो वह पंख लगाकर तुरन्त उसके पास पहुंच जाता। वह मन ही मन कामना करने लगा कि वह युवती उसके समीप आ जाए।

आकृति धीरे-धीरे साफ हो गई। ओह, यह तो उसकी भाभी है। कितनी अपटू-डेंट और एडवांस्ड।

‘भाभी !’ उसने पुकारा।

‘हलो, हाउ डू यू डू मिस्टर नरोत्तम !’

‘अरे तुम तो अंग्रेजी भी जानती हो ! भाभी, सचमुच तूने कमाल कर दिया। कितनी जल्दी तुझमें परिवर्तन आ गया। कल तक तू निष्प्राण गुड़िया की तरह घर के एक कोने में पड़ी रहती थी और आज तू स्वच्छन्द पंखी की तरह चहक रही है। ओह, यह सब एकदम किस प्रकार हो गया भाभी !’ उसकी आंखों में विचित्रता तैर उठी।

वह फिर अंग्रेजी में बोली, ‘यह सब अचानक हो गया, क्योंकि तुम्हें गांव की फूहड़ और अनपढ़ स्त्री बिलकुल पसन्द नहीं है; तुम उससे बात करना पसन्द नहीं करते, इसीलिए मुझमें ये सब परिवर्तन आए हैं। मैं आशा ही नहीं, विश्वास करती हूं कि तुम मुझे अब प्यार करोगे।’

‘कदापि नहीं, तू मेरी भाभी है, पूज्य है, आराध्य है।’

‘यह सब विलायती फैशन में नहीं चलता। आओ, मेरे पास आओ न।’

भाभी ने नरोत्तम का हाथ पकड़ लिया। नरोत्तम का अंग-अंग कांप उठा।

बिच्छू के डंक से अधिक पीड़ाजनक उसे अपनी भाभी का स्पर्श लगा। वह हाथ छुड़ाकर दूर खड़ा हो गया।

‘नरोत्तम, तुम मेरा फिर अपमान कर रहे हो !’

‘अपमान मैं तेरा नहीं, तू मेरा कर रही है। भाभी होकर अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल नहीं करती ? ज़रा सोचो तो भाभी, संसार क्या कहेगा, कर्तव्य क्या कहेगा ?’ वह रुआंसा हो उठा।

‘मैं कुछ नहीं समझती, जब मैं मूर्ख थी तब तुम मुझे व्यर्थ की नारी समझकर उपेक्षा कर दिया करते थे और अब नैतिकता और मर्यादा की दुहाई देने लगे हो, आखिर मेरा प्यार तुम कैसे तृप्त करोगे ?’

‘ममत्व से भिगोकर।’

‘ऑल नॉनसेंस।’

नरोत्तम चुप।

भाभी रोने लगी।

तभी बुर्का लगाए एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। उसके हाथ में पिस्तौल थी। उसने काला शूट पहन रखा था।

आगन्तुक ने कहा, ‘हलो डियर, तुम्हारी आंखों में आंसू ? क्या बात है ?’ उसका सम्बोधन नरोत्तम की भाभी के लिए था।

‘प्रिये, यह नादान आदमी हमसे ‘लव’ करता है। हमारा अपमान करता है।’

नरोत्तम सिर से पांव तक कांप उठा। काटो तो खून नहीं। वह आवेश में चीख पड़ा, ‘मैंने उसका अपमान नहीं किया, यह मेरी भाभी है, मां है, पूज्य है।’

पर उस आगन्तुक ने कुछ नहीं सुना। उसने लपककर नरोत्तम का गला पकड़ लिया। नरोत्तम संभले, इसके पहले ही उस आगन्तुक ने दो गोलियां दाग दीं। नरोत्तम चीखकर गिर पड़ा।

जब वह गिर गया तब वह आगन्तुक उसके पास आया। उसने अपना बुर्का उतारा। नरोत्तम ने बुझती नेत्र-ज्योति से उसकी ओर देखा, ‘भैया, भैया’ कहकर चरम दुख को अन्तर में बसाए वह तड़प-तड़पकर कह उठा, ‘मां, मुझे भैया ने मार डाला, मां मुझे भैया ने मार डाला, मां... मां... मां...!’

तड़पते, सिसकते और रोते नरोत्तम की आंखें खुल गईं ।

भयानक स्वप्न टूट गया ।

राख के रंग के मखमली आकाश में हीरे-मोतियों की तरह छोटे-बड़े तारे चमक रहे थे ।

नरोत्तम ने भयभीत दृष्टि से अपने चारों ओर देखा । न कोई भाभी थी और न भैया । वही उसका परिवार और गहरी शून्यता ।

पर नरोत्तम की दशा बड़ी विचित्र थी । उसने एक बार भाभी के कमरे की ओर देखा । वहां गहरा सन्नाटा था ।

भोर का तारा इधर उदय हुआ, उधर नरोत्तम व्यथा से विचलित और भय से आक्रान्त होकर घर से बिना कुछ कहे-सुने चल पड़ा । घर से निकलने के पूर्व उसे अपनी मां का ममता भरा चेहरा जरूर याद आया था पर भाभी द्वारा उसकी हत्या करने का जो निर्मूल सन्देह था, वह उसे वहां से भगाए लिए जा रहा था । वही स्वप्न, वही बुर्कवाला आदमी, गोली और मृत्यु ! उसे बार-बार याद आ रहे थे । फिर राजिया और उसकी भाभी ?

उसके कदम शहर की ओर बढ़े ।

‘नारी के चरित्र का कोई विश्वास नहीं ।’ यह विचार उसके मस्तिष्क में सत्य की तरह पुनः गूँज उठा । उसका मन अपनी इस दुनिया से बेतहाशा भाग रहा था ।

सवेरा होते-होते वह शहर के स्टेशन पर आ पहुंचा । स्टेशन के एक ओर ग्रामीण लोग साफे बिछाकर सो रहे थे और दूसरी ओर कुछ ग्रामीण स्त्रियां भी पोटली की तरह पड़ी हुई थीं ।

वह चुपके से गाड़ी पर बैठ गया ।

बार-बार वह शंकित होकर स्टेशन के दरवाजे की ओर देख लेता था कि कहीं उसके घर वाले तो नहीं आ रहे हैं ?

जब गाड़ी चलने को तैयार हुई, तब सहसा उसके मस्तिष्क के अभय-कोमल कोने में यह विचार उठा, ‘उस बेचारी लड़की का क्या हाल होगा जो अपने मेंहदी भरे हाथ को लेकर दुल्हन बनने के मधुर-सुघर स्वप्न देख रही है ।’ तभी इंजिन ने सीटी दी और गाड़ी की कर्कश आवाज में उसके विचार खो गए ।

सन् १९४७ का समय ।

दंगों से आक्रांत और भयभीत यात्री । सनसनीखेज हृदय विदारक समाचार । आदमी बया, शैतान तक उन लोमहर्षक घटनाओं को सुन-सुनकर भयभीत हो रहे थे ।

ऐसे समय नरोत्तम फर्स्ट क्लास के पास वाले एन्टेडेंट कम्पार्टमेंट में बैठा था । न उसके पास टिकट और न उसके पास सामान । पानी भी पीना चाहे तो उसे नल पर जाकर पीना पड़ता था और खाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । उसके ठीक पास वाले डिब्बे में कोई सेठ-सेठानी बैठे थे । एक मिल के स्वामी और प्रसिद्ध-प्रतिष्ठित व्यापारी । बंगाल में उनकी एक मिल थी और भी कई छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे । अभी वे पति-पत्नी अपने बड़े लड़के की सख्त बीमारी का समाचार पाकर इस संकट काल में कलकत्ता जा रहे थे ।

उन्हें किसी भी वस्तु की जरूरत पड़ती तो वे सीधा नरोत्तम को कहते कि भाई जरा सुनना, एक गिलास पानी तो ला दो, जरा एक चाय ले आना । ...चूँकि सेठानी पान में जर्दा खाती थी, इसलिए उसे हर स्टेशन पर नरोत्तम से अनुनय करके पान मंगवाना पड़ता था । कभी-कभी सेठानी स्वयं अपने पर भल्ला पड़ती थी । उसके भल्ला पड़ने का तात्पर्य स्पष्ट था कि वह पानदान लाना क्यों भूल गई ? एक तो डबल पैसा लगता है और दूसरा इतनी दिक्कत उठानी पड़ती है । फिर वह उस वैद्य पर गुस्सा हो उठी जिसने उसके फूलते शरीर को देखकर यह सलाह दी कि वायु-विकार को रोकने के लिए तम्बाकू खाना अति उत्तम रहेगा । ...धत् तेरे की, यह सब कोई वैद्य है, रोग की दवा नया रोग बन जाए !

और वह सेठानी इन सभी बातों से उद्विग्न होकर सेठजी को उलाहना दिया करती थी, 'आप ऐसा लचर वैद्य लाए लिए जिसने मुझे तम्बाकू का दास बना दिया ।'

शाम होने पर सेठानी का ध्यान नरोत्तम पर गया । वह उसके बारे में कुछ जानना चाहती थी । आखिर यह है कौन ? जो बेचारा दिन भर उनकी चाकरी

बजाता रहा है ? तब उसने सेठजी को हिदायत दी कि इसबार वह उसे यह सब पूछ-कर पता लगाए। कहीं नीच जाति का हो गया तो कम से कम उसे तो वैष्णव धर्म के अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ही।

और नरोत्तम एक अजीब ही उलझन में उलझ गया। वह सोच रहा था कि वह घर से भाग आया। लोग उसके बारे में क्या-क्या अटकलबाजियां लगाएंगे। उसकी मां रो-रोकर बेहाल हो रही होगी। पर उसका बाप जरूर गुस्से में उबलकर कहता होगा कि मरने दो साले को, भाग गया तो खुद ब खुद वापस आएगा। मेहनत करके कमाना हंसी-खेल नहीं। जरा ठोकरें खाने दो, अपने आप अक्ल ठिकाने पर आ जाएगी। ...और वे जरूर मेरी मां पर गर्म होते होंगे। कहते होंगे कि बना लिया बैरिस्टर, कलेक्टर ! इंगरेजी पढ़ाएगी, गांव के किसान को साहब बनाएगी, बना लिया ?

तब मां का हृदय दुख से तड़प उठेगा। वह संज्ञाहीन होकर अनन्त पीड़ा में सुलगने लगेगी। ममत्व के फूल की पंखुड़ियों को लक्ष्यकर सभी लोग कस-कस के नोचेंगे। वह दृश्य कितना मर्मन्तक होगा।

‘मां-मां-मां !’ वह मन ही मन बोला। उसका गला भर आया। उसकी आंखों से आंसू बह निकले। तब उसे अपनी भूल स्मरण हो आई कि वह आवेश में, एक निराधार भय के झपेटे में सब बन्धन तोड़कर क्यों भाग आया ? ओह यह भय कितना भयंकर होता है। मन में जागता है तब मन बाज़ पक्षी की रफ्तार से उड़ता है।

उसने अपनी आस्तीन से अपनी गीली आंखें पोंछीं और स्थिर होकर बैठ गया। समीप के एक मुसाफिर ने स्नेहसिक्त स्वर में पूछ लिया, ‘क्यों भाई, तुम्हारा भी कोई सम्बन्धी हिन्दू-मुसलमानों के दंगे में मर गया है ?’

‘दंगा !’

वह कांप उठा। उसकी चेतना के नेत्र खुल गए।

अब उसे अपने आपपर क्रोध आने लगा। वह इस नाजुक समय में कहां जाएगा ? उसने बड़ी भारी गलती की कि वह घर से भाग आया। इस संसार में वह सर्वथा सम्बलरहित है। वह जहां भी जाएगा, उसे अपनत्व भरी दृष्टि से देखने वाला कोई नहीं मिलेगा। वह अकेला है, नितान्त अकेला।

थोड़ी देर रोने के बाद जब उसका मन हल्का हो गया तब वह स्वस्थ होकर बैठ गया और अपने पड़ोसी से दंगों के बारे में बातचीत करने लगा। उस मुसाफिर ने बताया कि हजारों हिन्दू-मुसलमान मारे गए हैं। खून की नदियां बह गई हैं, इन्सानियत खत्म हो रही है। उस व्यक्ति ने अन्तिम बार कहा, 'इसमें न तो हिन्दू का दोष है और न मुसलमानों का। भाई, समय ही ऐसा आ गया है। क्या आज़ादी, क्या गुलामी कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो एक चीज़ दिखाई पड़ती है—आदमी का खून, लाल खून !' गाड़ी रुक गई थी।

वह मुंह धोने के लिए नीचे उतरा कि उसे सेठजी ने पुकारा। उसने सुना नहीं। वह मुंह धोकर वापस आया तब सेठजी ने जोर से पुकारकर बुलाया। वह डिब्बे में चला गया, चुपचाप खड़ा हो गया।

'भैया, तुम कौन हो !' सेठानी मधुरता से बोली।

'ब्राह्मण !'

'क्या करते हो ?'

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं, क्यों भाई, क्या नौकरी नहीं करते ?' सेठजी ने बीच में विस्मय से पूछा, 'इस ज़माने में एक मिनट भी बेकार नहीं रहना चाहिए।'

नरोत्तम चुप हो गया।

'खाना खा लिया ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'मेरा सारा सामान स्टेशन से किसीने चुरा लिया है।'

'राम-राम, कैसा ज़माना आ गया है ? ईमानदारी किसीमें रही ही नहीं। अच्छा भैया, यह पानी की भारी भर ला और फिर हमारे साथ आकर खाना खा ले।'

नरोत्तम भारी लेकर चला गया।

सेठानी ने सेठ को समझाया, 'रात को इसे अपने पास ही रख लीजिए। दंगों का ज़माना है, कहीं रात-बरात कुछ हो गया तो काम आएगा।'

सेठजी ने उसका कहना मान लिया ।

जब नरोत्तम लौटकर आया तब सेठजी ने गहरी आत्मीयता का परिचय दिया । सेठजी ने पोपला मुंह हिलाकर कहा, 'भैया तू डर नहीं, संसार में जब किसीका कोई नहीं होता है तब भगवान उसका हो जाता है ।' 'तू फिकर मत कर, रात भर हमारे पास ही रहना । ले खाना खा ले ।'

नरोत्तम ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह सिसक पड़ा ।

'अरे जवान होकर रोता है, छिः, छिः, यह तो भाई तूने औरतों वाली बात कर दी, क्यों लिछमी ?'

'और क्या, आंसू तो औरत जात की आंखों में हर घड़ी रहते हैं । मर्द तो हिम्मत से काम लेते हैं ।' 'ले खाना खा ले ।'

हालांकि दुख नरोत्तम के हृदय में घुमड़ रहा था फिर भी भूख का अपना बिल-कुल अलग अस्तित्व था जो उसकी सारी व्यथाओं पर अपना पृथक् प्रभाव पूर्ण रूप से जमा बैठा । वह खाना खाने लगा जैसे सारी आपदाओं के बीच भूख सबसे बड़ी पीड़ा है ।

अभी वह पहला कौर भी नहीं लेने पाया था कि उसे अपनी मां की स्मृति आई । उसकी आंखें भर आईं । सेठानी जरा लम्बे स्वर में बोली, 'वाह रे वाह, क्या तू कमाने के लिए परदेस जा रहा है ? औरतों की तरह बात-बात पर रोता रहेगा तो परदेश का कष्ट खाक उठाएगा ।'

सेठजी भी बोल पड़े, 'तू काम-धंधे की चिंता-फिकर मत कर, मैं तुझे अपने पास रख लूंगा । कितना पढ़ा-लिखा है ?'

'बी० ए० का इम्तिहान देकर आया हूँ ।'

'फिर बस, हमारे छोरों को पढ़ा दिया करना । बस, अब तो राजी है न ?' सेठ ने एक विचित्र तरह की मुद्रा बनाई जो अप्रिय होते हुए भी अपनापन बता रही थी ।

नरोत्तम ने अपनी स्वीकृत दे दी । डूबते को तिनके का सहारा मिल गया । सेठ-सेठानी भी खुश हो गए ।

और रात पर गहरा सन्नाटा छा गया ।



कई ऐसे स्टेशन थे । जहां जान-माल का अधिक खतरा बना था, पर सेठजी के कथनानुसार कि मैंने हनुमान बाबा के सवा पांच रुपये का प्रसाद बोला है, इसलिए बिना विघ्न-बाधा के हम कलकत्ता पहुंच जाएंगे और वे सब सकुशल कलकत्ता पहुंच गए । बाद में सेठजी काम में अधिक व्यस्त हो गए, इस कारण प्रसाद भी करना भूल गए ।

४

तोरा शुनिस नि कि शुनिस नि तार पायेर ध्वनि,
 ए जे आसे, आसे, आसे ।
 युगे - युगे पले - पले दिन - रजनी
 से जे आसे, आसे, आसे ।

सुघर यौवना के सुमधुर कंठ से निकला हुआ यह 'रवीन्द्र-संगीत' सुबह-सुबह नरोत्तम को जगाता था । नरोत्तम एक जम्हाई लेकर जैसे ही उठता वैसे ही उसकी दृष्टि सामने वाले उस मकान पर जा पड़ती, जहां अभी-अभी नया किरायेदार ब्रजबिहारी चक्रवर्ती आया था ।

नरोत्तम उठा और उसने चुपके से सदा की भांति उस दुर्मांजिले पुराने मकान पर दृष्टि डाली जो जगह-जगह टूट गया था पर मकान-मालिक हरिवंश राय इतना कंजूस था कि मकान की मरम्मत भी नहीं करा रहा था । जिस किरायेदार को कोई मकान नहीं मिलता था, वह इस छोटे-से घर में आकर रहता था । बेचारा ब्रजबिहारी अभी-अभी धनवादा से आया है । रेलवे का नौकर है, आफिसर से खटपट हो जाने के कारण उनकी बदली कलकत्ता कर दी गई जिससे बेचारे की बसी-बसाई गृहस्थी को उजाड़कर यहां आना पड़ा ।

चक्रवर्ती को आए अभी दो सप्ताह हुए थे । इस बीच नरोत्तम की उससे एक बार भेंट हुई । बात कोई विशेष नहीं हुई थी, यही पड़ोसी के नाते अभिवादन-

नमस्कार !

वह सुधर यौवना भी और कोई नहीं, उसकी पुत्री इन्दिरा थी। ग्रेजुएट होने के साथ-साथ उसने अन्य बंगाली लड़कियों की तरह रवीन्द्र-संगीत का सुन्दर अभ्यास कर लिया था और हर सुबह उसका सुमधुर कंठस्वर नरोत्तम के लिए अमृत से कम नहीं था।

इन्दिरा अपने संगीत में तन्मय थी और नरोत्तम जाली की ओट से उसे अभी देख रहा था।

इधर नरोत्तम को कलकत्ता आए एक वर्ष पूरा होने जा रहा था। इस बीच उसने अपने घर वालों को दो ही पत्र दिए थे अपनी कुशलता और विवाह न करने के बारे में। इसपर उसकी मंगेतर 'तारिणी' का पत्र आया था कि यदि वह उससे विवाह नहीं करेगा तो वह आजन्म कुंवारी रहेगी। नरोत्तम ने इस पत्र को धमकी समझकर कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया, क्योंकि नारियों के प्रति उसके मन में जो धारणा थी, उससे यह निविवाद सोचा जा सकता है कि अर्थहीन सन्देह और भय के कारण उसका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं हो सकता।

उसका परिवार इस कारण उससे बड़ा ही असंतुष्ट था। चूँकि उसने साफ़-साफ़ लिख दिया था कि यदि उसपर विवाह के लिए अधिक दबाव डाला गया तो वह कहीं और भाग जाएगा। लाचार सबको मौन धारण करना पड़ा।

उसको हमेशा की भांति छुपकर देखकर नरोत्तम नीचे उतरा और दैनिक कार्यक्रम से छुट्टी पाकर वह सेठ माधोदास के यहां जा पहुंचा।

दो-तीन लड़के पहले से ही तैयार थे, उन्हें पढ़ाकर वह ज्योंही वापस आने लगा, त्योंही सेठानी ने मुस्कराकर कहा, 'मास्टर जी, कल से आपको सीता को भी संभालना पड़ेगा, आजकल अनपढ़ लड़कियों की शादी हमारे समाज में नहीं होती। पता नहीं, आजकल के इन छोकड़ों को लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई से क्या मिलता है?'

'संभाल लूंगा, पर माता जी, मैं इसे संध्या के समय पढ़ाने आऊंगा। एक साथ इतने बच्चों को पढ़ाना मेरे लिए संभव नहीं है।'

'कोई बात नहीं।' कहकर सेठानी जाने लगी। लेकिन फिर एकदम धूमकर बोली, 'सुनिए मास्टर जी, अब आप रात का खाना भी यहीं खाया कीजिए।'

‘नहीं, नहीं।’ वह बटता हुआ बोला।

‘नहीं’-‘नहीं’, अब नहीं चलेगी। बस, रात का खाना यहीं पर खाना होगा। सवेरे-सवेरे इधर-उधर मुंह मारते रहिएगा।’ सेठानी ने मुस्करा भर दिया।

‘बात यह है कि एक दिन का यह काम नहीं है। हर रोज़ की बात ठहरी और हर रोज़ के लिए यह बात बड़ी बुरी लगती है।

सेठानी का चेहरा गंभीर हो गया। उसकी आंखों में ममत्व उमड़ पड़ा। अत्यन्त धैर्य से बोली, ‘जब तुम मुझे अपनी मां समझते हो, तब इस प्रकार का परायापन कैसा? तुम्हें तो इसे अपना घर समझना चाहिए। बस, मेरा हुक्म है, रात का खाना तुम्हें यहीं खाना होगा।’

नरोत्तम स्वीकृति देकर घर आया।

स्नान आदि से निवृत्त होकर तौलिए को सुखाने के लिए ज्योंही बरामदे में आया त्योंही चक्रवर्ती ने नमस्कार किया।

‘शर्मा साहब, इधर आपके दर्शन ही मुश्किल हो रहे हैं। क्या आप हमसे रुष्ट हैं?’

आकस्मिक अपनत्व ने पल भर के लिए नरोत्तम को आश्चर्य में डाल दिया। नमस्कार-अभिवादन के बाद वह कृत्रिम मुस्कान लाकर बोला, ‘ऐसा तो नहीं है, चक्रवर्ती मोशाय, मैं तो दिन भर अपने कमरे में पड़ा रहता हूं अथवा पुस्तकालय तथा पिकचर देखने चला जाता हूं। यहां पर मेरा मिलना-जुलना बड़ा सीमित है। कुछ मैं स्वभाव से भी एकांतप्रिय हूं।’

‘मैंने इधर आपको देखा नहीं। पड़ोसी होने के नाते स्वाभाविक सहानुभूति व जिज्ञासा से अपने आपको वंचित नहीं रख सका, अतः आज पूछने का साहस कर बठा।’

‘कोई बात नहीं, कहिए कुछ आज्ञा कीजिए।’ वह कोमल स्वर में बोला।

दोनों मकानों के बीच जो तीन फुट की गली पड़ती थी, उससे गुजरते यात्री पल भर के लिए उनपर दृष्टि डालकर आगे बढ़ जाते थे। नरोत्तम को बिलकुल चुप देखकर चक्रवर्ती बोला, ‘आपसे विशेष काम है। दो मिनट देंगे?’

‘अवश्य, आइए!’ उसने अत्यन्त मधुरता से उत्तर दिया।

चक्रवर्ती वहां से चला। नरोत्तम ने तुरन्त अपने कमरे को ठीककर, बनियान गले में डाल उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

दोनों पड़ोसी कुछ देर तक शांत बैठे रहे।

चक्रवर्ती ने मौन भंग किया, 'बात यह है शर्मा जी, सम्पत्ति का अभाव मनुष्य के जीवन को विष से भी अधिक तिरक़्त बना देता है। बाप-दादे अपनी प्रापर्टी को पानी की भांति बहाकर परलोक सिधार गए। मैंने अपने जीवन को स्वयं बनाया है। क्या कहूं शर्मा साहब, अपनी बड़ी गृहस्थी का रथ इतने रूपयों में नहीं खींचा जाता, बड़ी मुश्किल पड़ जाती है। जीवन-संघर्ष से क्वांत हो चुका हूं। इसलिए आपको ज़रा कष्ट देने के लिए आ गया हूं।'।

नरोत्तम इस बीच कुछ आश्वासन देना चाहता था पर चक्रवर्ती अपने अन्तर के भावों को दबाने में सर्वथा असमर्थ रहा। वह भावावेश में बोलता ही गया। 'पहली लड़की का ब्याह कर चुका हूं, आप तो जानते होंगे मेरी बड़ी लड़की इन्दिरा को? बड़ी सुशील और अच्छी है। पर हठी बहुत है। त्रिया-हठ की साक्षात् प्रतिमा है, प्रतीक है। खैर, मैं भी क्या हूं? व्यर्थ ही अर्थहीन बातें बताने लगा। जीवन में उथल-पुथल होती ही रहती है। सुख-दुख और हर्ष-विषाद, सभी कुछ मनुष्य को देखने पड़ते हैं। इन्दिरा भी देख रही है। इसने इधर बी० ए० पास कर लिया है और रवीन्द्र-संगीत का भी ठीक-ठीक अभ्यास कर लिया है। मेरी इच्छा है कि इसे आप कहीं सविस दिला दीजिए।' चक्रवर्ती ने करुण दृष्टि से नरोत्तम की ओर देखा, फिर विगलित स्वर में बोला, 'मेरी तनख्वाह से तो सारे परिवार के लिए भात भी पूरा नहीं पड़ता। बड़ी मुश्किल से जीवन-यापन करना पड़ रहा है। आप पड़ोसी हैं, सज्जन हैं, तब मैंने अपनी आन्तरिक स्थिति आपके समक्ष प्रस्तुत कर दी, नहीं तो शर्मा साहब, कौन अपने घर का भेद देता है।'।

नरोत्तम ने विह्वल होकर चक्रवर्ती की ओर देखा। दुबला, पतला, गेहुआ रंग, साधारण व्यक्तित्व, बुझी-बुझी आंखें, आंखों के नीचे काली रेखाएं। जीवन से श्रांत, स्वयं से क्वांत।

वह सहानुभूति भरे स्वर में बोला, 'मैं शीघ्र ही इन्दिरा जी को 'जाँब' दिलवाने का प्रयत्न करूंगा, आप निश्चित रहिए। वैसे वे किस तरह का 'जाँब' चाहेंगी?'

‘यह उससे आप ही पूछ लीजिए, मैं उससे कह दूंगा कि वह आपसे मिल ले।
वैसे स्वभाव की वह बड़ी अच्छी है।’

‘नहीं, नहीं, उन्हें कहने की कोई जरूरत नहीं। आप पूछकर बता दीजिए !’
उसने तनिक व्यग्रता से कहा।

‘नहीं नरोत्तम बाबू, इसका मतलब तो यह है कि आप कुछ दिन मुझपर विशेष ध्यान देना नहीं चाहते। पर मैं आपको स्पष्ट रूप से बताना चाहता हूं, कि मैं बहुत गरीब हूं। यह जो आप शालीनता और ठाट देख रहे हैं, सब कागज के घर के समान हैं।’ उसका स्वर रुद्ध हो गया, ‘ब्रिटिया के विवाह के लिए दहेज चाहिए, दहेज के बिना सुशिक्षित और सुशील वर नहीं मिलता ? सच कहूं हमारा बंगाली समाज अर्थहीन प्रतिष्ठा के पीछे भाग रहा है। यहां की युवतियां अन्तर्दाह में जल-जलकर अपने को समाप्त कर रही हैं। अनमेल विवाह, भिन्न रुचि का वर। दुलहिन दुर्बल तो वर मोटा ! एक अजीब सम्बन्ध ! फिर भला उद्धार कैसे होगा ? आपने शरत् को पढ़ा होगा। नारी के जीवन की पीड़ा के क्या सभी रूप आप उस महान कलाकार में नहीं देखते ? देखते हैं, पढ़ते हैं और वाह-वाह करके मन को सांत्वना दे देते हैं। पर केवल वाह-वाह से सुफल की प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती। आवश्यकता है उस महान कलाकार द्वारा चित्रित नारी पात्रों के प्रति गहरी समवेदना और सहृदयता प्रदर्शित करने की; उसके अनुकूल वातावरण और समाधान प्रस्तुत करने की। पर ऐसा होता कहां है और न होने के अभाव में हमारा बंगाली समाज बहिर्जंगत से प्रगतिशील प्रतीत होकर भीतर-भीतर खोखला होता जा रहा है। जब तक मनुष्य को आन्तरिक शांति प्राप्त नहीं होगी तब तक शर्मा साहब ! वह सही शब्दों में अपने को ‘सिवलाइज्ड’ व ‘कलचर्ड’ नहीं कह सकेगा।’

नरोत्तम ने उत्तर में कहा, ‘बात केवल आपके समाज तक नहीं है। भारतवर्ष का सारा ढांचा ही दो रूपों में विभक्त है। हमारे यहां के व्यक्तियों की एक विशेष विचारधारा रही है कि अपने आपसे छल करना। क्षुधा से पीड़ित होकर अपने आपको भोजन किया हुआ बताना। मांगकर वस्त्र पहनकर भी डींग हांकना कि मैंने फलां मित्र को एक सूट यूँही दे दिया। लेकिन मुझे उन व्यक्तियों से ज़रा भी शिकायत नहीं। यदि वे ऐसा न करें तो उनकी अपरिसीम तृष्णा की अनंत भूख शांत

कैसे होगी ? अपराध तो है उन बुद्धिवादियों का जो इस प्रकार गलत परम्पराओं, धारणाओं और व्यवस्था को कायम रहने का प्रोत्साहन देते हैं। वे क्यों नहीं यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते ? वे क्यों नहीं कहते हैं कि हम यह हैं ? हमारी अस-लियत यह है। पर सामाजिक मान-प्रतिष्ठा उन्हें दुर्बल किए हुए हैं। वे भी उसी जमात में शामिल हो जाते हैं, जिसमें सिद्धान्तहीन व्यक्ति प्रश्रय पाते हैं।'

नरोत्तम आवश्यकता से अधिक गंभीर हो गया। उसके स्वर में तनिक क्षोभ था। वह बोला, 'मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस समाज-व्यवस्था को ही समाप्त करके अपने दायरे को इतना विस्तृत क्यों न कर लें कि हमारे सम्बन्ध 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की ओर बढ़ते जाएं। उदाहरणार्थ : एक बंगाली एक मद्रासी से अपने वैवाहिक सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित करता और एक राजस्थानी एक गुजराती को अपना भाई क्यों नहीं समझता ? समस्या यह है कि हम बहुत व्यापक रूप में सोचते हैं, और अत्यन्त संकुचित रूप से कार्य करते हैं।'

'हां-हां'... वह टूटते हुए स्वर में बोला।

'प्रत्येक समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस सत्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। वह आवश्यकताओं को महसूस करता है पर उनके अनुकूल कदम नहीं उठा सकता। तब कहना पड़ता है कि प्राचीनता के प्रति, रूढ़ियों के प्रति हमारे मन की गहराई में अनिवार्य सम्मोह है और उसे तोड़ते हुए हमारे मन में भय जागता है।'

चक्रवर्ती चुप हो गया। कुछ देर बाद वह पराजित होकर बोला, 'मैं समझता हूँ कि हमारे समाज की सबसे उपेक्षित, प्रताड़ित और पीड़ित युवती अन्त में सभी मानदंडों की अवज्ञा करके 'शेष प्रश्न' की 'कमल' बन जाएगी। प्रत्येक बात के प्रति उसमें गहरा विद्रोह होगा।'

'ऐसा भी संभव है।' नरोत्तम अपने शब्दों पर जोर देकर बोला।

इन्दिरा ने अपने वरामदे से ही 'बाबा' को आवाज दी।

'लीजिए, अर्जेंट तार आ गया है, दफ्तर की फाइलें प्रतीक्षा कर रही होंगी।' और फिर वह हंसकर उच्च स्वर में बोला, 'आया इन्दिरा।'

फिर आगे बात नहीं बढ़ी।

चक्रवर्ती ने उठते-उठते कहा, 'देखिए आप मेरी प्रार्थना पर कान लगाइएगा।

अच्छा तो यही होता कि आप स्वयं उससे मिल लेते ।’

‘नहीं, नहीं चक्रवर्ती मोशाय, इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है । आप जरा उनकी रुचि का पता लगाकर मुझे बता दीजिए, वस ।’

‘जैसी आपकी आज्ञा, मैं ही पूछ दूंगा ।’

चक्रवर्ती चला गया ।

नरोत्तम सामने की मेज पर पांव फैलाकर विचारमग्न-सा बैठ गया । हालांकि उसने चक्रवर्ती को स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह इन्दिरा से मिलना नहीं चाहता पर थोड़ी देर बाद उसे अपने आपपर क्रोध आया कि वास्तव में वह नारी के नाम से बहुत अधिक घबरा जाता है । तब उसे यह भी याद आया कि कभी-कभी सेठजी की नातिनें उससे हंसी-मजाक कर लेती हैं तब वह चाहकर भी उत्तर नहीं दे सकता । वह इतना निर्बल और डरपोक क्यों है ? संकोच केवल उसे ही क्यों ? और भी तो युवक हैं ? वह गंभीर होकर सोचने लगता—अपनी इस दुर्बलता पर ।

तब उसने मन ही मन यह निर्णय किया कि वह कल इन्दिरा से प्रथम भेंट करेगा । उसके स्वभाव से परिचित होकर उससे होटल या किसी अच्छे रेस्तरां में मिलेगा । बातचीत करेगा, फिर उससे गहरी मित्रता कर अपने एकांत को समाप्त करेगा ! प्रायः सभी विद्वानों का कहना है कि एकांत और अन्तर्मुखता जीवन को पीड़ा की ओर ले जाती है ।

लेकिन वह ऐसा कुछ भी नहीं कर सका । चक्रवर्ती के दफ्तर जाते ही जब इन्दिरा ने उसके कमरे में प्रवेश किया तब उसे लगा कि उसका अंग-प्रत्यंग जड़ हो गया है । उसकी खर बुद्धि अर्पण हो गई है । वह नमस्कार करना चाहता था पर नहीं कर सका । बड़ी मुश्किल से उसने उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत किया ।

‘नरोत्तम बाबू, क्या मेरा आगमन अशुभ वेल में हुआ है ?’ उसने बैठते ही पहला प्रश्न किया ।

‘नहीं तो ।’ उसने व्यग्रता से कहा ।

‘फिर आप घबरा क्यों रहे हैं ?’

‘नहीं नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है ।’ उसके स्वर में कंपन था ।

इन्दिरा के अधरों पर मुक्त हास्य बिखर गया । वह दृष्टि को नरोत्तम पर जमाती

हुई बोली, 'बाबा कह रहे थे कि आप बड़े प्रतिभाशाली एवं प्रभावशाली व्यक्ति हैं, पर आप तो स्वच्छंदतापूर्वक बोल भी नहीं सकते। खैर, मैं भी आपकी आलोचना-प्रत्यालोचना करने बैठ गई। मुझे तो अपने 'प्वाइंट' पर आना चाहिए। अपने आंचल के एक छोर को जिसमें उसकी चाबियों का गुच्छा बंधा था, हाथों में लेकर वह चाबियां गिनने लगी। गिनती-गिनती बोली, 'बात यह है नरोत्तम बाबू, मैं पढ़ाने का काम पसंद करूंगी। यदि आप तीन-चार ट्यूशन दिला दें तो उत्तम रहेगा। एक बात मैं अपनी सहूलियत के लिए और कहना चाहूंगी कि किशोर व युवतियों के ट्यूशन की अपेक्षा मैं बच्चों के ट्यूशन करना अधिक पसंद करूंगी। ममत्व से पढ़ाने में जो आनंद आता है, वह स्नेह और प्यार से पढ़ाने में नहीं।'।

नरोत्तम नीची दृष्टि किए सब सुनता रहा। थोड़ी देर पूर्व की सभी योजना ताश के महल की तरह तहस-नहस हो गई—रेस्तरां की बात, मित्रता की बात, सभी कुछ ! रह गई एक अजीब-सी कशमकश।

'अच्छा, मैं चलती हूं, नमस्कार।' वह तुरन्त वहां से चल दी।

'नमस्कार।' कहकर नरोत्तम ने ज्योंही सिर ऊंचा किया, त्योंही इन्दिरा कमरे के बाहर चली गई। नरोत्तम को लगा कि वह उससे जरूर नाराज होकर गई है। किसीके स्वागत में साधारण शिष्टता का ध्यान न रखना बड़ी अभद्रता है, आगन्तुक का अपमान होता है, और फिर उस आगन्तुक का जो पहली बार उसके यहां पाहुना बनकर आया है।...अरे उसे तो चाय-बिस्कुट का प्रबन्ध करना चाहिए था। यदि वह ऐसा नहीं कर सका तब कम से कम उसे जल के लिए तो अवश्य पूछना चाहिए था। पर वह इतना घबरा क्यों गया ? तब उसे अपने आपपर ग्लानि हुई। वह सिर पकड़कर बैठ गया।

तब उसके मन में आया कि वह इसी समय चलकर उससे क्षमा-याचना करेगा। अपनी अभद्रता के लिए खेद प्रकट करेगा। फिर उसने सोचा कि अभी नहीं। अभी उसका मूड अच्छा नहीं होगा। वह सांध्य-बेला उसको पुकारकर उसे स्पेशल चाय बनाकर पिलाएगा, और तब उससे क्षमा मांगेगा।

थोड़ी देर बाद उसने अपना यह भी विचार बदल दिया। एकांत में वह कहीं बिगड़ गई तो ? बड़ी हिम्मतवाली है। तब नरोत्तम को राजिया की भाभी अप्रत्या-

शित याद हो उठी। वह भी तो इतनी ही हिम्मत के साथ उससे पहले पहल वार्ता-लाप करने लग गई थी।

तब उसने निश्चय किया कि वह चक्रवर्ती के सामने ही इन्दिरा से क्षमा मांगेगा। पिता के समक्ष अमूमन लड़कियां मर्यादाहीन नहीं होतीं, वह आलोचकों की भांति नहीं चीखतीं और उपदेशक की भांति सूत्रों में बोलने का प्रयास नहीं करतीं। उस समय उनमें प्रायः साधारण नारी के गुण मौजूद रहते हैं। और कुछ यहां की युवतियां भावुक होती ही अधिक हैं। पल-पल में रुटना, राजी होना, रोना-हंसना ! वह इंदिरा को कहेगा कि तुमने भी तो अशिष्टता की है। पूरी बात किए बिना ही, नमस्कार का प्रत्युत्तर सुने बिना ही तुम भी तो भाग गई। ऐसा क्यों ? यह भी तो भारी अशिष्टता है, असभ्यता है। उसे भी मुझसे क्षमा मांगनी चाहिए।

काफी देर इस तरह की बातों में बिताने के बाद उसने सामने के बरामदे की ओर दो-तीन बार ताका भी पर उसे इन्दिरा कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ी। वह विशेष चिन्तित हो उठा। उसने सोचा कि इस समय तो वह प्रायः बरामदे में बैठी गृहस्थी का कार्य करती रहती है। आज उसकी अनुपस्थिति ने उसके सन्देह को और बल दे दिया। उसे महसूस हुआ कि वह उससे जरूर नाराज है।

वह पुनः बिस्तरे पर आकर पड़ गया। कुछ देर बाद उसके स्मृति-मंदिर में वही स्वर गूंज पड़ा—‘तोरा शुनिस नि कि शुनिस नि तार पायेर ध्वनि’—वह मुग्ध हो गया। इन्दिरा उसके पास खड़ी नहीं रही हो, किन्तु जब वह लौटी थी तब उसकी पगध्वनि उसके कानों में क्यों नहीं पड़ी। उसकी पगध्वनि पावन अमृत की तरह होगी, अवश्य होगी। उसका हर कदम पृथ्वी पर फूल की भांति पड़ता होगा, जरूर पड़ता होगा। जिस रूप की छटा को वह अपने मुख पर दीप्त कर रही है, वह छटा अलौकिक है। ‘‘उसका मन... उसका मन... ! वह विह्वल हो गया। उसके कानों में वही गीत गूंजने लगा... ‘तार पायेर ध्वनि...’।

मधुर स्मृतियों से थककर वह उठा और खाना खाने के लिए भोजनगृह की ओर चल पड़ा। इस भोजनगृह में मारवाड़ी भोजन बनता था। साधारण तो नहीं, उच्च मध्य वर्ग के मारवाड़ी प्रायः इसी भोजनालय में खाना खाते थे। बड़ा बाज़ार की गली में बसा यह भोजनालय कलकत्ता में बड़ा प्रसिद्ध था। इसलिए कभी-कभी

उसकी मारवाड़ी मुनीमों से भेंट हो जाती थी, एक-दो उसके साधारण मित्र भी थे। क्योंकि वह एकांतप्रिय था, अतः उसकी मित्रता किसीसे भी गहरी नहीं हो सकी।

भोजन से निवृत्त होते ही भवरीलाल आ गया। यह उसके गांव का रहनेवाला था। दोनों गांव के स्कूल में साथ-साथ पढ़े भी थे पर यहां वे अत्यन्त साधारण रूप से मिलते थे। बात कुछ तो करनी चाहिए, इसलिए वे कभी-कभी बचपन की घटना को बड़ी संक्षिप्तता में दुहरा लिया करते थे। आज भी वैसी ही चर्चा रही।

भोजन करके नरोत्तम घर आ गया। हरिसन रोड से वह कहानी का एक मासिक पत्र खरीद लाया। समय काटने के लिए इन पत्रों में काफी मनोरंजक सामग्री मिल सकती है, ऐसा उसका विश्वास था।

वह पलंग पर लेटकर कहानियां पढ़ने लगा। कभी-कभी उसे सनसनीखेज व भूत-प्रेतों की कहानियां बड़ी ही दिलचस्प लगती थीं और वे उसे आशातीत संतोष दिया करती थीं।

आज भी वैसा ही हुआ।

वह कहानियों की रोमांचकारी घटनाओं में अपनी अन्तर्बाह्य स्थिति को भूल गया। पढ़ते-पढ़ते उसको नींद आने लगी। तभी सेठजी के बलिया जिले के दरबान ने द्वार खटखटाया। वह अपने हाथ में एक पत्र लाया था, उसे देकर उसने सेठजी की आज्ञा सुना दी कि इसका जवाब आज शाम तक मिलना चाहिए। नौकर वापस चला गया।

पत्र खुला था।

प्रिय मास्टरजी,

.....की मिल में हमें एक अच्छी मिस्ट्रेस की जरूरत है, जो बंगाली के माध्यम से पढ़ा सके। यदि आप उचित व्यवस्था कर सकें तो अति उत्तम रहेगा अन्यथा एक संक्षिप्त विज्ञापन बनाकर 'अमृतबाजार पत्रिका' व 'आनंद बाजार पत्रिका' में भेज दें। मिस्ट्रेस का बंगालिन होना अच्छा रहेगा।

—माधोदास

ब्रिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया।

संध्या-बेला ।

धुएं से विषाक्त वातावरण । दफ्तर से लौटते हुए हारे-थके बाबू ।

कोलाहल, अशांति और व्यग्रता ।

चक्रवर्ती घर लौट रहा था । उसके हाथ में सब्जी का थैला था । हरे प्याज थैले के बाहर झलक रहे थे । एक चप्पल का कसा टूट जाने के कारण वह अपने पांव को घसीटता हुआ उठा रहा था ।

सदा की तरह उसने घर की मुख्य डचौड़ी से ही स्नेह भरे स्वर में पुकारा, 'इन्दिरा, ओ बेंटी इन्दिरा ।'

'आई बाबा ।' इन्दिरा ने उत्तर दिया ।

पढ़ने की पुस्तक को रखकर नरोत्तम उठा और कपड़े पहनकर जल्दी-जल्दी सेठजी की बाड़ी की ओर चला ।

घर से निकलते ही चक्रवर्ती ने आंखें मटकाकर, इन्दिरा को थैला पकड़वाकर पूछा, 'क्यों नरोत्तम बाबू, कुछ हमपर भी ध्यान दिया, हम बड़े संकट में हैं । जरा तड़ातड़ी काज दिलाइएगा ।'

नरोत्तम उसके समीप आ गया था ।

गंभीरतापूर्वक बोला, 'बात यह है कि मैं इसके बारे में वापस आकर बातचीत करूंगा । अभी मैं जरा जल्दी में हूँ ।'

'कोई बात नहीं ।' चक्रवर्ती ऊपर चला गया; नरोत्तम सेठजी के घर की ओर ।

वहां से निवृत्त होकर एवं भोजन करके नरोत्तम नौ बजे वापस घर लौटा तो चक्रवर्ती उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । उसने बरामदे में कुर्सी डाल ली थी और वह नंगे बदन था । उसकी पहनी हुई लूंगी भी एक-दो जगह कट गई थी । पान अधिक चबाने के कारण उसके होंठों पर लाल रंग की पपड़ी जम गई थी ।

नरोत्तम को देखते ही चक्रवर्ती ने तनिक तेज स्वर में पुकारा, 'नरोत्तम बाबू, इधर आएं या मैं उधर आऊं ?'

'आप ही इधर आ जाएं, जरा एकांत रहेगा ।' नरोत्तम ने देखा कि इन्दिरा

नीची नज़र किए हुए चुपचाप गम्भीर मुद्रा में बैठी है। उसके बालों की एक लट उसके ललाट पर झूल रही है जिससे वह बड़ी भोली लग रही है। वह ध्यानमग्न होकर देखता रहा—‘सींदर्य कितना सहज और दुर्लभ है।’

चक्रवर्ती ने उसके मन की बात को पहचानकर या यूँ ही कहा हो, पता नहीं, पर नरोत्तम को लगा कि चक्रवर्ती को उसका इस प्रकार इन्दिरा को घूरना आपत्तिजनक महसूस हुआ होगा। इसीलिए उसकी दोनों आँखों में अपमानजनक लज्जा तैर आई।

चक्रवर्ती बोला, ‘आपके यहां ही अच्छा रहेगा, वैसे इन्दिरा आपसे बहुत शरमाती है।’ इतना कहकर चक्रवर्ती ने मुस्कराकर इन्दिरा की ओर देखा।

‘वह शरमाती है।’ इसीपर नरोत्तम मन ही मन विचारता रहा। वह विचारों के संघर्ष के कारण अपने कपड़े भी नहीं बदल सका। विमूढ़-सा कुर्सी पर बैठ गया। उसने पल भर के लिए सोचा कि जो युवती मुझसे आकर स्वच्छन्दतापूर्वक यहां मिल सकती है वह संकोचशील कैसे हो सकती है? नारी और नारी का चरित्र उसके सामने नाच उठा।

चक्रवर्ती ने आते ही मुस्कराकर कहा, ‘इन्दिरा कहती थी कि मैं नहीं शर्माती हूँ बल्कि नरोत्तम बाबू शर्माते हैं। दोपहर में मैं उनके यहां गई थी तो उन्होंने मेरा बड़ा अपमान किया। क्या अतिथि के साथ इस प्रकार का सलूक किया जाता है? मैं पहली बार उनके यहां गई और पहली बार ही आतिथ्य से वंचित रखी गई। देखिए बाबा, यह अवश्य किसी उजड़ु प्रांत की सभ्यता होगी। नहीं तो भला वे साधारण शिष्टता का व्यवहार तो करते?’

चक्रवर्ती हल्के उपहास से कहता गया और नरोत्तम निरुत्तर सुनता रहा।

जब चक्रवर्ती बिलकुल चुप हो गया तब नरोत्तम ने आहिस्ते से गर्दन उठाकर कहा, ‘आज मैंने सेठजी से बातचीत की थी।’

‘उन्होंने क्या कहा?’

‘उन्होंने सारा का सारा मामला मुझपर छोड़ दिया है।’ नरोत्तम ने क्षण भर के लिए अहम् भरी दृष्टि चक्रवर्ती पर डाली।

‘फिर हमारी सहायता कर ही दीजिए। यह दरिद्रावस्था और अभाव की पीड़ा

अब असह्य होती जा रही है। आप सोचिए न, नरोत्तम बाबू, कभी-कभी छोटी-छोटी वस्तु के लिए अपनी इच्छा को मारना पड़ता है। मुझे अपने लिए दुःख नहीं होता पर बच्चों के लिए मुझे हादिक सन्ताप होता है। अभी इन्दिरा की छोटी बहिन सुनंदा ने धनबाद से लिखा है कि मुझे एक शांति निकेतन की बनी साड़ी खरीदकर भेजिए। आजकल सभी लड़कियां वहीं की बनी साड़ी पहनकर आती हैं। 'अब आप ही बताइए, नरोत्तम बाबू, एक अच्छी साड़ी के लिए मैं उसकी अभिलाषा का अन्त कैसे कर सकता हूं। फिर लड़की पराया धन होता है। आज नहीं तो कल, वह हमसे बिदा होकर ससुराल चली जाएगी। तब केवल उसकी स्मृति हमारे अन्तराल में अंकित रहेगी।' चक्रवर्ती का गला भर आया।

उसकी आंखें सजल हो गईं। स्वर में वेदना का पूरा प्रभाव था। वह अपनी दृष्टि को दूर-दूर तक फैलाता हुआ बोला, 'सभी लोग कहते हैं कि लड़कों पर अधिक स्नेह, प्यार, करुणा, दया रखो और मेरा विचार है कि लड़कियों पर, क्योंकि बेचारी ये लड़कियां ही परिवार के समस्त मोह-बन्धन तोड़कर नये घर हैं सदा-सदा के लिए चली जाती हैं। वहां वे नये प्यार की सर्जना और स्थापना करती हैं। जीवन को नये सांचे में ढालती हैं। नया गृह-निर्माण करती हैं, नये सम्बन्ध बनाती हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि उस नये घर में सभी कुछ ये नया बनाती हैं और उस नयेपन में यदि उन्हें अपने पीहर की सुध हो, एक मधुर और आनंदित स्मृति हो, तभी मां-बाप का जीवन सफल होता है।' वह क्षण भर रुककर बोला, 'आप ही कहिए, किसीकी बेटी अपनी सहेली के साथ यह कहलाए कि मेरे बाबा और मेरी मां को जाकर कहना कि मुझे अपने घर की और आपकी याद बहुत आती है, मैं आपको क्षण भर के लिए नहीं भूल सकती, तब जरूर उस लड़की की मां की आंखों में आंसू आ जाते होंगे और बाप का दिल भर आता होगा। यहीं आकर मां और बाप का जीवन सफल होता है।'।

नरोत्तम को लगा कि इस व्यक्ति के अन्तर में भावना का एक तूफान है जिसे वह किसीके समक्ष निकालना चाहता है, पर परिस्थिति इतनी जटिल है कि निकाल भी नहीं सकता। जब निकालता है तब कुछ भी दुराव नहीं रखता।

'बात यह है चक्रवर्ती बाबू, पोस्ट भी अच्छी है, हेडमिस्ट्रेस की, तनखाह भी

लगभग १५० रुपये होगी ।’

‘फिर मेरी ओर से आप फाइनल कर लीजिए । १५० रुपये तनखाह से हमारी छोटी-मोटी आवश्यकताएं पूरी होने के बाद हम कुछ बचा भी सकेंगे ।’

‘पर एक नई समस्या और खड़ी हो गई है ।’ नरोत्तम ने तनिक गम्भीर होकर कहा ।

‘क्या ?’ चक्रवर्ती को धक्का-सा लगा ।

‘...उसे...बाहर जाना होगा । हमारे सेठजी की कलकत्ता के बाहर ‘मिल’ है, वहां बच्चों को पढ़ाने के लिए एक हेडमिस्ट्रेस की जरूरत है ।’

‘बाहर !’ चक्रवर्ती गंभीर हो गया ।

‘मेरे ख्याल से इन्दिरा को पूछना अधिक उचित होगा । यदि वह बाहर जाना चाहती हो तो आपको भी कोई एतराज नहीं होना चाहिए । वैसे वह जगह कलकत्ता से थोड़ी ही दूर है ।’

‘फिर भी अकेली...’

‘अकेली कैसे, उस मिल में अस्सी प्रतिशत बंगाली काम करते हैं । स्कूल में ही क्वार्टर दिलवा दूंगा । आप निश्चित रहिए, वहां वह बड़ी प्रसन्न रहेगी । फिर आपको सुनंदा का विवाह भी करना है, उसके दहेज का प्रबन्ध करना है, ऐसी हालत में ऐसा बढ़िया अवसर नहीं खोना चाहिए । खैर, आप इसपर गंभीरता-पूर्वक सोच लीजिए ।’

चक्रवर्ती चला गया ।

नरोत्तम फिर अध्ययन में तल्लीन हो गया ।

६

कुछ दिनों बाद—

सवेरे-सवेरे ही तारिणी का एक्सप्रेस-पत्र मिला । तारिणी नरोत्तम की मंगेतर

थी। आज एक साल पहले उसका एक पत्र आया था कि यदि वह शादी करेगी तो केवल उससे ही, अन्यथा वह कुंवारी ही रहेगी, आजन्म विवाह नहीं करेगी। पर नरोत्तम को विश्वास था कि यह केवल धमकी है। न तो नारी आजन्म कुंवारी ही रह सकती है और न उससे ब्रह्मचर्य पालन ही सम्भव है। वह एक न एक दिन प्रकृति की स्वाभाविक मांग—काम से पीड़ित व सन्तान की तीव्र इच्छा के वशीभूत होकर अपना समर्पण साधारण से साधारण व्यक्ति को कर देती है। क्या तारिणी भी कुछ दिनों बाद अपना इरादा नहीं बदल देगी? जरूर बदलेगी। 'तन, मन, सर्वस्व तुम्हारा' कहने वाली युवतियाँ शनैः-शनैः अपने प्रेमी को भूलकर पति की अखंड अर्चना में लग जाती हैं। फिर आजन्म व्यथा कौन सह सकती है?

लेकिन आज उसका पत्र पुनः पाकर वह विस्मय-विमूढ़ हो गया। तारिणी ने बहुत लम्बा पत्र लिखा था। पत्र की लिखावट बड़ी सुन्दर थी। कागज भी अच्छा नीले रंग का लगाया हुआ था।

उसने पत्र को खोलकर पढ़ना शुरू किया।

श्री नरोत्तम बाबू,

प्रणाम !

अन्तःकरण में एक अमानुषिक पीड़ा एक वर्ष से निरन्तर संचरण करती रही। नारी का मान कहिए या हठ, पर मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मैं आपको भविष्य में कभी भी पत्र नहीं लिखूंगी। एक ही मनुष्य यदि बार-बार समर्पण करता है तब उसका स्वाभिमान पंगु हो जाता है, यही विचारकर मैं पूरे वर्ष भर अन्तर्दाह में जलती रही। वह दुःख मेरे विगत जीवन की शून्यता का सम्बल था, स्मृतियों का जगमगाता अखंड दीया !

मैंने बी० ए० पास कर लिया है। लेकिन मुझे उसकी प्रसन्नता नहीं है। आप सोचकर लिखिए कि यदि एक स्त्री का विवाह बिना किसी असाधारण कारण से रुक जाता है तब उसके चारों ओर का वातावरण कैसा बन जाता है? विषम वातावरण और लांछनाओं व कटूक्तियों के तीव्रतम प्रहारों ने मुझे कुछ काल के लिए उद्भ्रान्त बना दिया था। मेरी समझ में नहीं आया कि हमारे समाज में नारी की प्रतिष्ठा व व्यक्तित्व इतना निम्न क्यों है कि साधारण से साधारण घटना

उसपर संदिग्धता का गहरा आवरण डाल देती है। किसीने आपपर दोषारोपण नहीं किया अपितु मेरे चरित्र के बारे में ही मेरे आसपास के लोगों ने विचित्र-विचित्र आंतियां फैलाईं। मैं यह सभी सहिष्णुता की साकार प्रतिमा बनकर सहती रही। उन्हें क्या कहती? दुःख तो इस बात का था कि मैंने विवाह के पहले न कभी आपको देखा और न आपसे किसी प्रकार की बातचीत ही की। निराधार राय में आपके बारे में नहीं दे सकती। अतः मैं बिलकुल चुप रही और मैंने इन सभी आन्तियों का सही समाधान अब शेष के रूप में यही निकाला है कि मेरा व्याह केवल आपसे हो अन्यथा मैं आजन्म कौमार्य-व्रत का पालन करूं।

मैं यह भी समझती हूं कि यह प्रतिज्ञा बहुत कठोर है। लेकिन इस देश की नारी का एक यह भी गुण है कि वह अभिशाप को श्रेष्ठ वर के रूप में ग्रहण करके शेष जीवन व्यतीत कर देती है। मैंने ऐसी विधवाओं को देखा है जिन्होंने दयाहीन नियति की क्रूरता को ही कोमलतम स्पर्श मानकर श्रम की कठोरता में अपने आपको तन्मय कर वर्ष पर वर्ष बिता दिए हैं। पुरुष-संसर्ग क्या है, यह या तो वे पूर्वजन्म में भोगकर आई थीं अथवा वे अगले जन्म में भोगेंगी। फिर भी वे चारित्रिक दुर्बलता का शिकार नहीं हुईं। प्रचंड तेजस्विनी तार्किक गार्गी का उदाहरण मेरे समक्ष है।

मेरा विश्वास है कि हर नारी एक जैसी नहीं होती, उसके जीवन का उद्देश्य एक नहीं होता, उसके रास्ते एक नहीं होते, सभी कुछ भिन्न होता है। साम्य है तो पंचतत्त्व के भौतिक शरीर के निर्माण में। लेकिन यह साम्य व्यर्थ है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करूंगी कि अब आपने अच्छी तरह विवाहादि के बारे में सोच लिया होगा और अब मेरे जीवन की सार्थकता भी आपको प्राप्त करने में ही है। यदि इसपर भी भाग्य-विडम्बना ने मेरा साथ नहीं छोड़ा, तब मुझे सभी अभावों को सर्वस्व मानकर शेष जीवन घोर एकाकीपन में बिताना होगा। मेरे लिए अन्य पुरुष से विवाह करना सर्वथा असंभव है। इसे मेरा हठ समझिए या प्रतिज्ञा अथवा प्रार्थना!

मां का गत सप्ताह देहांत हो गया है। ममताहीन होकर मैं अधिक दुखी हो गई हूं। आंख का आंसू पोंछने वाला भी कोई नहीं है। आंचल का छोर पवन में लहराता किसीकी प्रतीक्षा करता रहता है और आंसू कपोलों पर टुलककर अस्तित्व-

हीन हो जाते हैं। यहां कृविता की भाषा स्वतः ही फूट पड़ी है।

ऐसे संकट के समय में क्या आप अपने विचार बदलकर मेरे हाथ पीले नहीं करेंगे ? मैं आपको स्पष्ट लिखना चाहती हूं कि मेरा कोई अपराध है तो उसपर प्रकाश डालिए, मेरे चरित्र में कलंक, अपयश और दुष्टता के धब्बे हों तो उन्हें बताइए, व्यर्थ ही मेरे जीवन को पीड़ित मत कीजिए।

पत्र की प्रतीक्षा में—

—तारिणी

नरोत्तम के मस्तिष्क में इस पत्र ने गहरी प्रतिक्रिया की। वह काफी देर तक चुपचाप बिस्तरे पर पड़ा रहा।

इधर उसके कानों में इन्दिरा का रवीन्द्र-संगीत भी नहीं पड़ रहा था। वह... चली गई थी ! मिल के कामगरों के बच्चे इन्दिरा के कार्य और शिक्षण-पद्धति से बड़े संतुष्ट थे। बच्चों में उसका प्रभाव एक मां से कम नहीं था। बच्चे उससे बहुत हिलमिल गए थे।—ऐसा पत्र द्वारा इन्दिरा ने उसे सूचित किया था।

वह अकेला, बिलकुल अकेला था।

उसके हृदय में बार-बार तारिणी के प्रति मृदुल भाव उठते थे। वह नारी अर्थ-हीन संयम में जीवन के स्वाभाविक सुख-दुख से वंचित हो जाएगी, एक दुराशा की तीव्र उत्कंठा—‘शायद नरोत्तम अपने विचार बदल दे’—उसे तात्पर्यहीन पीड़ा में जलाती रहेगी। मनुष्य का महानतम जीवन निरुद्देश्य समाप्ति की ओर अग्रसर होता जाएगा। इसका जिम्मेवार होगा वह, केवल वह।

वह बहुत उद्विग्न हो गया।

वह उठकर बरामदे में आया और पुकारने लगा, ‘चक्रवर्ती बाबू, चक्रवर्ती बाबू।’

चक्रवर्ती घर में नहीं था अतः उसकी पत्नी आकर बरामदे में खड़ी हो गई। हल्के स्वर में बोली, ‘वे तो सब्जी लेने गए हैं, कहिए कुछ काम है क्या, मैं उन्हें कह दूंगी।’

‘बात यह है भाभी, मुझे एक कप चाय चाहिए, यदि आपको बनाने में कष्ट न हो तो बना दीजिए।’

‘अभी घनाकर भेजती हूँ।’ कहकर चक्रवर्ती की स्त्री भीतर चली गई। नरोत्तम ‘अमृत बाजार पत्रिका’ पढ़ने लगा।

थोड़ी देर के बाद चक्रवर्ती का लड़का मुन्नू चाय लेकर आ गया। नरोत्तम ने उसके हाथ से चाय लेकर चूमा, ‘वयों रे खोखे (लड़के) तेरी इन्दिरा दीदी की कोई चिट्ठी आई है?’

‘हां।’

‘क्या लिखा?’

‘कुछ नहीं।’

‘क्या कहा, कुछ नहीं, भूठ बोलता है? बता तेरी दीदी वहां खूब आनन्द में तो है?’

‘हां।’

‘यहां आएगी?’

‘नहीं। दीदी वहां काज करने लग गई है। बाबा कहता था कि वह बहुत टका (स्पया) कमाती है।’

‘अच्छा।’

उसने आंखें फाड़कर खूब नाटकीयता से सिर हिला दिया। नरोत्तम ने उसे गोद में उठाकर उसके मुख को आकुल चुम्बनों से भर दिया। मुन्नू नाराज हो गया। बिगड़ता हुआ बोला, ‘छि: छि: छि:, चूम लेना मुझे अच्छा नहीं लगता।’

‘वयों?’

‘धत्।’ कहकर मुन्नू भाग गया।

नरोत्तम फिर समाचारपत्र पढ़ने लगा। एकाएक उसकी दृष्टि एक न्यूज़ पर पड़ी। माधो क्लॉथ मिल में हड़ताल। गत दो दिन से माधो मिल में मजदूरों ने हड़ताल कर दी है। हड़ताल का कारण—मजदूरों को बोनस का न मिलना है। मजदूरों की शिकायत है कि मिल के मैनेजिंग डायरेक्टर ने गत साल उन्हें जो आश्वासन दिया था कि अगली बार उन्हें दो साल का एक साथ बोनस दिया जाएगा, अब उसे वे देने में आनाकानी कर रहे हैं तथा फीटर अतुल घोष का मशीन में हाथ कट जाने के कारण उसके परिवार को माहवारी मदद तथा बड़ी रकम की अन्तरिम

सहायता भी नहीं दी जा रही है। जब तक हमारी ये मांगें स्वीकृत नहीं की जाएंगी, हम अपना संघर्ष जारी रखेंगे।

नरोत्तम काफी देर तक उसपर विचार करता रहा।

७

बच्चों को पढ़ाकर ज्योंही नरोत्तम उठा, सेठानी ने आकर कहा, 'मास्टर जी, आपको बुला रहे हैं।'।

नरोत्तम सेठजी के पास गया। इधर सेठजी का शरीर वायु के कारण दिन-प्रतिदिन फूल रहा था। पेट रामलीला के हास्य अभिनेता की तरह आगे बढ़ आया था और इसी प्रकार पेटानंद ने और मेहरबानी की तो एक दिन सेठजी का उठना-बैठना मुश्किल हो जाएगा। अतः डाक्टरों की सलाह के बाद आजकल उन्होंने सवेरे का खाना बिल्कुल बंद कर दिया है तथा शाम को बहुत कम भोजन करते हैं।

संतरे के रस का गिलास खत्म करके सेठजी बोले, 'मास्टरजी, ज़माना बड़ा खोटा आ गया है। सत्य-धर्म पृथ्वी पर से उठ रहा है। देखिए मजदूरों ने हड़ताल कर दी है, मिल बंद है।'।

नरोत्तम कुछ नहीं बोला।

'देखिए न मास्टरजी, महीने की महीने तनख्वाह देता हूं, हर साल तरक्की देता हूं, फिर भी हड़ताल, फिर भी धीरे काम। हे राम कैसा ज़माना आ गया है। कौन अब मिल-कारखाने खोलेगा?'

'बात यह है सेठजी!' नरोत्तम गंभीर स्वर में बोला, 'पुराना ज़माना गया, सो गया। अब हमें नई परिस्थितियों को नये ढंग से सोचना होगा। मजदूरों के अधिकारों को मारना तो दूर रहा, अब आपको उनके अधिकारों की रक्षा भी करनी होगी। जिन्हें आप सांप कहते थे, उन सांपों को दूध पिलाकर बड़ा भी करना होगा, क्योंकि मजदूर जाग गया है, अब वह इस प्रयास में लगा है कि उत्पादन के सभी साधनों पर हमारा अधिकार हो जाए। ऐसी विकट परिस्थिति में उनका 'शोषण'

उनके जागरण में नये आह्वान का काम करेगा। इसलिए भी राय है कि आप उनकी मांगों को स्वीकार कर लीजिये और समझौते की नीति को अपनाकर कुछ उनको भुका लीजिए और कुछ खुद भुक जाइए।'

'यह नहीं हो सकता। मैं नये मजदूर रख लूंगा, यहां बेकारों की कमी नहीं है।' सेठजी ने उछलकर कहा।

'इससे संघर्ष बढ़ जाएगा, खून की नदियां बह जाएंगी, मिल महीनों बन्द रहेगी और अन्त में हार भी आपकी ही होगी।' वह दृढ़ता से बोला।

'सरकार हमारे साथ है।' सेठजी ने अधिकार के साथ कहा।

नरोत्तम गंभीरता से बोला, 'सरकार खुद मजदूरों के सामने सिर झुकाती है। रेलवे-मजदूर के ज़रा-से नोटिस पर सरकार को दिन के तारे दिखलाई पड़ने लगते हैं सेठजी।' वह विनम्र होकर बोला, 'मैं आपका अहित नहीं चाहता इसलिए मैंने आपके सामने सत्य को रख दिया। यह सत्य कटु जरूर है पर आपके लिए अधिक लाभप्रद है।'

'लेकिन इतना रुपया एक साथ देना भी संभव नहीं है।'

'यह दूसरी बात है, इसपर समझौता किया जा सकता है। उन्हें उचित और विश्वस्त आश्वासन दिया जा सकता है। संघर्ष बढ़ाने से हमें कोई फ़ायदा नहीं होगा, सेठजी। इस युग का यही महामंत्र है कि समझौता कीजिए।'

'तब ?'

'आप खुद जाइए और मजदूरों को आश्वासन दीजिए। एक बात का ख्याल रखिए, कि कहीं आपका ही कोई अधिकारी उन्हें भड़का तो नहीं रहा है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ अफसर मजदूर-मशीनरी के पीछे काम करने लगते हैं। वे इन हड़तालों से भी अधिक भयंकर होते हैं, ऐसा मेरे अध्ययन का विश्वास है।'

सेठजी को नरोत्तम की बात जंची। उन्होंने उछलते हुए कहा, 'मास्टर्जी, आपको भी हमारे साथ चलना होगा।'

'मैं चलकर क्या करूंगा ?'

'चलना होगा, मजदूरों को आप ही समझा सकते हैं। ये बड़े उदंड और उत्तेजक होते हैं। कहीं गुस्से में आकर मुझपर हमला कर बैठें तो ?' सेठजी के

मस्तिष्क में भय के बादल उमड़ने लगे। बदन में अजीब-सी कंपकंपी हुई, आंखें फाड़कर बोले, 'नहीं मास्टर जी, आपको मेरे साथ चलना ही पड़ेगा। आप जानते हैं कि कहीं कुछ हो गया तो ? ... एक छोकरा अभी-अभी जवान हुआ है, उसके पांव जमते नहीं, बहकते हैं। वह इतना बड़ा व्यापार नहीं संभाल पाएगा। मैंने सेठानी को भी यह वचन दे रखा है कि तुम्हें चूनरी ओढ़ाकर ही मरुंगा !' न जाने सेठजी खीसे निपोरकर क्यों हंस पड़े ? नरोत्तम को उनकी विकृत हंसी पर हंसी आ गई।

उन्हें आश्चर्य करता हुआ नरोत्तम बोला, 'यदि आप इतने से ही भयभीत होते हैं तो मैं आपके साथ चला चलूंगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं पर फिर नीति मेरी ही चलेगी। मैं अब उनसे समझौता करूंगा।'।

वातचीत पक्की हो जाने के बाद सेठानी ने नरोत्तम को बुलाया। उसपर ममत्व का जाल फेंककर कहा, 'तुमने मुझे मां कहा है, इसलिए सेठजी की रक्षा का भार तुमपर है, वैसे मुनीमजी व मैंनेजर साहब ने भी उन्हें न आने को लिखा है।'।

'आप चिंता न कीजिए सब ठीक ही होगा।' इतना कह नरोत्तम चला आया।

८

सात दिन बाद। धूपभरी दोपहरी।

नरोत्तम ने मिल के भगड़े को मजदूरों के हित में निपटा दिया। उन्हें एक साल का बोनस अन्तरीम सहायता के रूप में दिया तथा अतुल घोष को माहवारी मदद व एक हजार रुपये नकद, उसके हाथ के कट जाने के हर्जाने के रूप में दे दिए गए।

लेबर आफिसर का तबादला कर दिया गया क्योंकि हड़तालियों द्वारा इस बात के सूराख मिल गए थे कि उन्हें भड़काने में लेबर आफिसर श्यामाप्रकाश चटर्जी का बहुत बड़ा हाथ था।

चूँकि नरोत्तम से तमाम मजदूर और यूनियन के पदाधिकारी प्रसन्न थे अतः सेठजी ने उसे लेबर आफिसर बना दिया और तनख्वाह साढ़े तीन सौ रुपये कर दी।

नरोत्तम के जीवन की उन्नति व प्रगति के लिए यह स्वर्ण अवसर और नया मोड़ था। अतः उसने उसे अस्वीकार नहीं किया और वह एक बार कलकत्ता आकर वहीं पर स्थायी रूप से बस गया।

नये लेबर आफिसर से सभी प्रसन्न थे क्योंकि उसमें बंधुत्व था और थी सहज मानवीयता।

उसने सभी क्वार्टरों की मरम्मत करवाई, भाड़-भंखड़ों को कटवाया और बच्चों के खेलने के लिए उद्यान इत्यादि बनवाने की घोषणाएं कर दीं। उसने गन्दगी के खिलाफ एक अभियान शुरू किया कि जो कोई कूड़े के टबों के अलावा कूड़ा फेंकेगा, उसपर एक आना फाइन किया जाएगा। अपने-अपने बच्चों को इधर-उधर गन्दगी फैलाने से रोकेंगे। एक व्यवस्था होगी—अपने क्वार्टरों की छोटी-सी दुनिया में।

धूप की किरणें नरोत्तम के कमरे में आ रही थीं। वह चुपचाप लेटा हुआ था, तभी तृप्ति ने उसके कमरे में प्रवेश किया, 'बड़े दा, मां पूछती है कि आप चाय खाएंगे?'

'हां, मैं चाय खाऊंगा।' वह 'खाऊंगा' को बड़ी नाटकीयता से बोला जिससे तृप्ति लजाकर भाग गई।

मिल के मजदूर के ० सी० सेन की बेटी थी तृप्ति। आठवीं जमात में पढ़ती थी, वैसे उसे पढ़ने से ज़रा भी चाव नहीं था लेकिन उसके बाबा का कहना था कि यदि वह एकदम फूहड़ होगी तो उससे कोई भी विवाह नहीं करेगा। बस, इसलिए वह ज़बरदस्ती पढ़ रही थी। नरोत्तम मन ही मन उसे जैसे चाहने लगा था।

इन्दिरा एक सप्ताह से छुट्टी पर कलकत्ता गई हुई थी। ऐसे समय तृप्ति ही उसके मनोरंजन का साधन थी।

तृप्ति के जाने के साथ ही नरोत्तम विचारमग्न हो गया। इस नये परिवर्तन में वह तारिणी को उसके पत्र का उत्तर नहीं दे सका था, फिर कल उसने पत्र लिखा। पत्र लिखने के पूर्व उसने काफी सोचा-समझा था। उसके अन्तःकरण में तारिणी के प्रति असीम अनुकम्पा थी पर उसे उसका हठ अच्छा नहीं लगा।

वह प्रायः सोचा करता था, यह किसी बात का स्वस्थ तरीका नहीं कि यदि

फलां ऐसा नहीं करेगा तो मैं अपने प्राण त्याग दूंगा। सामूहिक हित में इस प्रकार के आत्मपीड़क हठ चल सकते हैं पर वैयक्तिक मामलों में इस प्रकार के हठयोग का कोई स्थान नहीं है। उसने यह भी निश्चय किया था कि वह तारिणी को लिखेगा कि मेरी सहानुभूति तुम्हारे प्रति है पर मैं अभी अपने किसी भी कार्य का कोई भी अन्तिम निर्णय नहीं ले सकता। अभी मेरी मनःस्थिति विवाह आदि विषयों पर स्वस्थ रूप से सोचने लायक नहीं हुई है। तुम आजन्म कुंवारी रहोगी—इस प्रकार का निर्णय सर्वथा बुद्धिहीनता का सूचक है। जीवन के महापथ में मनुष्य सदा इतने शीघ्र किए गए निर्णयों पर कायम नहीं रह सकता। तुम्हें पुनः इसपर सोचना-समझना चाहिए। शादी-विवाह के मामलों में केवल हमारा निर्णय ही नहीं चलता, प्रारब्ध भी अपना कार्य करता है। अतः कहीं ऐसा न हो कि तुम हठ ही हठ में अपने जीवन को नरक-सायातनामय बना डालो। मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि तुम अत्यन्त सावधानी से कोई निर्णय किया करो। मेरा अनुराग तुम्हारे साथ है।’

पर जब वह पत्र लिखने बैठा तब कुछ और ही लिख गया। क्योंकि उस पत्र में उसे अपना उपदेश अपने विचारों की पराजय के रूप में जान पड़ा। कुछ हृद में वह पत्र उसे मर्यादाहीन भी लगा। अतः उसने शीघ्रता से तारिणी को इतना ही लिखा—आपका पत्र मिला, मैं अभी विवाह आदि विषयों पर सोचने में असमर्थ हूँ। आप अपना निर्णय बदल दें, यही उत्तम रहेगा। मैं आजकल कलकत्ता से बाहर हूँ।

—नरोत्तम

तृप्ति के आगमन ने उसके ध्यान को भंग कर दिया। वह आई और अपनी आदत के अनुसार उसने बड़ी सहज भावुकता से नरोत्तम को देखा और बोली, ‘बड़ो दा, चा।’

उसने चाय के प्याले को मेज़ पर रखा और चली गई।

नरोत्तम को उसका भोला मन बहुत ही प्रिय लगा। इतना पवित्र है उसका मुख जितना देवता का। उसने मन ही मन उसके बारे में कई बातें एक साथ सोच डालीं।

‘बड़ो दा, चाय खा ली ? मैं प्याला लेने आई हूँ।’

‘तृप्ति तेरा बाबा घर पर है?’

‘हां, सो रहे हैं।’

‘जब वे जग जाएं तो उन्हें कहना कि नरोत्तम दा ने हाट चलने के लिए कहा है।’

तृप्ति ने केवल गर्दन हिलाकर स्वीकृति दे दी।

लगभग एक घंटे के बाद जैसे ही कपड़े पहनकर नरोत्तम अपने क्वार्टर से बाहर निकला, वैसे ही तृप्ति भी अपनी चार सहेलियों के साथ उसे अपने क्वार्टर के सामने बैठी मिल गई। उसे देखते ही वह होंठों में हंसी दबाकर बोली, ‘बाबा रे बाबा, वो बड़ा बाबू नहीं, मोटा सेठिया आ गया है।’ तब तक नरोत्तम उसके पास आ गया था। वह तेज़ स्वर में बोली, ‘अरी रोहिणी, वह कागज का टुकड़ा उठा, नहीं तो मोटा सेठिया गुस्सा हो जाएगा। क्यों बड़ो दा, आपनार माथा पोका खेयचे। (आपके सिर पर कीड़ा काटता है) जो नित्य नये कानून बना डालते हैं।’

वास्तव में नरोत्तम खुद उन मजदूरों की गहरी आत्मीयता प्राप्त करने के लिए सड़क पर किसी भी कूड़े को उठाकर नियत स्थान पर फेंक देता था, उसके इस रवैये से सभी लज्जावश कूड़ा फेंकने में सफल हो गए थे। तृप्ति उसके इस रवैये से बड़ी तंग थी। उसका सरल चंचल स्वभाव स्वच्छन्दता को प्यार करता था। वह जहां खाती थी, वहीं फेंक देती थी। लेकिन जब से नरोत्तम आया तब से उसकी इस प्रकार की अनुचित स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लग गया। इसी कारण उसने नरोत्तम को चिढ़ाने के लिए इस वाक्य की रचना कर डाली और जहां कहीं वह नरोत्तम को मिल जाती, वह अपने बालों को खुजलाकर बड़े ही नाटकीयता से मधुर स्वर में किसी और को सम्बोधित करके कह उठती, ‘आपनार माथा पोका खेयचे।’

और तब नरोत्तम उसे कृत्रिम रोष से डांट देता।

लेकिन जैसे ही तृप्ति उसके कमरे में आती थी वैसे ही वह इतनी गंभीर बन जाती थी कि नरोत्तम की इतनी भी हिम्मत नहीं होती कि वह उसे कुछ कहे-मुने। फिर भी वह तृप्ति के बारे में ज़रूरत से अधिक सोचा करता था। विचारों को बार-बार रोकने पर भी वे तृप्ति के चारों ओर केंद्रित हो जाते थे।

हाट से लौटने पर नरोत्तम जैसे ही अपने क्वार्टर में आया, वैसे ही तृप्ति ने

प्रवेश किया। उसने लाल किनारी की धोती पहन रखी थी और उसका ब्लाउज भी अधिक कीमती नहीं था।

उसने नीची गर्दन किए हुए कहा, 'बड़ो दा, आपको हेड मास्टरनी जी बुलाती हैं।' 'कौन हेडमास्टरनी?' अनजान बनकर नरोत्तम ने पूछा।

'आप नहीं जानते, वह तो आपको खूब पहचानती है। कहती थी कि आप महिलाओं से भी अधिक शर्मति हैं।' इतना कहकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। नरोत्तम झेंप गया। तृप्ति चली गई।

नरोत्तम ने कपड़े बदलकर स्कूल की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में मुनीम हर-प्रसाद मिल गया।

'और नरोत्तम बाबू क्या हाल-चाल है?' मुनीम ने नमस्कार करके पूछा।

'अच्छा है, आप ही बताइए कोई नई बात?'

'क्या कहूं नरोत्तम बाबू, आप जानते हैं कि यह मैनेजर गुपचुप पैसा बना रहा है। किसी भी तरह सेठ जी से कहकर इसका बिस्तरा गोल करा दीजिए।' फिर वह आह छोड़कर बोला, 'आप ठीक कहते थे नरोत्तम बाबू, कि यह मैनेजर मुझे उखाड़ने में लगा हुआ है पर मैं भी कुछ कम नहीं हूं। खुद मरुंगा पर इसे साथ लेकर। बार-बार मेरे काम को चेक करता है जैसे मैं कोई चोर हूं।'

'मेरी समझ में सेठजी के सच्चे शुभचिन्तक आप ही हैं। आप नहीं होते तो क्या वह हड़ताल का मामला सुलभ जाता?'

'कतई नहीं। आपसे क्या छिपाऊं, यूनियन का जो सेक्रेटरी है न, अपनी कई चाय पी चुका है और फिर खिलाया-पिलाया अपना असर लाता ही है।'

'तभी वह तुरन्त राजी हो गया।'

'हां। जरा सेठजी को कहकर उस मैनेजर का बिस्तरा गोल करवा दीजिए। अपनी तो बस यही छोटी-सी इच्छा है।'

'इस बार मैं आपकी जरूर सिफारिश करूंगा।'

'राम-राम।'

'राम-राम।'

मुनीम के जाते ही नरोत्तम को हंसी आ गई। वह अभी पांच कदम ही चला

था कि मैनेजर श्री गुलाटी मिल गए। नरोत्तम से हाथ मिलाकर किलककर बोले, 'आपके कार्य से मजदूरों में काफी संतोष है।'

'मैं कुछ काम नहीं करता हूँ मिस्टर गुलाटी, इन मजदूरों को अपने अफसरों से कभी भी बंधुत्व नहीं मिला था, मैंने उन्हें भाईचारा दिया, अपने में और उनमें ज़रा भी भेद नहीं समझा, वस यही बात काम कर गई।'

'मजदूरों की साइकोलॉजी को समझना आसन थोड़े ही है।'

'नहीं, गुलाटी साहब ! बिलकुल आसान है। संसार के किसी प्राणी की मनःस्थिति का अध्ययन करने में हमें समय भले ही लग जाए पर मजदूरों का मनो-विज्ञान तीन ही शब्दों में समाप्त हो जाता है—रोटी, आवश्यकता की पूर्ति और बंधुत्व।'

'गुड आइडिया।' गुलाटी साहब उछल पड़े, और क्या समाचार है। सेठ जी की चिट्ठी आई ?'

'उनकी चिट्ठी मेरे पास बराबर आती रहती है। आप जानते ही हैं कि मेरा-उनका घरेलू सम्बन्ध है।'

'कोई विशेष बात...।'

'नहीं, सिर्फ मुनीम...!'

गुलाटी साहब भड़क उठे, 'यह बिलकुल अहियात आदमी है। पहले हड़तालियों को भड़काया, मुझसे कहा कि इनकी शर्तें किसी भी सूरत में नहीं मानी जाएं और बाद में जैसे ही सेठ जी आए वैसे ही गिरगिट की तरह रंग बदल गया।' गुलाटी साहब ने लम्बा सांस लिया, 'मैं कहता हूँ कि जब तक इसकी यहां से बदली नहीं होगी तब तक इस मिल का उत्पादन नहीं बढ़ेगा।'

'क्यों ?'

'क्या बताऊँ नरोत्तम बाबू, यह सदैव मजदूरों को भड़काता रहता है।'

'अच्छा।'

'मैं कसम खाकर कहता हूँ कि परसों ही वह यूनियन के सेक्रेटरी को कह रहा था—नरोत्तम बाबू सफेदपोश है और मैनेजर पूरा चार सौ बीस—तभी तो मैं उसके हर काम पर कड़ी नज़र रखता हूँ वरना यह रिश्तत ही रिश्तत में कोठियां खड़ी

नहीं कर लेता ?'

‘बड़े लीचड़ स्वाभाव का है ।’

‘हां साहब, बिलकुल ईडियट, नॉन्सेंस ।’

‘अच्छा, आप इसका ध्यान रखा कीजिए । कोई प्वाइंट हाथ आने दीजिए, फिर इसकी अच्छी तरह खबर ली जाएगी । गुडलक ।’

नरोत्तम आगे बढ़ गया ।

रास्ते में उसने हंसकर अपने आपसे कहा, ‘जब एक चोर दूसरे चोर की द्वेष से सतर्क होकर रखवाली करता है तब कभी भी चोरी नहीं होती ।’

उसके कदम स्कूल की ओर तेजी से बढ़ गए ।

रात का अन्धकार अब धीरे-धीरे सांध्य गीत के अस्पष्ट स्वर पर फैलने लगा था ।

स्कूल की दीवारों को भेदता हुआ इन्दिरा का कोयल-सा मधुर स्वर सुनाई पड़ रहा था—

युगे-युगे पले-पले दिन-रजनी

से जे आसे, आसे, आसे ।

९

इस बीच नरोत्तम इन्दिरा से कई बार मिला । अपनत्व बढ़ा ।

आज चन्द्र की धूमिल ज्योत्स्ना अपने सीमित दायरे में दीप्त हो रही थी ।

इन्दिरा अपने साधारण सजे हुए कमरे में दरी पर बैठी हुई रवीन्द्र-संगीत का अभ्यास कर रही थी । उसने हल्के नीले रंग की साड़ी पहन रखी थी । उस साड़ी की किनारी डेढ़ इंच चौड़ी थी और उसके ब्लाउज की बांहों पर कशीदा निकाला हुआ था ।

कमरे में हल्का नीला प्रकाश था ।

खिड़की से थोड़ी दूर पर नारियल के पेड़ के पत्ते हवा के झोंकों से ध्वनि कर

रहे थे। रात की चिड़िया कभी-कभी बोल उठती थी।

ललाट पर चमकीली बिन्दिया चमक रही थी और अंगुलियां हारमोनियम पर यंत्रवत् संचरण कर रही थीं।

‘मैं अन्दर आ सकता हूँ।’ नरोत्तम ने मधुर भंकार में अवरोध उत्पन्न किया। संगीतमय वातावरण स्तब्ध हो गया।

इन्दिरा ने क्षणभर के लिए नरोत्तम को देखा। उसकी आंखों में करुणामयी लज्जा थी। दृष्टि को हारमोनियम पर जमाती हुई वह मधुर स्वर में बोली, ‘इसमें पूछने की क्या बात है, मैंने ही आपको बुलाया है आज।’

नरोत्तम आकर उसके पास बैठ गया।

वे दोनों आमने-सामने बैठे थे। हारमोनियम उनके बीच था। दोनों ने मौन धारण कर रखा था।

‘तुमने गाना क्यों रोक दिया?’ नरोत्तम ने मौन तोड़ा।

‘गाना एकांत में मन बहलाने का साधन है। जब दो व्यक्ति इकट्ठे हो जाते हैं तब एकान्त में मन-विस्मरण के साधनों को छोड़ देना चाहिए। लीजिए, मैं आपके लिए चाय बना लाती हूँ।’

इन्दिरा उठकर चाय बनाने लगी। चाय बनाती-बनाती वह मुस्कराकर बोली, ‘समस्त पुरुषों की अपेक्षा आपका स्वभाव मुझे बहुत ही प्रिय लगा। औसतन पुरुषों के प्रति मेरी राय बुरी ही होती है।’

‘क्यों?’ उसने विस्मित होकर पूछा।

‘पुरुष प्रकृति और प्रवृत्ति से बड़े ही दुष्ट एवं निर्मम होते हैं। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा ही संकुचित एवं व्यवहार बड़ा ही निष्कृष्ट होता है। हाल ही में एक ऐसे पथभ्रष्ट पुरुष के चरित्र का उद्घाटन हुआ है जो अपनी बेवा भाभी से अनुचित पेशा कराता था। अपने मृत स्वामी की आत्मा से कपट करने के बाद भी उस दीन-हीन विवश नारी को तनिक भी सुख-संतोष नहीं मिला क्योंकि वह पुरुष निष्प्रयोजन ही उसे पशु की तरह पीटता-मारता था।’

‘उस साध्वी भाभी ने पुलिस को खबर क्यों नहीं की कि उसका देवर उसके साथ पाशविक अत्याचार व पशुवत व्यवहार करता है?’ नरोत्तम ने गंभीरता से

प्रश्न किया।

‘पुलिस ने भी उसकी भाभी से ऐसा ही प्रश्न किया था पर उसने इसका स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। उसने इतना ही कहा कि मैं अपने देवर को बहुत प्यार करती हूँ। जिस प्रकार एक बेवा माँ अपनी सन्तान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व विसर्जन कर देती है, उसी प्रकार मैंने अपने देवर पर अपना सर्वस्व विसर्जन कर दिया है। मुझे उसके नेत्रों का एक अश्रु भी अपने जीवन से कीमती लगता था।’ उसने चाय के पानी को चूल्हे पर से उतारकर कहा, ‘नारी के मन की थाह पाना सहज नहीं है। वह मिटना जानती है।’

‘इन्दिरा, तुमने नारी के चरित्र के एक पक्ष का उदाहरण देकर उसे ‘देवी रूप’ में स्थापित कर दिया है पर मेरे गाँव में एक अत्यन्त सुमुखी भाभी ने अपने देवर की अपने प्रेमी के द्वारा हत्या करवा दी। मैंने उस देवर को अपनी आँखों से देखा था जिसका कोमल तन खंजरोں की चोटों से बीभत्स हो गया था। आदमी की इतनी घिनौनी हत्या मैंने कभी नहीं देखी थी।’

‘इसका कोई आन्तरिक कारण होगा।’ इन्दिरा ने सफाई पेश की।

‘तो तुम्हारी घटना का भी कोई विशेष आन्तरिक कारण ही होगा। एक भाभी अपने देवर के लिए इतना बड़ा त्याग कभी नहीं कर सकती !’

‘पुरुषों को सदा नारियों की महानता पर सन्देह रहा है।’

‘नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। बिना कारण कोई कार्य नहीं होता। जब कारण है तब उसके पीछे अवश्य कोई पृष्ठभूमि होगी। मेरे विचार से उस भाभी को अपने देवर से वासनायुक्त प्रेम था।’

‘छिः छिः छिः !’ चाय के प्याले को हाथों में लिए इन्दिरा आई और घृणा भरे स्वर में बोली, ‘आप सचमुच बड़े कठोर हैं। स्त्री जाति के पवित्र अनुराग पर इस भाँति कलंक लगाते आपको कुछ विचारना चाहिए। कदाचित् आपने उस भाभी के बयान नहीं पढ़े हैं?’

‘बयान मैंने नहीं पढ़े हैं।’ उसने विलकुल सच कहा।

‘फिर आपने उस बेचारी पर चरित्रहीनता का लांछन कैसे लगा दिया? उस भाभी के बयानों के एक-एक शब्द से सत्य और करुणा टपकती है। मेरा पक्का

विश्वास है कि उसने अपने देवर के जीवन-निर्माण के लिए इतना बड़ा त्याग किया था ।'

'पर उसका देवर तो खुद उसे इस कार्य के लिए विवश करता था । इन्दिरा, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी भाभी स्वयं आंतरिक रूप से अपने आपसे अतृप्त थी । यह कटु सत्य जरूर है पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उसकी भाभी का अपने देवर के साथ अनुचित सम्बन्ध था । अर्थाभाव के कारण उस देवर ने उस अनुचित सम्बन्ध को विकृति का रूप जरूर प्रदान कर दिया जिसे सामाजिक मान्यता नहीं मिली हुई है । सामाजिक मान्यता के परे किसी भी कार्य को हम प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखते और जब वह हमारे समक्ष प्रकट होता है तब हम उसके कर्ताओं के प्रति भयानक घृणा का प्रदर्शन करते हैं । घृणित जीवन की पीड़ा से छुटकारा पाने के हेतु कर्ता एक दूसरे पर बुरे से बुरा आरोप लगाते हैं । एक दूसरे को नीच से नीच बताने का प्रयास करते हैं । यही हाल इन भाभी-देवर का है । फिर भाभी को इस प्रकार का गलत प्रोत्साहन अपने देवर को देना भी नहीं चाहिए । उसे कुछ उचित व्यवस्था करनी चाहिए थी ।' नरोत्तम चुप हो गया । वह एकटक इन्दिरा को देखने लगा । चाय ठंडी हो रही थी । इन्दिरा अज्ञात सिहरन की तीव्र अनुभूति को विस्मृत करने के लिए कह उठी, 'चाय पीजिए, ठंडी हो रही है ।'

नरोत्तम ने चाय जल्दी-जल्दी पी ली ।

'सुनंदा की कोई चिट्ठी आई ?' नरोत्तम ने बात को बदला ।

'कल ही आई थी ।' इन्दिरा ने प्याला रखते हुए कहा ।

'उसके लिए किसी श्रेष्ठ वर का प्रबन्ध हुआ ?'

'नहीं तो !'

'प्रयत्न तो जारी होंगे ?'

'हां, कल ही बाबा का एक खत आया था, उसमें गोपाल नामक किसी लड़के का जिक्र है । सुनते हैं कि लड़का बी० ए० में पढ़ता है और शीलवान और गुणी भी है ।'

'इन्दिरा, एक बात तुमसे पूछना चाहता हूं, यदि तुम बुरा नहीं मानो तो ?' उसने विनम्र शब्दों में कहा पर उसकी आंखों में भावी आशंकाजनित भय था ।

‘कहिए।’ इन्दिरा की नितान्त साधारण मुद्रा थी।

‘तुम्हारा बाबा कहता था कि इन्दिरा का विवाह हो गया है?’

‘जी! उन्होंने सत्य कथा कही।’

‘फिर तुम मांग में सिन्दूर क्यों नहीं डालती?’

‘वैसे ही।’

‘सिन्दूर का न डालना एक सुहागिन के लिए बड़ा अमंगलकारी होता है। उस पावन अनुष्ठान के प्रति भी अन्याय होता है जहां तुमने अपने पति को अपना देवता स्वीकार किया है।’

‘उस क्षण भर के अनुष्ठान की प्रतिष्ठा के लिए मैंने तपस्विनी-सा जीवन बिताया है। समिधा की तरह अपनी आत्मा को जलाया है। समिधा जैसे ही सुलग-कर बुझने लगती है वैसे ही उसमें घी की आहुति देकर पुनः प्रज्वलित कर दिया जाता है, ठीक यही हाल मेरा है। आखिर मुझे इस अर्थहीन पीड़न में जलना स्वीकार नहीं हुआ तब मैं सिमट-सिकुड़ कर स्वयं में लीन हो गई।’

‘कविता तनिक दुष्कर होती है। उसका अभिप्राय भी स्पष्ट रूप से समझा नहीं जाता। मुझे इस बात का उत्तर दो कि तुम्हारा पति कहाँ है?’

‘मैंने अपने पति को छोड़ दिया है।’ वह दृढ़ता से बोली।

‘क्यों?’ नरोत्तम की आखें फट-सी गईं।

‘क्योंकि उसने मेरे साथ ऐसा ही किया।’

नरोत्तम के मन पर भयंकर आघात लगा। वह कुछ देर तक बालक की तरह जिज्ञासापूर्ण भीत दृष्टि से उसे देखता रहा। इन्दिरा के मुख पर अनंत करुणा की रेखाएं उभर आईं। नेत्रों से निराशा का सागर लहरा उठा। विगलित स्वर में बोली, ‘मैं मर्मांतक और निरादरपूर्ण पीड़ा को अधिक काल तक नहीं सह सकती। पीड़ा की भी एक सीमा होती है। उस पीड़ा की सीमा का उल्लंघन मनुष्य को अपनी स्वाभाविकता से विलग कर देता है। तब वह धीरे-धीरे अपने आपसे सम-भौता करता है। जब वह अपने आपसे पूर्ण समभौता कर लेता है तब वह दूसरों की पराधीनताजनित पीड़ा लेने को तैयार नहीं होता। मेरे स्वामी ने मुझे बहुत पीड़ा दी, इतना सताया की मेरी आंखों के अश्रु तक सूख गए। तब लाचार मैंने

अपन आपको ढूढ़ बना लिया। बात यह है कि शरत की 'शुभदा' और पुराणों की 'प्रियवंदा' में नहीं बन सकती। मेरी नारी अपना 'स्व' नहीं मिटा सकी।

'क्या तुम इसपर विस्तृत रूप से प्रकाश डाल सकोगी?' नरोत्तम ने पूछा, 'हालांकि इस प्रकार का अत्यन्त व्यक्तिगत गुह्य प्रश्न पूछने का मुझे अधिकार नहीं है।'

'अधिकार और अनधिकार की कथा छोड़ो, पहले तुम भोजन कर लो, इसके बाद तुम्हें सारी कथा सुनाऊंगी।'

बंगाली समाज में रहते-रहते नरोत्तम की घ्राणेन्द्रिय मछली की दुर्गन्ध को सुगन्ध समझने लगी थी। अब उसे तली हुई मछली देखकर उबकियां नहीं आती थीं। फिर भी संस्कारवश वह मछलियों को खा नहीं सकता था।

इन्दिरा ने रेऊ मछली पकाई थी। वैसे उसे भींगा मछली भी पसंद थी लेकिन अतिथि के लिए वह अच्छे से अच्छा खाना बनाना चाहती थी। लेकिन जब नरोत्तम ने उसे बताया कि वह मछली नहीं खा सकता तब उसे बड़ा विस्मय हुआ। वह ललाट पर बल डालती हुई बोली, 'क्यों?'

'अरे यह भी कोई खाने की चीज है। मैं खा लूं तो मुझे कै हो जाए।' नरोत्तम ने जरा उपहास से कहा।

'पहले थोड़ी चखकर देखिए तो सही। सच मानिए, मत्स्य-भोजन अत्यन्त सुस्वादु होता है।'

नरोत्तम को घृणाजनित कंपकंपी हो गई, 'नहीं, नहीं, मैं ऐसी दुष्ट कल्पना भी नहीं कर सकता।'

'विचित्र मानुस है, मैंने कितने चाव से बनाई है।'

'वास्तव में यह मनुष्य जाति में आदिम युग की बर्बरता का अंश है कि मछली, मुर्गा, मांस आदि खाता है। भई, उस जमाने में आदमी इतना सम्य नहीं बना था, खेती-बाड़ी के बारे में उसका ज्ञान शून्य के बराबर था, लेकिन अब तो आदमी काफी सुसंस्कृत-सुसम्य हो गया है। तब इस प्रकार का दानवी भोजन हमारी मनुष्यता में अन्तर्हित जंगलीपन का सूचक है।'

इन्दिरा खिलखिलाकर हंस पड़ी, 'यदि मनुष्य मुर्गियों के अंडों को तथा

मछलियों को नहीं खाता तो आज आपको इस संसार में मनुष्य की जगह मुर्गे और पानी की जगह मछलियाँ नज़र आतीं ।’

‘हो सकता है पर मुझे निरामिष भोजन ही पसंद है ।’

‘तब तो मुझे आपके लिए कुछ मिठाई मंगवानी होगी । मैं यह जानती तो आपके लिए स्पेशल चीज़ बना देती । खैर मैं हाट से कोई चीज़ मंगवा देती हूँ ।’

‘नहीं-नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है । मैं भात और दाल खा लूंगा, मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है ।’

दोनों ने भोजन किया पर इन्दिरा कुछ असंतुष्ट दिखलाई पड़ रही थी । भोजनोपरान्त दोनों आमने-सामने बैठ गए ।

इन्दिरा ने काफी देर मौन रहकर कहना शुरू किया—

‘मेरे शैशव की किलकारियाँ हमारे माँ और बाबा के जीवन का महा आनंद था । इकलौती पुत्री होने के कारण मुझे अत्यन्त लाड़-प्यार से रखा जाता था । मेरी हर जिद्द पूरी की जाती थी । मुझे मेरा बाबा इन्दु कहा करता था ।

‘जब मैं स्कूल जाने लगी तब मेरे एक भाई हुआ । माँ का प्यार बंट गया पर बाबा मुझे पूर्ववत् ही प्यार करते रहे । वैसे ही हमारे बंगाली समाज में लड़कियों के प्रति स्नेह अधिक मात्रा में रहता है । इसके पीछे साइकोलॉजी क्या है, मैं नहीं जानती ।

‘जब मैं आठवीं जमात में पहुँची तब सुनंदा उत्पन्न हो गई थी और मेरा छोटा भाई राजू अनंत की महागोद में सो गया था । मुझे मेरे भाई की मृत्यु का महा संताप था । मैं तीन-चार दिन तक उन्माद-ग्रस्त-सी रही । पर जो चला गया, वह चला गया; वह लौटकर नहीं आ सकता । आगमन और गमन एक स्थिति-विशेष है । दर्शन की इन्हीं शाश्वत बातों को बार-बार सुनकर मैंने भी अपने मन को समझा दिया । संतोष दे दिया ।

‘मेरा प्यार सुनंदा की ओर उमड़ पड़ा ।

‘मैं जिस स्कूल में दाखिल हुई थी, वह ईसाइयों का स्कूल था । वहाँ की लड़कियाँ काफी फैशन वाली थीं । हमेशा नये-नये वस्त्र पहनकर आती थीं, मैं उन्हें देख-देखकर अपने बाबा से लड़ती-भगड़ती रहती थी । चूँकि घर के खर्च में वृद्धि

हो गई थी अतः मेरे बाबा मेरी प्रत्येक मांग को पूर्ण करने में असमर्थ रहते थे। मुझे स्कूल में हीनता से पीड़ित होना पड़ता था। मैं बहुत ही बेचैन रहती थी। मुझे लगता था कि इस स्कूल की सारी छात्राओं में सबसे गरीब मैं ही हूँ। तब मेरी प्रवृत्ति कुलाँचें भरने लगी। मेरे पास अपनी छह साड़ियाँ थीं, मैं इस बात की कोशिश करती थी कि दिन भर में इन छहों को बदल-बदलकर पहन लूँ। अब मैं ऐसा ही करती थी। अपने बैग में रुज, लिपिस्टिक व कंधी भी रखने लगी। इतना कुछ होने पर भी मुझे असंतोष सताया करता था।

‘मैट्रिक उत्तीर्ण करते-करते मेरी मित्रता एक क्रिश्चियन छात्र रोमी से हो गई। वह मुझे बहुत अच्छा लगता था। उसमें साधारण क्रिश्चियनों की भाँति ईसा के प्रति अन्ध-विश्वास नहीं था और न ही वह मौजूदा ईसाइयत को मानवी-प्रेम से सर्वापरि ही मानता था।

‘उसका कहना था कि कोई भी धर्म जब अपने अनुयायी बनाने लगता है तब उसे सत्ता और आतंक का सहारा लेना पड़ता है, तब उसे तलवार और गोली को साधन बनाना पड़ता है। आज विश्व के किसी भी धर्म में सहिष्णुता नहीं है, अतः उसका सभी धर्मों से विश्वास उठ-सा गया था।

‘लेकिन मैट्रिक पास करते ही मेरे जीवन में एक नया युवक आया, सुबोध। वह मेरा कालेज का सहपाठी था। हम दोनों का प्रेम-व्यवहार बढ़ा। विवाह होना निश्चय हो गया, हालाँकि वह काफी धनी था पर जैसा कि प्रेम ऊँच-नीच को स्वीकार नहीं करता, हमारा विवाह हो गया।

‘हम हनीमून मनाने के लिए दार्जिलिंग गए।

‘महीना भर हमने खूब आनंद से बिताया। सुबोध हर क्षण मुझमें डूबा रहता था।

‘सुबोध शराब पीता था। उसकी यह आदत मुझे जरा भी पसंद नहीं थी पर उसका कहना था कि स्त्री-सुख शराब के बिना अधूरा है। जब मैंने विरोध किया तब वह मुझसे कुछ रुष्ट-सा हो गया। मैंने भी अपने मन को समझा लिया कि चलो अपना-अपना शौक है। यदि यह सुरा-पान को ही वरदान मानता है, तो मैं विरोध करके क्यों ब्रूता उत्पन्न करूँ ?

‘लेकिन हमारे क़त्ल से रवाना होने के दो दिन पहले एक भयंकर दुर्घटना घटी ।

‘उस दिन आसमान स्वच्छ नहीं था । हल्की-हल्की सावन की पावन बूंदों का वर्षण हो रहा था । कभी-कभी कोई चिरैया चक-चक करती अपने पंखों को खोलती-समेटती आकाश में उड़ती दिखलाई पड़ जाती थी ।

‘सुबोध आधे घंटे का कहकर गया सो आया ही नहीं ।

‘संध्या के बाद रात्रि का आगमन हो गया ।

‘मैं प्रतीक्षा करती-करती थक गई थी । झल्लाकर मैं बिस्तरे पर पड़ गई और मुझे नींद आ गई ।

‘लगभग दस बजे मेरी आंखें खुलीं ।

‘कमरे में घुप अंधेरा था। मुझे प्यास इतने जोर से लगी थी कि मैं हठात् दौड़-कर गुसलखाने की ओर गई । दूर से देखती हूँ—गुसलखाने का दरवाजा बन्द है और उसमें प्रकाश हो रहा है । उसके पास ही पानी-घर था । मैं पानी पीने लगी । मुझे लगा कि गुसलखाने में दो आदमी बातें कर रहे हैं ।’

‘मेरे तन-बदन में आग लग गई ।

‘पति को परमेश्वर, आराध्य, सर्वस्व के विशेषणों से युक्त करके अपना नारीत्व-सतीत्व सौंपनेवाली पत्नी के प्रति इतना पीड़ित छल मैं सह न सकी । स्वामी ही पत्नी की अर्चन-सर्जन की प्रतिमा है और वह पति उस पत्नी की आत्मा को अपने दुश्चरित्रता के बाणों से बेधकर छलनी बना दे, उस पवित्र अनुष्ठान की समस्त प्रति-ज्ञाओं को भुलाकर अग्नि के यज्ञ की आहुतियों को सम्पूर्ण रूप से निरर्थक साबित कर दे और फिर नारी पर एकाधिकार की बात करे, मुझे सर्वथा अन्याय लगा ।

‘मुझे सुबोध की प्यार भरी बातें बार-बार याद आने लगीं। उन बातों में गहरा अपनत्व, मित्रता, प्रतिज्ञाएं, पवित्रता, अटूटता, सब कुछ था । लेकिन आज...! मैं अपने उस दुख का वर्णन भाषा में करने में सर्वथा असमर्थ हूं । मैं रात भर रोती रही । सुबोध ने मुझे कई बार पूछा भी था पर मैंने उसे कह दिया कि वह मुझे छुए नहीं । यदि वह मुझे स्पर्श करने का प्रयास करेगा तो मैं पहाड़ से कूदकर आत्म-हत्या कर लूंगी । सुबोध डर गया । उसे महसूस हो गया कि इन्दिरा को उसके पाप

के रहस्य का पता लग गया है।

‘दूसरे दिन मैं वहां से कलकत्ता आ गई।

‘मैंने अपने स्वसुर-सास को सारी बातें बता दीं। उन्होंने तुरन्त सुबोध को तार दिया। इसपर सुबोध वहां से भाग गया। क्योंकि उसके पास काफी रुपया था। एक-दो-तीन वर्ष बीत गए। उसका कोई पता नहीं लगा। मैं पतिहीन होकर बहुत दुखी रहने लगी। मेरे अन्तर की घृणा और गहरी होती गई। इधर मेरी सास अब मुझे ही भला-बुरा कहने लगी। वह अपने बेटे के भाग जाने का दोष सीधा मुझपर लगाने लगी। अन्त में मुझे उनसे लड़ना पड़ा। लाचार मैं अपने मैके आ गई। मेरे पिता को इस बात का बड़ा दुख हुआ पर होनी किसीके वश की नहीं।

‘लगभग पांच वर्ष बाद सुबोध का मेरी सास के पास पत्र आया।

‘मैंने सोचा कि अब वह मेरे यहां आएगा पर वह नहीं आया। बाद में उसने अपने किसी मित्र द्वारा मुझे जलाने के लिए यह कहलवाया कि वह पटना में किसी लड़की से प्यार करता है। मेरी आत्मा जल उठी। आखिर मेरी सहिष्णुता की भी कोई सीमा है। मैंने निर्णय कर लिया कि अब मैं उन पापियों से जरा भी सम्बन्ध नहीं करूंगी। बाबा ने कई बार कहा पर मैं अपने हठ पर अड़ी रही। परिणाम यह निकला कि हमारा सम्बन्ध दिन-प्रतिदिन समाप्त होता गया।

‘लेकिन सौभाग्य की बात कहिए कि उस युवती ने सुबोध के साथ छल कर लिया। वह मेरी तरह सीधी और भोली नहीं थी। मेरी महत्वाकांक्षाएं सुबोध को देखकर कुलांचें भरने लगी थीं और मैं सुबोध की बनकर अपने को सौभाग्यशालिनी भी मानती थी पर वह युवती सुबोध के मन के पाप से पूर्व ही परिचित हो गई। तब सुबोध को महसूस हुआ कि जीवन में धन के अलावा भी एक वस्तु है, वह है मनुष्य की चतुराई। उस युवती ने सुबोध को खूब उल्लू बनाया।

‘तब सुबोध एक बार मेरे पास समझौते की भावना लेकर आया। मैंने उसे साफ शब्दों में कह दिया कि तुम्हारा और मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।—तुम ही बताओ नरोत्तम !’ वह भाव-विह्वल होकर बोली, ‘क्या मैं पालतू वारांगना हूं जो समय-समय पर दुष्ट मनुष्यों से समझौता किया करूं। मेरा नारीत्व, अहम् और शील इस प्रकार की जघन्य मनोवृत्ति से समझौता नहीं कर सके। सुबोध ने उस समय अपने

सभी दुर्गुणों को छोड़नेकी सौगन्ध भी खाई पर मैं अपने इरादे पर अटल रही। मैंने हृदय से उसे त्याग दिया था। क्योंकि मैं अन्तर से उसे घृणा करने लगी थी। मुझे सभी व्यक्तियों ने समझाया, प्रलोभन दिया, धमकाया पर सब व्यर्थ। मैं अपने हठ पर अड़ी रही। मुझे भय था कि इस बार सुबोध मुझे प्यार के बहाने मृत्यु की गोद में सुला देगा। ऐसे उच्छृङ्खल प्रवृत्ति के आदमियों का कोई भरोसा नहीं।

‘तब सुबोध को अपने पाप काटने लगे और जब मैंने थर्ड ईयर की परीक्षा दी तब मुझे रोमी ने एक दिन होटल में चाय पीते हुए बताया कि सुबोध साधु होकर कहीं दूर, बहुत दूर विदेश चला गया है। उसके संन्यासी होने का सारा दोष मुझपर लगाया गया। कदाचित् वह मुझे पाकर, अपनी वासना की तृप्ति के बाद यदि साधु हो जाता तो मुझे कितनी मार्मिक पीड़ा होती। ओह, कितना पशुवत् प्राणी है वह।

‘यही मेरी कहानी है। उसके बाद मैंने वी० ए० किया और तुम्हारी कृपा से यहां हूं। सुनन्दा का विवाह हो जाए इसके बाद मैं एक बार रोमी से मिलूंगी। उससे भेंट किए हुए बहुत अर्सा हो गया है। वह आदमी बड़ा अच्छा है। अत्यन्त भावुक और सहृदय है। उसमें मनुष्यता कूट-कूटकर भरी है।’

नरोत्तम चुपचाप सुनता रहा। जब इन्दिरा एकदम चुप हो गई तब वह भय-भीत-सा नमस्कारकर अपने क्वार्टर की ओर चल पड़ा।

रात की चिड़िया कभी-कभी बोलकर उसका ध्यान भंग कर देती थी। हवा के कारण नारियल के पेड़ों के पत्ते खड़-खड़ की आवाज कर रहे थे। शून्यता के कारण हवा की सांय-सांय स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ जाती थी।

नरोत्तम द्रुतगति से कदम बढ़ाता हुआ जैसे अपने क्वार्टर के समीप आया, वैसे ही उसकी दृष्टि अपनी घड़ी पर गई—ग्यारह बज गए थे।

वह अपने दरवाजे पर खड़ा होकर जब से चाबी निकालने लगा। तभी उसे किसीका अत्यन्त हल्का स्वर सुनाई पड़ा—‘आपनार... माथा... पोका... खेयचे।’ शब्द एकाएक, अलग-अलग, रुक-रुककर बोले गए थे। नरोत्तम ने गर्दन घुमाकर देखा—तृप्ति थी।

तृप्ति गर्दन नीची किए बार-बार इस वाक्य को दोहरा रही थी।

सात दिन के बाद । रात्रि-बेला ।

तृप्ति के रूप की स्निग्ध-ज्योति नरोत्तम के मानस के तिमिर लोक में विकसित होने लगी । विगत दिवसों की घटनाओं के कारण उसका मन पुनः उद्विग्न रहने लगा था । वह इन्दिरा को घातक समझता था । उसका अपना निर्णय था कि पति को साधु बनवाने की सारी जिम्मेदारी इन्दिरा की है । उसे इतनी जल्दबाजी से काम नहीं लेना चाहिए था । क्या पता उसने शराब पीकर जघन्य कृत्य किया हो । आखिर पुरुष पुरुष होता है, जीवन से खेलता ही आया है । लेकिन इन्दिरा को सभी आगत मंगलों को छोड़कर वहां से अकेली नहीं भाग आना चाहिए । तब परिणाम में सुबोध को साधु बनना पड़ा । एक भय जो नरोत्तम को नारी की ओर से मिला था, वह पुनः सजग हुआ और उसे भयभीत और आतंकित करने लगा ।

आज दोपहर को इन्दिरा ने उसे बुलवाया था । उसने ताड़ के रस के गुलगुले बनाए थे । नरोत्तम के लिए ताड़ के गुलगुले नई चीज़ थी । फिर भी वह नहीं गया । उसने कहलवा दिया कि उसके पेट में दर्द है ।

पर संध्या के भुटपुटे में जब वह नदी के किनारे शीतल मंद पवन का आनंद ले रहा था तब एकाएक उसकी भेंट इन्दिरा से हो गई । वह उसे देखकर बगलें झांकने लगा ।

इन्दिरा सव्यंग विनीत स्वर में बोली, 'आपके उदर का दर्द कैसा है ?'

'ठीक है, मालूम नहीं वह दर्द कैसा था ? तूफान की तरह आया और वैसे ही चला गया ।' वह मंदहास के साथ बोला ।

'वह दर्द किसीका अपमान करने के लिए उठा था । मुझे हार्दिक दुःख है कि आपने न आकर मुझे बड़ी ठेस पहुंचाई । पता नहीं, आपका अपनत्व जड़ से अलग हुई लता की भांति इतनी जल्दी कैसे सूख गया ?'

'नहीं, नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है ।'

'बात नहीं है, फिर सात दिन तक सूरत क्यों नहीं दिखाई ? ऐसा मेरा अपराध क्या था ? आप समझते हैं कि पति के मामले में मैं अपराधी हूं तो मैं आपको कहां

कि आप सत्य और न्याय दोनों के प्रति अन्याय कर रहे हैं। पति के मन में यदि पाप नहीं होता तो वह अपने अपराध को स्वीकार कर प्रायश्चित्त करता, पर उसने तो उल्टा हठयोग का सम्बल लिया, भागा, दौड़ा, भटका और एक और नारी को अपने प्रेमजाल में फंसाकर उसका भी जीवन उसने सर्वनाश की आग में भोंकना चाहा। पर उसने सुबोध के संयमहीन मन के अन्तर की गहराइयों के छद्म सत्य को प्रेम की चरम सीमा के पहले ही पहचान लिया और वह नारी बरबाद होने से बच गई। अब बताइए ऐसे पुरुष को किस तरह क्षमा किया जा सकता है ?'

नरोत्तम इतनी देर चुप रहा। नदी के किनारे उछलते हुए मेढ़क को देखकर वह बोला, 'ऐसी दुर्बलताएं पुरुषों में प्रायः होती हैं, पति की 'अर्द्धांगिनी' का एक यह भी कर्तव्य है कि वह अपने पथभ्रष्ट पति को उचित पथ बताए। वह उचित व सुपथ की पाथेय बने। लेकिन तुमने हिन्दू विचारधारा पर कुठाराघात किया है।'

'मैंने हिन्दू धर्म पर कुठाराघात किया है, यह सही है, पर यदि हिंदू धर्म की सनातन परम्परा पाप की आधारशिला पर है, तब मुझे इसपर कुठाराघात करने में जरा भी संकोच नहीं है। आप बताइए नरोत्तम बाबू, एक पत्नी इसी प्रकार परपुरुष के साथ पापाचार करती हुई मिल जाती तो उसका पति उसे क्षमा कर देता ? मेरे विचार से आप, उसका पति और समाज उसे काले वस्त्र पहनाकर घर से बाहर निकाल देते।'

नरोत्तम कुछ बोला नहीं।

'आप चुप क्यों हैं ? ... मैंने अपने अपराधी पति का त्याग कर दिया इससे आप मुझसे घृणा करने लगे और मेरे पति ने मेरे आत्मविश्वास और नारीत्व का महादान लेकर मुझपर, मेरे नारीत्व पर दारुण घातक प्रहार किया, वह क्षम्य है ?'

'लेकिन तुमने यह सब प्रतिहिंसावश किया है। तुम सुबोध को तनिक भी प्यार नहीं करती थी। जब एक स्त्री किसीकी सम्पत्ति को देखकर उसकी ओर आकर्षित हो तब उस स्त्री के आकर्षण को प्यार कहा जाएगा या स्वार्थ ? और तुम्हारे अचेतन मन में सम्पत्ति का आकर्षण ही मुख्य था ताकि तुम अपनी महत्वाकांक्षाओं के महल को अपनी इच्छाओं के मुताबिक सजा सको।'

'मेरे अनुराग के प्रारंभ में अवचेतन रूप में इस भावना की अवश्य प्रधानता

रही थी। पर बाद में और विवाह के पश्चात में सुबोध को, सावित्री की पुनीत भावना लेकर पूजती थी। सत्यवान यदि दुश्चरित्र होता तो सावित्री उसे यमराज के मृत्युपाश से छुड़ाने में सर्वथा असमर्थ रहती। फिर जब पति ने मेरे साथ ज़रा भी न्याय नहीं किया, मैं उसपर करुणा क्यों उड़ेलूँ? सतियों की भांति मैं अपने पति को कन्धों पर बिठाकर वेश्या के कोठे पर नहीं ले जा सकती और न ही मुझमें भगवान श्रीकृष्ण की रानियों की तरह इतनी सहिष्णुता है कि मेरा पति मेरे समक्ष शब्दाडम्बर का जाल रचाकर परकीया से प्रेम करे। '...मैं इस दारुण दुख और अपरिसीम यंत्रणा से पागल हो उठी। मेरा मन इतना बेचैन रहने लगा कि मुझे कुछ भी प्रिय नहीं लगता था। तब मुझे रोमी अप्रत्याशित मिला। रोमी मुझे धैर्य देता था, सांत्वना देता था, असीम अनुराग देता था। मैं तुम्हें कहती हूँ कि स्वामी के भागने के बाद मुझे जिन-जिन विपत्तियों का सामना करना पड़ा, जिन-जिन लांछनों को सुनना पड़ा, उस समय यदि रोमी मुझे धैर्य नहीं बंधाता तो मैं आत्म-हत्या कर लेती।' उसका स्वर उत्तप्त होगया, 'लोग अब भी मुझे ही अपराधिन बताते हैं जबकि मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। सच यह है कि अभी तक हमारे समाज में नर के समकक्ष अभागिन नारी ही अधिक दोषों की पुतली कहलाती है।'

वह चुप हो गई। नदी के उस पार से उठता अन्धकार फैलता जा रहा था। उस पार के हस्पताल के तोरण-द्वार की बत्ती जल गई थी।

इन्दिरा ने विगलित स्वर में पूछा, 'नरोत्तम बाबू, क्या आप मुझे अभी भी अपराधिन समझते हैं?'

'मैं समझता हूँ कि तुम कभी भी सुखी नहीं होओगी और न ही तुम्हारा अन्य साथी तुमसे सुख-संचय कर सकेगा। तुममें 'परिवर्तन' या यों कहूँ नवीनता के प्रति तीव्र मोह है। तुममें घृणा भरी हुई है, तुममें नारी जाति की न तो श्रद्धा है, न सहिष्णुता ही। यदि यह सब होती तो तुम अपने पति को कदापि नहीं छोड़तीं। यह आदत तुम्हारा अवश्य दुखांत करेगी।' नरोत्तम उसकी ओर बिना देखे यंत्रवत् बोला।

वह घृणा से भर उठी। चीखती हुई बोली, 'तुम चाहते हो कि मैं सुबोध का अत्याचार सहकर महान नारी की संज्ञा से विभूषित होती। मैं ऐसा नहीं

कर सकती थी। मुझमें इतनी क्षमता नहीं थी, समझे।’

नरोत्तम को उसकी उत्तेजना अच्छी नहीं लगी। वह भी गुस्से में भर आया, ‘ऐसा नहीं कर सकतीं तो फिर मुझे अपनी मित्रता से मुक्त करना होगा। क्या तुम्हें रोमी के अलावा कोई भी ऐसा बंगाली या हिन्दुस्तानी युवक नहीं मिला जिससे तुम अपना सम्बन्ध स्थापित करतीं, जो तुम्हें दुख के समय सांत्वना देता ? ...और वह ईसाई धर्म का फरिश्ता अवश्य तुमसे छल करेगा ! ...तुम्हारी मित्रता को छलेगा।’ एक साधारण पुरुष की घृणा नरोत्तम में चीख उठी।

‘अब समझी, तुम्हारी जलन का सम्बन्ध मुझसे नहीं, उस कृपालु रोमी से है। तुम बिलकुल संकीर्ण वृत्ति के मनुष्य हो।’

‘तुम छलना हो।’

‘तुम...’ तभी इन्दिरा को लगा कि उस फैलते हुए अन्धकार में कोई अदृश्य आकृति उनकी बातें सुन रही है। वह एकदम ठिठक गई। उसकी आंखें भर आईं। वह सिसकती हुई बोली, ‘अब मैं यहां नहीं रह सकती, मैं कल ही यहां से त्याग-पत्र देकर चली जाऊंगी।’

वह सीधी अपने क्वार्टर में आ गई।

नरोत्तम अपने क्वार्टर की ओर गया। उसके मस्तिष्क में विषैला धुआं घुमड़ रहा था। उसकी नस-नस में अजीब वेदना का संचार हो रहा था। उसे लगा कि इन्दिरा के चरित्र पर केवल कलंक के काले-काले धब्बे हैं।

क्वार्टर के सामने पहुंचते ही तृप्ति ने आकर कहा, ‘बड़ो दा, तुम्हें बाबा बुला रहे हैं।’

नरोत्तम उसके साथ भीतर गया। सामने ही सेन साहब की विधवा बहू मिल गई। इधर तीन वर्ष पूर्व सेन साहब के एक लड़के का मलेरिया द्वारा देहान्त हो गया था, बहू रोहिणी अपना वैधव्य घरेलू काम-काज में व्यस्त होकर बिता रही थी। नरोत्तम को देखते ही उसने हल्का-सा घूंघट खींच लिया। नरोत्तम को उसके मुख पर दिव्यता के दर्शन हुए। नारी का यह शांत और पवित्र रूप उसे हृदय से प्यारा था।

‘दादा नमस्कार।’ रोहिणी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

‘क्यों बहू, प्रसन्न हो न ?’

सदा वह ऐसा प्रश्न पूछकर बहू के मन को दुख पहुंचाता था। वह जानता था कि ‘प्रसन्नता’ का नाम सुनकर रोहिणी को असीम दुख होता है। विधवा के जीवन में प्रसन्नता कहां ? पर वह सदा ऐसी भूल कर बैठता था। तुरन्त सम्भलता हुआ नरोत्तम बोला, ‘बहू, चाय पिलाओगी ?’

‘हां दादा, तुम कहो तो कुछ आलू भी तल लाऊं।’

तृप्ति को इसपर मज़ाक सूझा। हंसती हुई आंखें मटककर बोली, ‘इनके लिए मछली तलकर ले आओ। बड़ो दा, मछली के लिए बड़े लालायित रहते हैं।’

‘धत् पगली।’ नरोत्तम ने उसे डांटा।

तृप्ति सहमकर वहीं खड़ी हो गई।

सेन साहब हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उनकी तलवार कट मूछें थीं और वे अपने बालों को इस ढंग से संवारते थे जिससे उनकी बाई और एक वीणा बन जाती थी।

नरोत्तम को देखते ही वे मुंह से हुक्का निकालकर बोले, ‘आइए नरोत्तम बाबू, बैठिए।’

नरोत्तम एक दीर्घ सांस छोड़कर बैठ गया। सेन साहब कहने लगे, ‘आपके आने से यह मजदूरों की बस्ती प्यार और स्नेह की छोटी-सी जगती हो गई है, राग-द्वेष जड़ से जा रहा है। आपके प्रति मजदूरों की गहरी आस्था और विश्वास बन रहा है पर...।’

उन्होंने हुक्के की नली मुंह में डाल लिया। आंखों में प्रश्न की गम्भीरता चमक उठी जैसे वे कुछ कहते-कहते रुक गए हों।

‘आप चुप हो गए सेन बाबू ?’

‘तृप्ति, तू जा, देख दो कप चाय लाना, साथ में थोड़ा-सा आलू भाजा भी। खाली चाय इस समय अच्छी नहीं लगेगी।’

तृप्ति के होंठों पर मुस्कान नाच उठी। वह समझ गई कि बाबा उसे वहां से हटाना चाहते हैं। वह अपनी धोती के छोर को कमरबंद की तरह कसकर बांधती हुई उठ खड़ी हुई। उसके जाते ही सेन बाबू फीकी मुस्कान लाकर विनम्र स्वर में बोले, ‘तृप्ति आपका बड़ा ख्याल रखती है, दिनभर चर्चा करती रहती है। मैंने उसे

समझाया, अब तुम बच्ची नहीं हो, ज्यादा उनकी चर्चा न किया करो, लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?’

नरोत्तम की आंखें भुक गई।

सेन बाबू बात को उड़ाते हुए बोले, ‘बड़ी जरूर हो गई है पर नादान है।’ वे तपाक से स्वर को बदल बैठे, ‘बैठिए न, नदी के किनारे से आते ही कहने लगी कि ‘बाबा, आज वहां पर नरोत्तम बाबू और हेडमास्टरनी आपस में झगड़ रहे थे। क्या यह बात सच है ?’

‘जी !’ नरोत्तम तुरन्त संभलकर बोला, ‘जी नहीं।’

‘देखिए नरोत्तम बाबू, आप यहां के आफिसर ठहरे, आपकी हर बात का अच्छा या बुरा प्रभाव यहां के व्यक्तियों पर पड़ सकता है। कहीं कुछ गंडोगोल (गड़बड़) न कर बैठिएगा। आपको यहां सम्मान से रहना चाहिए।’

‘यह मैं भली भांति जानता हूं, मुझे अपनी आबरू बहुत प्यारी है। किसी विषय पर वाद-विवाद करते-करते हम दोनों उत्तेजित हो गए थे।’

‘फिर भी नदी का किनारा वाद-विवाद का स्थान नहीं है।’

‘शायद स्थान के निर्वाचन में हम जरूर गलती कर बैठे पर आप निश्चित रहिए कि ऐसी-वैसी कोई बात नहीं होगी।’ उसने थूक निगलकर कहा, ‘फिर वह कल त्याग-पत्र देकर जा रही है।’

‘क्यों ?’

‘मैं क्या जानूं ?’

तृप्ति एक कप चाय और एक प्लेट में आलूभाजा लेकर आ गई थी। उसने चाय नरोत्तम को दी और नरोत्तम ने सेन साहब की ओर बढ़ा दी। सेन साहब बोल पड़े, ‘अरे पीजिए न, वह नटखट चिरैया अभी दूसरा प्याला भी ले आती है।’

तभी तृप्ति एक कप चाय और ले आई।

‘फिर भी आपको इसपर गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए। बिना कारण उसका यहां से चले जाना कहां तक उचित है ?’

‘उचित-अनुचित देखना मेरा काम नहीं। वह चली जाना चाहती है तो जाए, उसकी कोई दूसरी बहिन आ जाएगी।’

तृप्ति द्वार पर खड़ी-खड़ी उनकी बातें सुन रही थी। उसे नरोत्तम की बातों में सत्य का अभाव लगा। मन ही मन तप्त स्वर में चीख पड़ी, 'भूटे कहीं के, हेड-मास्टरनी से अनुराग करके अब बन रहे हैं; और यह हेडमास्टरनी, बाबा रे बाबा, अपने स्वामी का परित्याग करके आई है। देखो न कलमुंही को, उस बेचारे को साधु बनाकर छोड़ दिया। हे दुर्गा मां, हे काली मां !' तृप्ति को महसूस हुआ कि जैसे यह औरत औरत नहीं, नरक की यक्षिणी है जिसे पाप-पुण्य का भेद मालूम नहीं। जो पातिव्रत्य धर्म पर जरा भी विश्वास नहीं रखती।

वह प्रकट रूप में तुनककर बोली, 'बाबा, हम शहर कब चलेंगे ?'

प्रश्न बाबा से किया और देखा नरोत्तम की ओर। तृप्ति को लगा कि नरोत्तम बाबू के मुख की कांति स्याह पड़ गई है, उसपर उदासी की घटाएं छा गई हैं क्योंकि उन्होंने भूठ बौला है इसलिए वे आत्मवंचना की आग में झुलस गए हैं।

'अभी तू जा, देख, एक कप चाय और ले आ।' सेन बाबू बोले।

'नहीं-नहीं, मैं अब खाना खाऊंगा।' नरोत्तम बोला, 'बेचारा मुनीम अपनी स्त्री से कितने स्नेहभाव से भोजन बनवा कर लाता है।'

'क्यों नहीं बनवा कर लाएगा। सोचता है कि एक न एक दिन नरोत्तम बाबू मैनेजर की जगह मुझे दिला ही देंगे।' कहकर सेन बाबू हंस पड़े। नरोत्तम ने भी उनका साथ दिया।

बात का सिलसिला टूट गया था।

क्षण भर के लिए एकदम खामोशी छा गई थी।

तृप्ति ने भी प्रवेश करते हुए कहा, 'बाबा, भाभी नरोत्तम बाबू को बुला रही है।'।

'कह दो कि आ रहे हैं।' सेन बाबू नरोत्तम की ओर उन्मुख होकर बोले, 'कल बहू कह रही थी कि उसे नरोत्तम बाबू को देखकर अपने संभले भैया की याद हो आती है। उसका भैया हैजा में मर गया था।' सेन बाबू का गला भर आया।

नरोत्तम उठकर रोहिणी के पास आया। पूछ बैठा, 'क्या बात है रोहिणी ?'

'बात कुछ नहीं है, अगले बुधवार को मेरे सभदा का कार्तिक का श्राद्ध है, उसे के० सी० दास की रसमलाई बहुत पसंद थी, आप कलकत्ता से मंगवा दीजिए न ?

मैं एक ब्राह्मण को उसके नाम भोजन करवाना चाहती हूँ।' कहकर रोहिणी ने अपने आंचल में बंधे दस के नोट को नरोत्तम के हाथ में देना चाहा।

'इसे रख लो न, मैं मंगवा दूंगा।' वह दूर हटता हुआ बोला, 'तुम्हारा सभ्दा मेरी शक्ल का था न?'

रोहिणी के हाथ का नोट हाथ में रह गया। नेत्रों में अव्यक्त व्यथा झलक उठी। सिसकती हुई बोली, 'कार्तिक दा बड़े स्नेहशील थे। बी० ए० पास कर चुके थे और 'लॉ' की तैयारी कर रहे थे। कहते थे कि रोहिणी, बैरिस्टर बनूंगा और बैरिस्टर बनकर तुम्हें जीवन का अनंत सुख दूंगा। पर दुर्दिन के पंख बहुत विशाल होते हैं। चिर दुख की तरह मनुष्य का भाग्य होता है। भूत का दुख, जलन और पीड़ा लिए हुए तथा अनागत अमंगल की कामना करता हुआ हमारा यह भाग्य हमें हंसने नहीं देना चाहता। विधि की यह क्रूर विडंबना हमारे जीवन तक ही सीमित है। हमारा साधारण सुख तो क्या, वह हमारे सीमंत का सिंदूर भी नहीं रहने देता।' रोहिणी की आंखें छलछला आईं। उन्हें पोंछकर कहा, 'इधर मेरी बेचैनी बहुत बढ़ गई थी, पर आपके आने से सभ्दा, वह दुख और बेचैनी वाष्प की तरह उड़ने लगे।'

'अच्छा मैं रसमलाई मंगवा दूंगा।'

'पर पैसा !,

'देखो, हमारे समाज का अपना अलग कायदा है। वैसे हम बहिन के घर का जल तक नहीं पीते, फिर खाना कैसे खाएंगे, इसलिए कार्तिक का श्राद्ध मैं अपने पैसों से करूंगा और पूरे पांच ब्राह्मण जिमाऊंगा।'

रोहिणी श्रद्धाभिभूत हो उठी। उसकी आंखें भर आईं।

नरोत्तम चलने को उद्यत हुआ कि रोहिणी बोली, 'जरा ठहरो न नरोत्तम दा।' कहकर रोहिणी ने चरण-रज अपने ललाट पर लगा ली।

नरोत्तम भाव-विमुग्ध-सा क्वार्टर के बाहर निकला।

मृत्यु-सी शांति छाई हुई थी। उस शांति के कठोर वक्ष को चीरता हुआ वही चिर परिचित कोमल स्वर गूंज पड़ा—

'आपनार माथा पोका खेयचे !'

बाद म हंसी ।

नरोत्तम ने देखा कि तृप्ति गर्दन नीचे किए हुए एक-एक शब्द तोल कर बोलती जा रही है ।

११

मधुर घंटी के साथ-साथ गीता के श्लोक के पठन की पतली ध्वनि ज्योंही नरोत्तम के कानों में पड़ी त्योंही उसने अलस-अंगड़ाई ली । वह उठकर छत पर खड़ा हो गया ।

सात बज रहे थे ।

सारे क्वार्टरों में बड़ी हलचल थी । पानी के नल पर कई महिलाएं परिवार के सुख-दुख की बातचीत कर रही थीं । विधवा अनुपमा दादी बासन मलती हुई 'जै श्री कृष्ण' कहती जा रही थी । मजदूरों की इस बस्ती में अनुपमा बड़ी वैष्णव-भक्त थी, इसलिए कोई-कोई उसे भक्तिन कहकर भी पुकारता था ।

तृप्ति नरोत्तम के लिए चाय ला रही थी ।

अनुपमा दादी को देखकर बोली, 'भक्तिन, नमस्कार ।'

'कौन, तृप्ति बिटिया, अच्छी हो न ?'

'हां, अरी भक्तिन, देख तुम्हारे मलने के साथ बेचारी पिपीलिका (चींटी) मरी जा रही है ।' उसने आंखें फाड़कर कहा ।

बस भक्तिन चिढ़ गई । सब्जी की छूंकार की तरह बर्तन को ठोककर बोली, 'देखियो, यह छोकरी हमारी मजाक कर रही है, कभी मैं उसकी चूल (सिर के केश) पकड़कर जमीन पर लोटा दूंगी ।' फिर नाक-भों सिकोड़कर उसने अपना स्वर, तनिक ऊंचा कर लिया, 'यह सेन है न, गरीबी के मारे इसका विवाह तो नहीं कर सकता, सो बेचारी इधर-उधर बाबुओं को चाय देती रहती है ।'

गायत्री को भक्तिन की यह बात अच्छी नहीं लगी । गाल पर तर्जनी रखती हुई बोली, 'भक्तिन, तू इस उम्र में क्यों किसीपर मिथ्या आरोप लगा रही है । यह

लड़की अत्यन्त ही सुशील और शर्मीली है। इसका हृदय जल की तरह निर्मल है। देखना, काली माई की कृपा से यह अत्यन्त सुन्दर वर और घर पाएगी।’

‘तब भक्तिन बेचारी छाती पर पत्थर बांधकर नदी में डूब मरेगी।’ कहकर तृप्ति भाग गई।

भक्तिन बड़बड़ाती रही, अनर्गल प्रलाप करती रही।

नरोत्तम हंस पड़ा, ‘कैसी विचित्र लड़की है !’

धीरे-धीरे पांव उठाकर तृप्ति ने गृह-प्रवेश किया।

नरोत्तम कुल्ला कर रहा था। वह चाय टेबल पर रखकर प्रतिमा की भांति मौन खड़ी हो गई।

नरोत्तम भी कुल्लाकर बैठ गया। कुछ बोला नहीं।

‘चाय ठंडी हो रही है।’ तृप्ति ने कहा।

‘होने दे।’

‘क्यों ?’

‘तूने भक्तिन को क्यों छोड़ा ?’ उसने डांट भरे स्वर में कहा।

‘कहां ?’ वह बिलकुल अनजान बन गई।

‘नल पर !’

‘बाबा रे बाबा।’ उसने आंखें फाड़कर अपने कान पकड़े, ‘मैंने तो भक्तिन को कहा कि बेचारी पिपीलिका (चींटी) की हत्या न कर, वह इसपर बिगड़ पड़ी। बनती है भक्तिन और करती है जीव हिंसा।’

‘तू बड़ी नटखट है। कभी भक्तिन तुझे पीट देगी, समझी !’

‘ऊं हूं।’ तृप्ति ने घृणा से मुंह बिचका दिया।

नरोत्तम चाय पीकर सुस्ताने लगा। तृप्ति हाथ में प्याला लिए खड़ी रही।

‘जाती क्यों नहीं ?’

‘क्या मास्टरनी सचमुच जा रही है ?’ उसने प्याले पर दृष्टि जमाकर पूछा।

‘क्यों ?’

‘योंही पूछ रही हूं।’

‘वह नहीं जाएगी।’

‘क्यों?’

‘वह तो बहुत अच्छा पढ़ाती है।’

तृप्ति की आंखों में हिंसा चमक उठी। कुछ बोली नहीं। कदमों को भारी रूप से पटकती हुई चली गई।

नरोत्तम कुर्ता पहनकर इन्दिरा की ओर चला। रात भर वह इन्दिरा से न मिलने के कई बार अपने आपसे प्रण कर चुका था। पर वे सारी भीष्म प्रतिज्ञाएं सवेरे के प्रकाश में इस तरह लुप्त हो गईं जिस तरह अन्धेरा लुप्त हो गया था। अन्तर्द्वन्द्व के थपेड़ों में अनिर्णीत-सा वह इन्दिरा के यहां जा पहुंचा।

इन्दिरा विभूतिबन्धोपाध्याय का ‘आरण्यक’ गल्प पढ़ रही थी।

पांवों की आहट सुनकर उसने अपनी दृष्टि उठाई। नरोत्तम को देखकर बोली, ‘आइए नरोत्तम बाबू, आपके लिए चाय बनाऊं?’

‘उसकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं चाय पी चुका हूं।’ वह कुर्सी पर बैठ गया।

‘चाय आपको पीनी होगी, अन्यथा मैं अपना अपमान समझूंगी।’

‘फिर पिला दो, अपमान करने मैं नहीं आया हूं।’

चाय बनाते-बनाते इन्दिरा ने कहा, ‘मैंने त्याग-पत्र लिख लिया है, आप जाते समय लेते जाइएगा। अब मैं यहां रहना नहीं चाहती। जब मन को आनंद नहीं, फिर कुछ करने से क्या लाभ?’

नरोत्तम कुछ देर तक विचार करता रहा। नील गगन में गिद्ध ऊंची उड़ान भरता हुआ उड़ रहा था। उसपर दृष्टि जमाता हुआ वह बोला, ‘मेरी समझ में नहीं आता कि तुम शीघ्र ही भावुक क्यों हो जाती हो। मैंने तुम्हें यह कार्य तुम्हारे लिए नहीं बल्कि सुनंदा के लिए दिलवाया है। सुनंदा के लिए श्रेष्ठतर तुम लोग तभी पा सकते हो जब कि तुम्हारे पास वर को खरीदने के लिए पैसा हो।’

इन्दिरा प्यालों में चाय डाल रही थी। उसके चेहरे पर रूखापन आ गया। प्याला साथ में लिए हुए वह आई और उन्हें मेज़ पर रखती हुई बोली, ‘सुनंदा के वर के लिए मैं अपमानित जीवन क्यों गुजारूं? फिर क्या वह विवाहित होकर प्रसन्न रह सकती है? मैंने भी विवाह किया था। सोचा था—स्त्री बनकर मैं अपने सुहाग के सुन्दर शृंगार में सुख और संतोष का जीवन यापन करूंगी पर मिली

बन्धनहीन व्यथा ही ।’

‘बात यह है इन्दिरा, कि तुममें श्रद्धा की जगह तर्क अधिक है। तर्क मनुष्य को प्रयोग की ओर घसीटता है और प्रयोग हमें प्रमाण से परिचित करा देता है। प्रमाण से परिचित होने के बाद मनुष्य का ग्रहम् अपना अलग अस्तित्व बना लेता है। यह अस्तित्व किसीका अनुचित अधिकार स्वीकार नहीं करता, किसीका अनुचित हस्त-क्षेप नहीं चाहता, तब सम्बन्धों के बीच विष-लहरी उत्पन्न हो जाती है। चूंकि तुमने बाद में अपने पति को देवता के रूप में स्वीकार कर लिया था, लेकिन तुम इन सब विचारों से शून्य तो नहीं थीं।’ और होना यह चाहिए कि स्त्री अपने स्वामी के प्रति तर्क के बजाय श्रद्धा अधिक रखे। मैं कदाचित् ठीक सोचता हूँ कि सुनंदा अपने वर को केवल ‘वर’ के रूप में स्वीकार करेगी। वह आज्ञाकारिणी बधू बनकर जाएगी और अपने स्वामी के चरण-कमलों में सर्वस्व विसर्जन करके अपनी इस देह के कर्तव्य को सफल बना लेगी।’

‘यदि ऐसा न हुआ तो ?’ उसके स्वर में भय था।

‘ऐसा ही होगा। चक्रवर्ती बाबू कह रहे थे कि सुनंदा पूर्ण भारतीय है। उसमें आज की युवतियों-सी तनिक भी उच्छृंखलता नहीं है। वह पति के समस्त अपराधों को क्षमा करके केवल उसकी अर्चना करेगी उसके सुख में केवल सन्तोष को ग्रहण करेगी और दुःख में दुःखहारिणी बनकर अपने पति को सुख पहुंचाएगी। मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि सुनंदा के भविष्य के लिए तुम्हें यह कदम नहीं उठाना चाहिए, फिर तुम्हारी अपनी इच्छा।’

इन्दिरा निरुत्तर रही। उसकी पलकों में सावन उमड़ पड़ा।

नरोत्तम चाय के प्याले पर दृष्टि जमाता हुआ बोला, ‘रोमी तुम्हारा कहीं नहीं जाएगा। वह ईसाई है, वह तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। उनका जीवन भारतीयों की भांति सत्रह वर्ष से प्रारम्भ नहीं होता, शायद पैंतीस से प्रारम्भ होता है; इसलिए तुम उसकी ओर से निश्चित रहो।’

इन्दिरा जल उठी, ‘नरोत्तम बाबू ! भविष्य में आप रोमी का जिक्र न करें। वह मेरा मित्र है और मैं बार-बार कहूंगी कि वह मेरा मित्र ही रहेगा।’ उसके स्वर में जलजला-सा था।

नरोत्तम खड़ा हो गया ।

जात-जाता बोला, 'मैं एक दिन के लिए कलकत्ता जा रहा हूँ, कोई काम है ?'
'नहीं ।'

१२

कलकत्ता पहुँचकर नरोत्तम सबसे पहले सेठजी के घर गया । मिल के बारे में कई बातें करके तथा वहाँ से भोजन करके वह सीधा चक्रवर्ती के यहाँ पहुँचा ।

चक्रवर्ती घर नहीं था पर चक्रवर्ती की बीवी ने नरोत्तम को चाय पीने का आग्रह किया । अधिक टाल-मटोल वह नहीं कर सका । बैठ गया ।

'सुनंदा, जल्दी से चाय बना ला, देख तेरे नरोत्तम दादा आए हैं।' चक्रवर्ती की पत्नी का स्वर गहरी आत्मीयता से ओत-प्रोत था । फिर वह नीचे की ओर जाकर कुछ क्षण के बाद लौटी । उसके हाथ में दोना था । उस दोने में चार पेड़े थे । पेड़ों को प्लेट में रखती हुई चक्रवर्ती की पत्नी बोली, 'नरोत्तम बाबू, आप सीधे यहीं आ जाते, यह घर पराया थोड़े ही है । हम अपनी सामर्थ्यानुसार आपकी खातिर कर देते ।'

'बात यह है कि सेठजी ने इस उजड़ु बेल को रास्ता दिखाया है । अतः पहले उनका ही हक हो जाता है । फिर सेठानी जी मां से कम ममतावाली नहीं हैं । उनका अनुरागभरा आग्रह मैं कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ ?'

चक्रवर्ती की बीवी ने पेड़ों की ओर संकेत करके कहा, 'आप इन्हें खाइए, तब तक सुनंदा आपके लिए चाय बनाकर लाती है ।'

'इनकी क्या ज़रूरत थी ? मैं अभी खाना खाकर ही आ रहा हूँ ।' उसने एह-सान भरे स्वर में कहा ।

'फिर भी एक-दो तो खाइए ।' उसने आग्रह किया ।

बड़ी मुश्किल से नरोत्तम ने दो पेड़े खाए । तब तक चाय बनकर आ गई । दो गोरे-सलोने हाथ अजीब ढंग से प्याला पकड़े हुए बड़े । कल्पना-निर्मित मूर्ति को प्रत्यक्ष

देखने के लिए नरोत्तम के मन में कई संकल्प-विकल्प उठ रहे थे। वह कैसी है, क्या उसकी आकृति है, कैसी उसकी आंखें हैं, कैसे उसके बाल हैं, इत्यादि।

सुनंदा ने चाय रख दी।

नरोत्तम ने चाय उठाकर शंकित होकर धीरे-धीरे गर्दन उठाई।

उत्फुल्ल पारिजात की भांति चित्ताकर्षक आनन।

उसने शांति का सांस लिया।

‘सुनंदा अपने दादा को नमस्कार करो।’ मां ने सुनंदा को आज्ञा दी।

सुनंदा ने नीचे झुककर नरोत्तम की चरण-धूलि लेनी चाही पर नरोत्तम स्नेहातिरेक होकर बोल पड़ा, ‘अरे, अरे यह क्या करती हो सुनंदा! बस हो गया, नमस्कार, उठो।’ पर सुनंदा ने उसकी चरणरज ले ही ली।

‘पढ़ाई कैसी चल रही है?’ नरोत्तम ने दूसरा प्रश्न किया।

‘अच्छी।’

‘अरी तुम खड़ी क्यों हो, बैठो न।...’ शर्माती हो। मेरे सामने शर्मने की क्या बात है? मैं तो तेरा दादा हूँ न?’

चक्रवर्ती की बहू भी अब चुप नहीं रह सकी। अपने सिर के आंचल को व्यवस्थित करती हुई बोली, ‘बैठ जाओ न!’ फिर अपनी दृष्टि को दौड़ाकर बोल पड़ी, ‘दोनों बहिनों में कितना अन्तर है। एक अभिमान के पीछे सर्वस्व त्यागने वाली और दूसरी श्रद्धा और भक्ति के अलावा कुछ जानती ही नहीं।’

नरोत्तम के मन में आया कि वह एक बार इन्दिरा की कटु आलोचना कर दे पर कहीं उसकी कटु बातों से इन्दिरा का अनिष्ट न हो जाए, यह सोचकर वह बोला, ‘नारी सदा श्रद्धा की प्रतिमा रही है, अभिमान, रोष और कलह उसके जीवन को अन्तहीन दुख दे जाते हैं। सुनंदा को मेरा आशीर्वाद है कि वह सुयोग्य नारी बने। अपने पति को अगोचर शक्ति की तरह बलवान मानकर उसकी अर्चना में अपनी समस्त सर्जनाओं को लगा दे।’

सुनंदा की आंखें तरल हो गईं।

‘मैं जाऊँ दादा।’

नरोत्तम ने धान की महक में पलते हुए मिट्टी से सने शाश्वत ग्रामीण सौंदर्य को

भरी दृष्टि से देखा। उसे आज्ञा देना चाहता था पर शब्द कंठ में ही घुटकर रह गए।

सुनंदा चली गई।

वह कुछ देर तक सुनंदा के भोलेपन के बारे में विचारता रहा और अंत में बोला, 'भाभी, सुनंदा का विवाह अब तुम्हें कर ही देना चाहिए। यह अवस्था विवाह-आनंद की है।'

'बस, रुपयों का बंदोबस्त होते ही वर के घर वालों से बातचीत कर ली जाएगी। उन्होंने एक लड़का देखा भी है।'

'भगवान करे आपकी मनोकामना शीघ्र पूरी हो जाए।'

इसके बाद नरोत्तम वहां से चला आया।

कलकत्ते के विभिन्न मित्रों से मिलकर वह रसमलाई लेकर संध्या की गाड़ी से पुनः मिल रवाना हो गया।

१३

मिल से दूर सेवड़े और जंगली बेलों के वन में एक प्राचीन काली मैया का मन्दिर है। यहां के निवासियों के इसके बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं और ये ही भिन्न-भिन्न मत व्यापक रूप पाकर किंवदन्तियां बन गए हैं। कुछ व्यक्तियों का कहना है कि मन्दिर के आगे जो पोखर है, उसमें से यह मूर्ति निकली है और कुछ का कहना है कि कोई योगी हिमालय से चलकर यहां आया था और उसने अपनी अज्ञेय शक्ति से इस मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी, और कोई-कोई तो यहां तक भी कह देता है कि नदी के उस पार एक दत्त महाशय की कोठी थी। यह दत्त परिवार बहुत धनी था। कलकत्ता में उस परिवार के मुखिए का अच्छा-खासा व्यापार था। वे जहां-तहां से वेश्याएं लेकर यहां आते थे और खूब आमोद-प्रमोद करते थे। उन्होंने धीरे-धीरे पैसों के बल पर घर की बहू-बेटियों पर भी हाथ डालना प्रारम्भ किया। लाचार एक रात स्वयं काली माई रौद्र रूप धारण करके आई और पाप को निर्मूल

करके खुद यहीं बस गई। यह प्रत्यक्ष की प्रतिमा है।

हजार मुंह की हजार बातें। लेकिन वहां काली माई का मन्दिर ज़रूर था। तृप्ति शांतिपुरी धोती पहने हुए मन्दिर के पास गई। हाथ जोड़कर उसने मां से प्रार्थना की। किसीके कल्याण की कामना के बदले तृप्ति ने मां से कई वायदे किए। फिर एकाएक उसे ध्यान आया कि बिना प्रसाद के मां उसकी मनोकामना पूर्ण नहीं करेगी, अतः वह समीप के पोखर में गई। पोखर में सिंघाड़ा लगते थे। यह पोखर कितना गहरा है, तृप्ति नहीं जानती थी पर वह किसीका गहरा अनिष्ट करवाना चाहती थी। उस अनिष्ट के लिए उसने एक बार अपनी जान पर खेल जाना चाहा। वह भयभीत-सी पोखर की ओर बढ़ी। बार-बार वह काली मां का ध्यान कर रही थी। पोखर ज्यादा गहरा नहीं था। वह उसमें से कुछ सिंघाड़े तोड़ लाई। काली मां को प्रसाद चढ़ाकर वह खुशी-खुशी घर की ओर लौट पड़ी। उसे बड़ी सांत्वना मिली कि काली मां उसको अवश्य वरदान देगी। तब उसके सामने नरोत्तम का निर्मल मुख नाच उठा। वह स्वप्नाविष्ट-सी नारियल वृक्ष की हिलती छाया में खड़ी हो गई। उसने अपने नेत्र मूंद लिए। तब वह वहीं दोनों घुटनों के बीच सिर छुपाकर बैठ गई। लगभग आधे घंटे बाद उसने अपनी गर्दन ऊंची की। उसकी आंखों से अश्रु की अन्तिम बूंद ढुलक रही थी। चेहरा इतना उदास हो गया था जैसे उसकी सबसे प्रिय वस्तु उससे विलग हो रही हो।

उसने अपने आंचल से अपना मुंह पोंछा। देखते-देखते उसकी मुद्रा बदल गई। करुणा और व्यथा से नाचती हुई रेखाएं प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की भयानक लपटें बन गई। उसने अपने आंचल के छोर को कमरबंद की तरह कसा और सेनानी की तरह अकड़कर चल पड़ी जैसे वह किसीसे लड़ने जा रही हो।

उसके सामने इन्दिरा का अस्पष्ट मुख था। कलंक और चरित्रहीनता से युक्त काला, क्रूर और दुष्ट !

वह निरुद्देश्य सारे क्वार्टरों का चक्कर लगाती हुई भटकती रही।

सेन बाबू ने भल्लाकर कहा, 'पता नहीं, कहां भटकती फिरती है? सवेरे से बिना कुछ कहे गायब हुई थी और अभी तक नहीं लौटी। जवान लड़की का इस तरह भटकना खतरे से खाली नहीं है।'

‘इधर बिचारी बहू, सवेरे से काम में जुटी हुई है। उसके भाई का श्राद्ध है, पांच ब्राह्मणों के लिए सात्त्विक भोजन तैयार करना है। अकेली बहू काम करते-करते मर नहीं जाएगी ? ... मोना, ओ मोना ।’ सेन बाबू की पत्नी ने अपनी छोटी बेटों को पुकारा। वह फुदकती हुई आई, ‘क्या है मां ?’

‘जा, अपनी दीदी को ढूँढ़कर ला ।’

रोहिणी भीतर से ही बोली, ‘वह नहीं आती है तो कोई बात नहीं। मैं अकेली ही सारा काम कर लूंगी। वह साथ देती तो ज़रा काम सहज हो जाता ।’

‘वह साथ क्यों नहीं देगी ?’ सेन बाबू की पत्नी बोली, ‘जब तुम उसके हर कार्य में साथ देती हो तो उसे भी देना चाहिए। यह भी कोई मनुष्यता है ?’

तभी मोना तृप्ति को लेकर आ गई।

मां ने रुष्ट होते हुए कहा, ‘कहां मर गई थी सवेरे-सवेरे ! न पढ़ना, न लिखना, इस तरह की गंवार छोकरी से कौन विवाह करेगा ?’

तृप्ति हंसकर बोली, ‘नहीं करेगा तो न करे, मैं गौरांग प्रभु की दासी ही बन जाऊंगी ।’

पुत्री के मुंह से ऐसी बात सुनकर मां आश्चर्य में पड़ गई। अभी से ऐसे विरक्ति के भाव रहे तो आगे चलकर यह ज़रूर जोगन बनेगी। वह प्रतारणा भरे स्वर में बोली, ‘धत् पगली ! आई है गौरांग प्रभु की दासी बनने वाली ! चल, अपनी भाभी का हाथ बंटा । ... अरे इस भोले में क्या है ?’

‘सिंघाड़ा ! मां, यह काली मां का प्रसाद है। खाओगी ?’

‘मैं खाऊंगी दीदी ।’ कहकर मोना मचल पड़ी।

तभी नरोत्तम ने घर में प्रवेश किया।

‘बड़ो दा, तुम भी काली का प्रसाद लो ?’ तृप्ति ने अत्यन्त कोमल स्वर में कहा। उसके नेत्रों में अत्यन्त करुणा थी।

‘ला, मुझे एक दे दे ।’ नरोत्तम ने उसके आगे हाथ फैला दिया। तृप्ति ने विह्वल भाव से उसे दो सिंघाड़े दे दिए। नरोत्तम उसके सौम्य-करुण मुख को निहारता रहा।

‘यह प्रसाद किस बात का है ?’ नरोत्तम ने पूछा।

‘मैं बताऊँ नरोत्तम दा, दीदी अच्छा वर चाहती हैं।’ मोना ने मटककर कहा।

‘धत्।’ तृप्ति लजाकर भीतर भाग गई।

मोना हंस पड़ी।

रोहिणी पसीने से लथपथ रसोई घर से बाहर निकली। उसका गोरा मुख आग की आंच से लाल-सुर्ख हो गया था। आंचल से मुंह पोंछती हुई बोली, ‘दादा, मैंने सारा खाना पका लिया है, अब तो ब्राह्मण जल्दी आ जाएं, बस।’

नरोत्तम ने कहा, ‘रोहिणी, तुम्हें अपने भाई से कितना प्यार है? मृत्यु उपरान्त तुम्हारे हृदय में उसके प्रति जब स्नेह की अजस्र धारा है तब मृत्यु-पूर्व कितनी होगी? उसकी कल्पना ही मधुरतम है।’

रोहिणी की आंखें सजल हो उठीं। रुंधे कंठ-स्वर से बोली, ‘दुर्भाग्य और दुर्दिन को कौन रोक सका है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्म के फल भोगने पड़ते हैं। मेरे कर्म बहुत ही बुरे हैं। सुहाग का सुख भी नहीं मिला। जीवन समिधा की तरह जल रहा है। जलने दो। सुख की स्मृति दुख की पीड़ा को अधिक कठोर बना देती है। इसलिए हतभागिनी को अपने सुख को कदापि स्मरण नहीं करना चाहिए।’ रोहिणी सिसक पड़ी।

बहू को रोते देख श्रीमती सेन ममत्व भरे स्वर में बोली, ‘रोने से मृत प्राणी लौटकर नहीं आएगा बहू। व्यर्थ दुख करके अपने हृदय को पीड़ा क्यों पहुंचाती हो? तुम कदाचित् यह नहीं जानती कि भगवान् जिनसे रूठ जाते हैं, वे सुख की कल्पना भी नहीं कर सकते।’

नरोत्तम इस व्यथित वातावरण में अनुभूतिहीन-सा खड़ा रहा। उसे केवल घुटन हो रही थी—घुटन। व्यावहारिक ज्ञान के प्रारंभिक पाठ को याद करके वह संतप्त स्वर में बोला, ‘हमें दुख और कष्ट में सदा धैर्य रखना चाहिए, जीना-मरना यह सब ईश्वर के अधिकार है।’

अन्तिम फैसले के रूप में यह बात कही गई थी, इसलिए मरण की बात वहीं रुक गई।

ब्राह्मण लोग आ गए थे। पंडित राय ने क्रिया-पूजन कराके एक-दो मंत्रों का उच्चारण किया। पूजा में नरोत्तम बैठा था। रोहिणी की आंखें पुनः भर आई थीं।

भैया की मधुर स्मृति, स्नेह, करुणा और ममता सभी उसे आज याद हो उठे।

नियम के अनुसार सब कुछ हुआ। ब्राह्मण आए और चले भी गए।

रोहिणी ने शेष सामान को मछलियों को खिलाने के लिए नदी की ओर भेज दिया। जवान मौत के पीछे किए गए भोज को कोई भी खाने को तैयार नहीं था। मोना की आज खूब बन आई। नदी के किनारे बैठी-बैठी वह मछलियों को खाना खिलाएगी। और उसने मन ही मन अपने से कहा कि फिर वह चुपके से एक-दो बढ़िया मछली पकड़ लेगी।

तृप्ति सीधे नरोत्तम बाबू के घर गई। वह थकान मिटाने के लिए पलंग पर लेटा ही था। वह बार-बार अलस अंगड़ाई ले रहा था। तृप्ति को देखकर वह प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा। तृप्ति आंचल में कुछ लिए हुए थी। यंत्रचालित-सी वह आगे बढ़कर धीमे स्वर में बोली, 'बड़ो दा ! प्रसाद कैसा था ?'

'तूने प्रसाद किस बात का किया है ?' वह बैठ गया, 'पहले मुझे यह बता ?'

'मैंने, ओह !' वह हंस पड़ी, 'यूँ ही, बात यह है बड़ो दा, कि मेरे पांव में एक फोड़ा हो गया था तब मैंने काली मां का प्रसाद बोला था। वह फोड़ा बहुत ज़हरीला था। बढ़ने पर पांव कटवाने तक की नौबत आ सकती थी। यह तो काली माई की कृपा समझिए कि साधारण उपचार में ही ठीक हो गया। वह क्षण भर रुककर बोली, 'पांव ठीक होने पर मैं प्रसाद करना भूल गई। काली मां मुझसे नाराज़ हो गई। कल मुझे उसने स्वप्न में कहा कि तू मुझसे ही छल करती है।'

नरोत्तम को हंसी आ गई।

'आप हंसे क्यों ?'

'तू बड़ी भोली है।'

वह शरमाकर सिकुड़-सिमट गई। उसकी कनपटियां लाल हो उठीं। उसकी नज़रें झुकी सो झुकी ही रह गई।

नरोत्तम हंसकर कपड़े बदलने लगा। आज उसे मैनेजर से कुछ विशेष बातें करनी थीं। जितनी देर उसे कपड़े बदलने में लगे, तब तक तृप्ति वहीं खड़ी रही। उसे बिलकुल चुप देखकर वह बोला, 'तू कुछ कहना चाहती है ?'

'नहीं तो, पर बड़ो दा, यह मास्टरनी कब जाएगी ?'

नरोत्तम ने उसे पैनी निगाह से देखा। वह सिर झुकाए खड़ी थी। उसकी मुखश्री अन्तस् के भय के कारण धूमिल पड़ गई थी।

‘तू बार-बार यह क्यों पूछती है?’

‘नहीं तो।’

‘तो क्या तुझे यह मास्टरनी अच्छी नहीं लगती? सभी तो यह कहते हैं कि इन्दिरा दीदी, बहुत अच्छी है।’

‘अच्छा पढ़ाती जरूर है पर...!’ वह कहती-कहती चुप हो गई।

‘पर क्या?’

‘उस दिन नदी के किनारे आप कह रहे थे कि उसने अपने पति को छोड़ दिया है।’ उसने भयभीत होकर डरते-डरते कहा।

‘क्या बकवास करती है?’ नरोत्तम गुस्से में भर उठा, ‘आजकल तेरी जबान केंची की तरह चलने लगी है। खबरदार, जो अब से किसीको इस प्रकार का झूठ कहा तो।’ उसका स्वर नितान्त नरम हो गया, ‘अरी पगली, उस दिन हम किसी और के बारे में बातचीत कर रहे थे। तुम्हारी इन्दिरा दीदी के बारे में नहीं।’

तृप्ति को नरोत्तम का डांटना अच्छा नहीं लगा। उसकी आंखें तुरन्त सजल हो उठीं। बोली, ‘आप भी मिथ्या भाषण करने लगे, बड़ो दा।’

और वह बिना उत्तर सुने ही चली गई।

उस दिन नरोत्तम के मन में विलक्षण विचार तृप्ति को लेकर उठते रहे। उसे लगा कि तृप्ति उसपर सर्वस्व निछावर करना चाहती है पर यह सब कहना उसके लिए अत्यन्त दूभर है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह इन्दिरा से घृणा नहीं करती। तृप्ति यहां से उसके जाने की कामना नहीं करती।

संध्या होते ही वह अपने क्वार्टर को इस उत्तेजित विचार को लेकर आ रहा था कि वह इन्दिरा से व्यापारिक सम्बन्धों के अलावा कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखेगा, मन के तमाम बन्धनों को तोड़ देगा, पर जैसे ही संध्या को अपने में समेटता हुआ अन्धकार बढ़ा वैसे ही उसका मन दुर्बल हो गया। और रजनी का चूनर जब तारों से भर गया तब वह इन्दिरा के अभाव में तड़पने-सा लगा। तुरन्त उसने कुर्ता पहना और इन्दिरा के यहां पहुंच गया।

इन्दिरा लेटी-लेटी गुनगुना रही थी। नरोत्तम को देखते ही बोली, 'कलकत्ते से आकर अब मिलने आए हैं नरोत्तम बाबू ?'

'सेठ जी ने कुछ आवश्यक कार्य दे दिए थे, उन्हें संभालने में ऑफिस में पूरा दिन बीत गया।'

'बाबा से मिले थे ?'

'नहीं।'

'कहने वालों ने ठीक ही कहा है कि गरीब से कैसा नाता-रिश्ता ?' उसने एक निःश्वास लिया।

'क्यों ?' वह विस्मित हो गया, 'तुम्हारे घर गया था। सुनंदा से मिला था। बड़ी भोली और सुशील है वह। सच कहता हूं कि जो व्यक्ति उससे विवाह करेगा, वह बड़ा भाग्यशाली होगा।'

'फिर आप क्यों नहीं कर लेते ?' इन्दिरा बिना सोचे बोली।

'मैं, छिः-छिः तुम भी कभी-कभी कैसा भद्दा मजाक कर लिया करती हो। वह तो मेरी छोटी बहिन है। मैं तो सदा ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि उसे श्रेष्ठ वर मिले ताकि उसका जीवन असंतोष में न बीते।'

'मां ने क्या कहा ?' इन्दिरा ने बात को एकदम बदला।

'तुम्हें आशीर्वाद दिया है। सुनंदा तुम्हें बहुत याद करती है। उसे तुम्हारे दर्शनों की तीव्र लालसा है।'

'वह बड़ी भोली है।' इन्दिरा ने अपने आपसे कहा।

गहरी मूकता छा गई।

दोनों अपने-अपने विचारों में तन्मय थे। एकाएक नरोत्तम जाने क्या सोचकर बोल उठा, 'इन्दिरा, यदि अभी सुबोध आ जाए तो ?'

इन्दिरा चिहंक उठी, 'तुम बड़े विचित्र हो, जो वस्तु कल्पनातीत है, उसे याद करके व्यर्थ का रोमांच क्यों किया करते हो ? अभी यह प्रश्न पूछ रहे हो, और थोड़ी देर बाद यह पूछोगे कि बताओ न इन्दिरा कि अगर मैं अभी मर जाता तो ?' वह छटपटा उठी, 'मनुष्य भी कितना विचित्र स्वभाव का होता है। दुख न है तो उसकी कल्पना कर लेता है; सुख न मिले तो सुखद स्वप्नों में खो जाता है। पर इन सबसे

समय के अपव्यय के शलावा और क्या हो सकता है ?'

नरोत्तम जरा भी उत्तेजित नहीं हुआ। साधारण स्वर में बोला, 'निराधार कल्पना के सहारे उड़ना मेरा काम नहीं। मैंने सुबोध को तुम्हारे घर देखा था।'

'क्या कहते हो ?'

'ठीक कहता हूँ और तुम्हारी मां ने उसका अपूर्व स्वागत किया था। मैं भी उससे विशेष रूप से प्रभावित हुआ। कितनी शालीनता और सज्जनता थी उसके मुख पर।'

इन्दिरा जल उठी। होंठ को काटती हुई बोली, 'अब वह दुष्ट पुनः मुझे प्राप्त करने की फ्रिक् में है पर मैं उसको देखना भी नहीं चाहती। यदि वह मां को अपनी निर्दोषिता के कई प्रमाण देकर यहां आ भी जाए तो मैं उसे धक्के मार कर निकाल दूंगी।'...उत्तेजना के कारण उसके स्वर में कंपन आ गया था, 'जो व्यक्ति सदा किसी न किस रूप से अपने स्नेहभाजन को ठगता रहा हो, उसे कैसे प्यार किया जा सकता है।'

'आखिर वह तुम्हारा स्वामी है।' नरोत्तम ने संयत होकर कहा।

'अब वह मेरा स्वामी नहीं है। मैं उससे नाममात्र का रिश्ता भी रखना पसन्द नहीं करती।'...वह मेरा कोई नहीं है।'...वह क्रोध में निश्चल होकर बैठ गई।

नरोत्तम हंस पड़ा। उसकी बेमौके की हंसी के कारण इन्दिरा कांप उठी। झुल्लाकर बोली, 'मुझे तुम व्यर्थ ही क्यों सताते हो। मैं उस व्यक्ति के कारण बहुत दुखी हूँ। मेरा महत्वाकांक्षी जीवन नरक की ज्वालाओं में झुलस कर रह गया है और एक तुम हो जो मुझे बार-बार पीड़ा दिया करते हो, कैसे निर्दय प्राणी हो ?' वह फफक पड़ी।

'मैं इसलिए हंसा कि उसने आत्महत्या कर ली।' वह उसकी बात अनसुनी करके बोला।

'किसने ?'

'सुबोध ने।' वह तुरन्त बोला, 'मैं तुमसे मज़ाक कर रहा था कि तुम्हारे हृदय में उसके प्रति तनिक भी करुणा है या नहीं ?'

'उसने आत्महत्या कर ली ?'

‘हां।’

‘ओह, यह बहुत बुरा हुआ। उसने आत्महत्या क्यों कर ली, क्या उसे सम्पूर्ण रूप से निराशा हो गई थी? पत्नी से परित्यक्त पति अन्त में अपने पाप का प्रायश्चित्त इस प्रकार करते हैं?’ वह भावातिरेक में आगई, ‘नरोत्तम बाबू, वह बहुत सरल हृदय था। यदि नारियों के प्रति उसकी वासना स्वतंत्र न होती तो वह एक सफल गृहस्थ बन सकता था।’ इन्दिरा की आंखें भर आईं। ‘लेकिन उसका अंत मुझे उन परित्यक्ताओं की याद दिला रहा है जो पति से विलग हो जाने के बाद इसी प्रकार अपने शेष जीवन का अंत करती हैं। भगवान उसकी आत्मा को शांति दे।’ और उसने अपनी आंखों के आंसुओं को पोंछना चाहा। तभी नरोत्तम हंस पड़ा।

‘वात क्या है नरोत्तम बाबू?’

‘मैं तुम्हें पहचानने की कोशिश कर रहा था। सुबोध बाबू तो आजकल घोर अरण्य में अघोर तपस्या कर रहे होंगे।’

‘मुझे इस प्रकार का बेहूदा मजाक पसंद नहीं है।’ वह चिढ़ गई।

‘न सही।’ उसने अपने कंधे बिचका दिए और मुस्कराता हुआ चला आया।

१४

उसके ठीक एक सप्ताह बाद जलती दोपहरी।

तृप्ति स्कूल से भागकर इमली के उस पेड़ के पास गई जिसके बारे में कई बुढ़ियाओं ने कह रखा था कि उसपर देवता का वास है। इन्दिरा का वहां से न जाना और नरोत्तम का उससे हमेशा की तरह मिलना, अब उसे सह्य नहीं हो रहा था। उसे महसूस होता था कि नरोत्तम बाबू उसे बच्ची समझते हैं और उसकी बातों को हवा में रूई के गाले की तरह उड़ा देते हैं। इस बात की उसके मन में यह प्रतिक्रिया हुई कि वह दैवी शक्ति द्वारा इन्दिरा को वहां से भगाने की कामना करने लगी।

उसने वृक्ष को तीस बार नमस्कार किया और ध्यानमग्न होकर इन्दिरा के वहां से तुरन्त चले जाने की कामना की।

वहां से उठकर वह सीधी वापस स्कूल आई।

इन्दिरा बच्चों को पढ़ा रही थी। तृप्ति को देखकर बोली, 'कहां गई थी ?'

'नदी के पास।' वह कुछ देर चुप रहकर बोली।

'क्यों ?'

'एक काम था।'

'क्या काम था ? इस समय क्या डूबने गई थी ?' उसने तेज स्वर में डांटा। उसकी आंखों में क्रोध उभर आया था।

सब छात्र खिलखिलाकर हंस पड़े।

तृप्ति जल-भुन गई।

'भविष्य में बिना पूछे कहीं भी नहीं जाओगी।' इन्दिरा ने मेज पर हाथ पटक-कर कहा, 'मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगी तो दुख पाओगी।'

'ठीक है।' और तृप्ति ने अपनी पोथी और स्लेट लेकर व्यग्रता से आंखों में आंसू भर कहा। 'मुझे अब नहीं पढ़ना है, नहीं पढ़ना है।' और वह तीर की तरह कक्षा से बाहर निकल गई।

सब देखते रहे।

इन्दिरा ने उसी समय श्रीमती सेन को बुलाकर कहा, 'आपको अपनी बेटी पर अधिक ध्यान देना चाहिए। आज दोपहर की जलती धूप में तृप्ति नदी की ओर गई थी। उस सुनसान बीहड़ में कहीं कुछ अनिष्ट हो गया तो बदनामी सबकी होगी।'

श्रीमती सेन ने भी दुख प्रकट करके कहा, 'पता नहीं यह छोकरी मानती क्यों नहीं ? छोकरी पर कभी किसी प्रकार का झूठा ही कलंक लग गया तो बड़ी मुश्किल होगी।'

'आप ज़रा उसे काबू में रखा कीजिए। अब वह नादान नहीं है और आज का ज़माना बस ज़माना ही है।'

श्रीमती सेन कुछ नहीं बोली।

इन्दिरा उसको सावधान करती हुई बोली, 'इस समय, लड़के और लड़कियों का हृदय भावना-प्रधान अधिक हो रहा है। जब विचारों पर भावना का गहरा आवरण पड़ने लगता है तब प्राणी जरूर कोई न कोई गलती करता है। क्योंकि भावना की पिपासा सहज में शांत नहीं होती। यदि तृप्ति ने किसी लड़के में आकर्षण पा लिया है...'।'

बीच में ही श्रीमती सेन उतावली से बोली, 'नहीं-नहीं, वह इतना साहस नहीं कर सकती। आयु के लिहाज से वह बड़ी जरूर हो गई है पर है अभी वह बच्ची ही। मैं उसे समझा दूंगी, आप चिंता न कीजिए।'।'

इन्दिरा के चुप होने पर श्रीमती सेन कुछ देर तक वहीं खड़ी रही, फिर वहां से इन्दिरा को बिना नमस्कार किए ही लौट आई। लगता था कि उसके मन पर किसीने भारी पत्थर रख दिया है।

तृप्ति घर में बिस्तरे पर पड़ी हुई थी। उसने अपनी आंखें बन्द कर रखी थीं। मां कब आई, उसने ध्यान नहीं दिया।

श्रीमती सेन ने उसे पुकारा, 'तृप्ति !'

तृप्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'छोकरी, क्या गूंगी हो गई है !'

तृप्ति ने गुस्से में कहा, 'क्या है ?'

'नदी पर क्यों गई थी ?'

'प्रार्थना करने के लिए।'।'

'किसकी प्रार्थना ?'

'इमली के पेड़ पर बसे देवता की।'।'

'क्यों ?'

'इन्दिरा दीदी की बुद्धि को ठीक करने के लिए।'।'

'मतलब ?'

'मां, तू नहीं जानती, इन्दिरा दीदी ने अपने पति को छोड़ दिया है !'

श्रीमती सेन पर वज्रपात हो गया। विस्मय से आंखें फाड़कर वह बोली, 'यह क्या कह रही है ? तूने यह सब कहा सुना ?'

‘अपने कानों से सुना, इन्दिरा दीदी के मुंह से सुना।’ उसने जलते हुए स्वर में होंठ काटकर दृढ़ता से कहा।

‘चुप !’ श्रीमती सेन ने उसे डांटा, ‘तू बिलकुल पगली है, इस प्रकार का प्रलाप नहीं करना चाहिए।’

तृप्ति ने सावधान होकर कहा, ‘मैं भूठ नहीं बोलती। इन्दिरा दीदी नरोत्तम दा को कह रही थी। और मां, अब मैं उसके स्कूल नहीं जाऊंगी। वह मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं लगती। मैं सच कहती हूँ तुम्हें, कि एक न एक दिन मेरा उससे झगड़ा हो जाएगा। मैं उसे पीट दूंगी, समझी।’ कहते-कहते उसकी आंखें भर आईं।

मां को तृप्ति की यह उच्छृंखलता अच्छी नहीं लगी। उसने उसे डांट दिया और उसे चेतावनी दी कि भविष्य में वह इस प्रकार का प्रलाप करेगी तो मार खाएगी।

तृप्ति तिलमिला कर चली गई।

जब वह लौटी तब तक नल पर औरतें इस बात की चर्चा करने लग गई थीं, ‘हेडमास्टरनी ने अपने पति को छोड़ दिया है, वह हमारे बच्चों को क्या पढ़ाएगी ? और कुछ नहीं तो कम से कम लड़कियों को तलाक देना तो सिखला ही देगी। बड़ी कुलक्षणी है। बाबा रे बाबा, कितना पाप धरती पर बढ़ गया है। इस प्रकार की बातों से वहां का वातावरण गर्म था।

संध्या होते-होते यह बात मर्दों के कानों तक पहुंच गई। विचारणीय प्रश्न हो गया। कुछेक ने आकर उसी समय नरोत्तम के कानों में यह अमृत उड़ेल दिया। नरोत्तम कुछ बोला नहीं। वह चिन्तित हो गया। वह विचारने लगा कि यह बात कौन फैला सकता है ? कभी-कभी अनुमान को प्रमाण बहुत जल्दी मिल जाता है। वह समझ गया कि हो न हो यह बात तृप्ति ने ही फैलाई है। उस नादान लड़की के हृदय में इन्दिरा के प्रति घोर घृणा है, गहरा द्वेष है, एक प्रतिद्वन्द्विता है।

खाना ठंडा हो रहा था इसलिए वह खाना खाने बैठ गया।

भोजन से निवृत्त हुआ ही था कि तृप्ति स्वयं आ गई। उसके हाथ में लिफाफा था। आकर बोली, ‘नरोत्तम दादा, आपकी यह चिट्ठी !’

‘ला।’

‘किसके यहां से आई है?’

‘घर से, मां की है।’

दोनों चुप हो गए। नरोत्तम चिट्ठी पढ़ने लगा। विशेष समाचार नहीं था। मां ने आशीर्वाद लिखा था तथा भाभी के लिए कुछ साड़ियां भेजने का अनुरोध किया था। तृप्ति वहीं खड़ी थी।

‘तू अब यहां क्यों खड़ी है?’ उसने ज़रा तेज़ स्वर में पूछा।

‘यों ही।’ वह क्षण भर बाद बोली, ‘इन्दिरा दीदी के बारे में यहां बड़ी खराब चर्चा फैली हुई है। लोग कहते हैं कि उसने अपने स्वामी को छोड़ दिया है।’

‘हां, पर उसके स्वामी ने भी उसपर कम अत्याचार नहीं किए। एक स्त्री कहाँ तक वे अत्याचार सहती?’ उसने पात्र का ध्यान बिना रखे ही अपनी वकालत प्रारंभ कर दी।

तृप्ति ने नाक-भों सिकोड़ी। आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोली, ‘यहां के मनुष्य भी बड़े विचित्र हैं। कह रहे हैं कि ऐसी मास्टरनी से लड़कियां पढ़कर अपने स्वामियों को केवल तलाक देना ही सीखेंगी।’

‘खाक में जाए यहां की लड़कियां। जब उन्हें पढ़ना ही नहीं है, तब वह यहां क्यों रहेगी?’

तृप्ति को मन ही मन बहुत आनन्द हुआ पर ऊपर से सन्तप्त स्वर में बोली, ‘इसका मतलब है कि इन्दिरा दीदी, यहां से चली जाएगी?’

नरोत्तम ने उत्तप्त स्वर में कहा, ‘और क्या? इन मूर्खों के साथ भला कोई क्या रह सकता है? खुद पाप के पुतले हैं और दूसरों में दोष ढूँढ़ते हैं, छिः।’

तृप्ति ने मन ही मन इमली के गाछ के देवता की प्रार्थना की और उसके पांच पैसों का प्रसाद भी बोल दिया।

‘नरोत्तम दा, मैं चली।’ तृप्ति आंखें मटकाकर बोली।

वह निरुत्तर रहा। तृप्ति चली गई—आनन्द का अतीव स्रोत अपने अन्तर में छिपाए कि इन्दिरा चली जाएगी, तब वह और नरोत्तम दा...

नरोत्तम सीधा इन्दिरा के यहां गया। इन्दिरा उद्विग्न-सी कमरे में टहल रही थी। उसके लोचनों में अश्रु थे। नरोत्तम के पांवों की आहट सुनते ही वह तड़पकर

बोली, 'सुन लीं यहां के भले मनुष्यों की बातें । वे मुझे कुलटा, चरित्रहीन और निर्लज्ज कहते हैं। कहते हैं कि मैंने अपने स्वामी को छोड़ दिया।'

'मैं स्वयं चिंतित हूं इन्दिरा।' वह दुख से बोला।

'आप चिंतित रहिए, मैं अब एक पल भी यहां नहीं ठहर सकती। ऐसे असभ्य-अशिष्ट लोगों के बीच मेरी सांस घुट जाएगी।' वह उत्तेजना से कांप रही थी।

'इसमें इतना उत्तेजित होने की क्या बात है? नासमझ लोगों के बीच स्वयं को नासमझ नहीं बनना चाहिए। माना कि उन्होंने तुम्हें भला-बुरा कहा पर इससे तुरन्त ऐसा निर्णय कर बैठना, जिससे समस्त जीवन अस्त-व्यस्त हो जाए, कहां तक उचित है?' नरोत्तम का स्वर भी तेज हो गया।

'उचित और अनुचित के विवेचन से कभी-कभी मनुष्य को तुरन्त छुटकारा पा जाना चाहिए। फिर हर बात में गंभीरतापूर्वक सोचना मुझे रुचिकर नहीं लगता।' वह पूर्ववत् स्वर में बोली, 'परिणाम के सत्य से परिचित होकर मनुष्य को नेत्र बन्द करके नहीं बैठना चाहिए। यदि मैं अधिक देर तक यहां रुकूंगी तो तुम समझ लेना कि एक नई यूनियन मुझे पदच्युत करने के लिए बन जाएगी।'

नरोत्तम परिणाम के भावी विस्फोट से परिचित था। वह अच्छी तरह समझता था कि अशिक्षा और धर्म के खूंखार पंजों में दबोचे हुए ये मजदूर व्यर्थ ही बवाल उत्पन्न करेंगे। फिर भी उसके मन की एक इच्छा उसे इसके लिए विवश कर रही थी कि वह इन्दिरा को रोके। इधर उसके और इन्दिरा के विचारों और बातचीत में भी काफी व्यवधान और कटुता उत्पन्न हो गई थी। इन्दिरा का उत्तेजित स्वभाव उसे कतई पसन्द नहीं था। लेकिन सामीप्य-सुख की एक स्पष्ट इच्छा उसमें अति सम्मोहन की भावना जगा रही थी।

'आप चुप क्यों हैं?' इन्दिरा ने उसकी विचारधारा को तोड़ा।

'मैं चाहता हूं कि तुम दो दिन के लिए और ठहर जाओ। क्या पता ये लोग वास्तविक तथ्यों से परिचित होने पर शांत हो जाएं। अधिक अधीरता से सुफल की प्राप्ति नहीं होती।'

'मन को कैसे भी ढाढ़स दिया जा सकता है।' इन्दिरा विगलित स्वर में बोली, 'पर सत्य स्वयं कांटों की भांति चुभन पैदा करके अपना वास्तविक निष्कर्ष बतला

ही जाता है।' उसकी आंखें भर आईं, 'हमारे हिन्दू समाज का कैसा विधान है? उस विधान में केवल नारीमात्र होना ही अभिशाप है। उसमें नारी की अत्याचार से मुक्ति का कोई अभिप्राय नहीं। मैंने अपने पति को छोड़ दिया, इसलिए मुझे प्रत्येक व्यक्ति घृणा करता है। तुम्हें नहीं पता कि पति ने मुझे कितनी अमानुषिक यन्त्रणा दी थी? आखिर मैं आत्मघात करने के लिए तैयार हो गई। लेकिन मैं आत्मघात नहीं कर सकी और मैंने मुक्ति का आह्वान कर लिया। यह मुक्ति अब मेरे भविष्य को नारकीय अंधकार में बदल रही है। क्या यह अन्याय नहीं? यहां के मनुष्यों की सोचने की यह एकांगी प्रवृत्ति कैसी है?'

नरोत्तम संभलकर बोला, 'हम इस प्रवृत्ति को पलायन द्वारा परिवर्तित नहीं कर सकते। जिस वस्तु का आधार जड़ की तरह पृथ्वी के अन्तराल में समाहित हो जाता है, उसे हम एक झटके से निर्मूल नहीं कर सकते। वह समय मंगा है।' वह थूक गटककर उपदेशक की तरह बोला, 'रही घृणा की बात, मैं कहता हूं, घृणा मनुष्य के लिए सच्ची चेतावनी है। घृणा का पात्र ही बाद में सबसे प्रिय बनता है।'

लेकिन मैं घृणा को सह नहीं सकती।' वह उतावली होकर बोली।

'सहने का साहस उत्पन्न करना पड़ेगा। बिना इसके तुम्हारा जीवन नारकीय हो जाएगा।' और उसने मन ही मन कहा, मैं किसी भी तरह इसे यहां रखने की कोशिश करूंगा।

उत्तर में इन्दिरा सिसक पड़ी।

नरोत्तम ने उसे सांत्वना न देकर अपना निर्णय सुनाया, 'तुम्हें दो दिन और रुकना पड़ेगा, इसपर यदि स्थिति विषाक्त रही तब तुम जो भी चाहो कर लेना।' वह बिलकुल उदास हो गया। 'सुनन्दा का भविष्य अब तुम्हारे हाथ में है।'

इन्दिरा का सिसकना बन्द नहीं हुआ। नरोत्तम चला आया।

क्वार्टर में घुसने के पूर्व उसे वही संगीतभरा मधुर स्वर तीखे व्यंग्य के रूप में सुनाई पड़ा—'आपनार...माया...पोका...खेयचे!'

उसने दृष्टि घुमाकर देखा, अन्धकार के धुंधलके में तृप्ति अपने दोनों घुटनों पर सिर रखे बैठी है।

दूसरे दिन स्कूल में अजीब मौन वातावरण की सृष्टि हो गई। छोटे-छोटे बच्चे इन्दिरा को इतने कौतूहल से देखते थे जैसे वह किसी परियों के देश की परी हो और उसके सुनहले पंख हों। इन्दिरा ने 'गप्पू' से पूछा, 'महात्मा गांधी कौन हैं ?'

गप्पू के अन्तस् की घृणा बोल उठी, 'मानुस !'

सब बच्चे खिलखिलाकर हंस पड़े। इन्दिरा का सम्मान तिलमिला उठा। वह झपटकर गप्पू के समीप आई और तड़तड़ाकर गप्पू के मुख पर दो-चार चांटे जमा दिए।

कक्षा में घोर सन्नाटा छा गया। गप्पू के नेत्रों में लबालब आंसू भर आए।

तभी उसे पीछे की पंक्ति में बैठे दो किशोर बालकों की बातचीत सुनाई पड़ी, 'बहुत निर्दय है।'

'गप्पू तो बड़ा अच्छा खोखा है।'

इन्दिरा ने तुरन्त दूसरे लड़के से वही प्रश्न किया। चूँकि गप्पू के गालों पर अंकित इन्दिरा की लाल अंगुलियां सभी को दिखलाई पड़ रही थीं, इसलिए वह लड़का बोला, 'हमारे राष्ट्रपिता।'

तुरन्त उसने गप्पू की ओर देखा। भोला और मासूम चेहरा। फूले हुए लाल गाल और उसपर चमकते हुए अश्रु-बिंदु ! इन्दिरा को लगा कि उसकी भयभीत दृष्टि कह रही है कि जिसने अपने पति को त्याग दिया है, जिसका अपना कोई बच्चा नहीं है, वह भला दूसरों के बच्चों को क्या प्यार करेगी ?'

इन्दिरा वहां से आकर कुर्सी पर सिर पकड़कर बैठ गई। उसने अवश होकर एक बार उन बच्चों को देखा जो कल तक उसे स्नेह और ममता की देवी समझकर उसके आंचल से क्षणभर भी दूर होना नहीं चाहते थे, पर आज वे उसे घृणा की गहरी भावना से देख रहे हैं। कुछ लड़कियों के मन में और आंखों में भय साकार होकर नाच उठा हो, ऐसा उनके जड़ हुए शरीरों से लगता था।

विचारों के संघर्ष में अब उसका अधिक देर तक रुकना असंभव-सा हो गया

था। उसे लगा कि केवल ये बच्चे ही नहीं, अपितु यहां के जड़-चेतन सभी पदार्थ उससे घृणा करते हैं। वह बच्चों को बिना कुछ कहे, कक्षा से बाहर हो गई। उसका बाहर जाना था कि बच्चों ने जोर-जोर से 'हो-हो' करके चिल्लाना शुरू कर दिया। कुछेक कुर्सियों पर नाचने भी लगे। उनकी यह भावना इन्दिरा को इस रूप में समझ में आई कि उसके बाहर निकलते ही उनकी घृणा विजयोल्लास के रूप में प्रकट हो गई है।

वह पराजित व्यक्ति की भांति तड़प उठी। उसी पांव भीतर लौटी। 'चुप रहो, चुप रहो' वह दो बार मार्मिक स्वर में चीखी। बच्चे तुरन्त अपने-अपने स्थान पर व्यवस्थित बैठ गए। इस तरह का गहरा मौन उन सबने धारण किया जैसे उनकी कक्षा में कोई है ही नहीं। वे बहुत ही सरल और सीधे बच्चे हैं।

उसने एक बार भूखी दृष्टि से उन तमाम बच्चों को देखा। कुछ बच्चे अब तक स्लेटें निकाल-निकालकर लिखने भी लग गए थे, कुछ उसे कौतूहल भरी दृष्टि से देख रहे थे और कुछेक की आंखों में वही घृणा की भावना थी जो इन्दिरा को मर्मन्तिक व्यथा पहुंचा रही थी।

वह विक्षुब्ध-सी बाहर निकली। इस बार बच्चे शांत रहे। वह सीधे अपने कमरे में आ गई। आकर उसने इस्तीफा लिखा और मैनेजर साहब को पहुंचा आई।

नरोत्तम इन्दिरा की प्रतीक्षा कर रहा था।

इन्दिरा के आते ही नरोत्तम ने कहा, 'घृणा की भावना सबसे गहरी भावना होती है। इससे मुक्ति सहज रूप से नहीं मिल सकती।'।

'मैं त्याग-पत्र दे आई हूं।' इन्दिरा ने उसकी ओर बिना देखे ही कहा, 'मैं आपसे पहले ही कह चुकी थी कि वातावरण विषाक्त होगा, मुझे पीड़ा देगा, मुझे उलाहना देगा पर आप नहीं माने।'।

नरोत्तम का उन्मन आनन राहु-ग्रस्त सूर्य की भांति निस्तेज हो गया।

'यहां के बड़े-बड़े तो क्या, बच्चे भी मुझसे घृणा करने लगे हैं। वे मुझे 'जू' में से लाई हुई कोई विचित्र चिड़िया समझते हैं। नरोत्तम बाबू, मैं आज ही चली

जाऊंगी। अब मेरा यहां पर एक पल भी ठहरना पीड़ादायक हो रहा है।’

‘जैसी तुम्हारी मर्जी। पर मैंने यहां के लोगों को इतना वाहियात नहीं समझा था कि वे सत्य को भी अस्वीकार करेंगे। जिनके प्रति मेरी गहरी आत्मीयता जीवन में सम्बल के रूप में रही, वे ही व्यक्ति मुझे स्पष्ट शब्दों में यह कहेंगे कि देखिए नरोत्तम बाबू, इस प्रकार की एक मास्टरनी का इन बच्चों के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा ! क्या उनमें भी सहज नारी स्वभाव के प्रतिकूल एक उदंडता एवं उच्छृंखलता नहीं जन्मेगी ? फिर इन बच्चों को भी चैन कहां ? वे दिन भर इस मास्टरनी की चर्चा करते रहते हैं। उन्हें इस नारी के प्रति अपार कौतूहल है कि वह अपने पति को छोड़कर कितनी शांत और आनंदित है।’

नरोत्तम ने एक सांस लेकर कहा, ‘मैंने उन्हें समझाया कि इसमें इन्दिरा देवी का कोई दोष नहीं है। उनके पति ने स्वयं उन्हें छोड़ा है। पर वे कहां मानने-वाले हैं ? कह उठे कि आप व्यर्थ की बकालत कर रहे हैं। एक बेहूदे ने मुझे यहां तक कह दिया कि हम किसी भी शर्त में उसे यहां रखने को तैयार नहीं हैं। हम चाहते हैं कि हमारी बेटियां सावित्री और सीता बनें, न कि तलाक देने वाली पश्चिमी तितलियां। ...और तो और, वह, गुण्डा सालिग है न, उसने कहा कि भला नरोत्तम बाबू उसे क्योंकर हटाएंगे। वे भी रात के अन्धेरे तक वहां रहते हैं न ? अब तुम्हीं बताओ, मैं तुम्हें ऐसी विषम परिस्थिति में यहां रहने के लिए कैसे कह सकता हूं ?’ नरोत्तम ने अपराधी की तरह सिर झुका लिया।

‘मैंने इसलिए आपको पहले ही कहा था कि मुझे जाने दीजिए। आप नहीं माने। आप मुझे एक बदनाम स्त्री के रूप में देखना चाहते थे, सो देख लिया।’

‘आक्षेप स्पष्ट शब्दों में था। नरोत्तम के हृदय पर उससे आघात लगा। वह बोला, ‘यदि सुनंदा का ख्याल...’

‘आप बार-बार सुनंदा का नाम लेकर मुझे पीड़ा क्यों पहुंचा रहे हैं ? समझ में नहीं आता कि आप किस मिट्टी के गढ़े हुए हैं। मुझपर तरह-तरह के आरोप और लांछन लगने पर भी आप मुझे स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहते कि मैं यहां से चली जाऊं। अब भी आप ‘अगर-मगर’, और ‘किंतु-परन्तु’ में लगे हुए हैं। पता नहीं, आपका मेरे यहां रहने में कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होगा ?’ वह नागिन की तरह

भड़क उठी।

‘मैं केवल तुम लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए...।’

बीच में बोल पड़ी इन्दिरा, ‘परमार्थ कर रहे हैं पर मुझे उस परमार्थ की ज़रा भी चाह नहीं जो मुझे असामाजिक अकुलीनता के तीखे तीरों से बेध कर आहत कर दे और बाद में कहे कि ले अब स्वादिष्ट भोजन खा, अब इस प्रतिष्ठा के पद पर आसीन हो।’

‘मैं कभी-कभी यह सोचता हूँ कि आखिर यह रहस्य प्रकट कैसे हो गया?’ अपनी दृष्टि को दूसरी ओर घुमाते हुए उसने कहा।

‘आपने ही कहा होगा।’ वह चीखकर बोली।

‘तुम अपने आपे से बाहर हो रही हो। मेरा इस प्रकटीकरण पर कौन-सा स्वार्थ सिद्ध हो सकता है।’ वह गुस्से में भर उठा।

‘अपने महत्त्व को गुम्फर और अधिक आरोपित करने के लिए तुम मुझे हीन साबित करना चाहते हो?’ उसने जलती आंखों से उसे देखा।

‘तुम बड़ी...’ वह एकदम गुस्से में भरकर चुप हो गया। उसका वदन कांपने लगा।

‘मैं शाम की गाड़ी से जा रही हूँ।’ उसने निर्णीत स्वर में कहा।

‘ठीक है।’ उसने लापरवाही से उत्तर दिया।

नरोत्तम वहां से लौट आया। अपने क्वार्टर में आकर वह उद्विग्न-सा चहल-कदमी करने लगा। एकाएक उसे ‘तृप्ति’ की स्मृति हो आई। वह क्यों बार-बार यह पूछा करती है कि मास्टरनी यहां से कब तक जाएंगी?’

‘तब वह छाया? नदी के किनारे की छाया! ओह! तृप्ति ने नारी की ईर्ष्या से जलकर यह सब अनिष्ट कर दिया है। तृप्ति, तृप्ति, तृप्ति...!’ यह शब्द उसके मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रकट होकर छाने लगा। वह विचित्र अनुभूतियों से सिहरनमय होकर बिस्तरे पर पड़ गया।

पड़ा, सो पड़ा ही रहा।

‘नरोत्तम बाबू!’ बाहर से इन्दिरा की आवाज़ आई।

उसने उठकर द्वार खोला।

इन्दिरा के चेहरे पर आवेशपूर्ण रेखाएं थीं। उसने आज्ञाभरे स्वर में दृढ़ता से कहा, 'मुझे कुछ रुपए चाहिए, बाद में लौटा दूंगी।'

नरोत्तम ने उसकी आज्ञा का पालन किया। उसने कुछ रुपए निकालकर उसके सामने रख दिए। इन्दिरा ने उसमें से कुछ उठाकर कहा, 'पचास ज़े रही हूं।'

'ज़रूरत हो तो और ले लो।'

'बस।' वह शांतिपूर्वक वहां बैठ गई, 'आज ही मैं जा रही हूं।'

'स्थिति ऐसी बदल चुकी है कि अब मैं आग्रह करते हुए भी डर रहा हूं। लेकिन सुनंदा का ख्याल मुझे बार-बार आता है। मैं उसके भोले मुख को कदापि नहीं भूल सकता। न मालूम उसे याद करके मैं क्यों कठुना से आप्लावित हो जाता हूं।'

'वह कठुना की पात्रा ही है। अभारतों ने उसके मुख के ओज को छीनकर उस पर कठुना के अमिट भाव अंकित कर दिए हैं। फिर एक गरीब की बिटिया पर दया के सिवाय और प्रकट भी क्या किया जा सकता है? कोई उसका सम्मान थोड़े ही करेगा?'

'नहीं ऐसी बात नहीं है। स्नेह में सदा कठुना का समावेश रहता है और अपने से छोटे सदा स्नेह के भाजन ही होते हैं।'

'अच्छा, अब मैं चली।' उसने बात के सिलसिले को तोड़ दिया।

'इन्दिरा, मुझे पत्र लिखा करोगी?'

'क्यों नहीं, यदि आपने भी मुझे इस प्रकार गलत नहीं समझा है, तो!'

'कैसे?'

'कि मैंने अपने पति के साथ कठोरता का व्यवहार किया।'

'नहीं, मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझूंगा। फिर भी तुम्हें यदि सुबोध मिल जाए तो उसे अपनाने का...।'

उसने घृणा से थूक दिया, 'मैं उस नाटकीय मनुष्य का स्पर्श भी पसन्द नहीं करती और तुम स्वयं कितने निर्दयी हो कि बार-बार उस प्राणी का नाम लेते हो जिसके कारण मेरा यह महान जीवन कंटकमय हो गया है। मेरी सभी अभिलाषाओं को जिसने प्रतारणाओं की प्राचीर में अवरोध कर दिया है, मैं उसके साथ कदापि समझौता नहीं कर सकती। यदि अब की बार तुमने उसकी चर्चा चलाई

तो मेरा तुमसे भी सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा। सुबोध के ब्राम के स्मरण मात्र से मेरा अंग-अंग जल उठता है। ओह, कितना निर्दय मनुष्य है ! अच्छा नमस्कार ! वह रुपया संभालती हुई बाहर चली गई।

नरोत्तम खड़ा-खड़ा सोचता रहा। आज उसके समीप के बन्धन टूट रहे हैं पर मन के बन्धन कैसे टूटेंगे ? क्या वह इन्हें तोड़ने में सफल हो सकेगा ? आज इन्दिरा जा रही है, उससे दूर न जाने वह कितनी दूर जाएगी ? कदाचित्त वह कहीं किसी ऐसी अज्ञात जगह चली जाएगी जहां उसके मन को सम्पूर्ण रूप से तृप्ति मिले पर जहां दूसरा न पहुंच सके। सुबोध माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्ब सभी को वह छोड़ सकती है ? कितनी घातक और भयानक प्रवृत्ति है उसकी ! नारी की कोमलता और गम्भीरता उसमें किंचितमात्र भी नहीं। मन के पदों एकाएक उड़ चले। वह सोच बैठा, यह राजिया की भाभी से क्या कम है ? उसने अपने देवर को मरवा दिया और इसने अपने पति को मृतक समान कर दिया। पर एक दिन में उस घटना से आतंकित होकर घर छोड़ आया था। सभी औरतों के बारे में मेरे मन में अजीब ख्याल उत्पन्न हो गए थे पर आज इस इन्दिरा से मेरे मन के बन्धन अटूटता की ओर क्यों बढ़ रहे हैं ? कहीं मेरे अवचेतन मानस में प्यार... वह इस तरह चौंका जैसे उसने बहुत बड़ी गलती कर दी हो। उसने अपना सिर पकड़ लिया। वह इन्दिरा जैसी स्त्री से कभी भी प्यार नहीं कर सकता। कभी प्यार नहीं कर सकता। क्योंकि यह दुष्ट और अस्थिर चित्त की स्त्री कभी भी किसीको सुख नहीं दे सकती। फिर वह उससे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ क्यों नहीं देता। कहीं भावुकता के बहाव में उसने उससे कुछ आंतरिक या बाह्य अनुबन्ध करा लिए तो... ? मनुष्य की जघन्यता जाग रही है। तब वह भय के मारे उसे नहीं भी न कर सकेगा।—उसने एक पल रुककर दृढ़ता से अपने आपसे कहा, 'अब भय कैसा, उस समय मुझे सांसारिक ज्ञान बहुत कम था, इसलिए मैं घर से भाग आया, वर्ना आज मैं राजिया की भाभी को पुलिस के हवाले नहीं करवा देता ?... तब बेचारी तारिणी ? धत् यह क्यों मुझे आज एकाएक याद हो आई ? उसने अपने आपको डांटा। न सूरत का पता, न स्वभाव की पहचान, न मालूम कैसी होगी ? पर है ज़रूर पतिव्रता, अभी से अखंड कौमार्य व्रत धारण कर रखा है उसने। कहती है—यदि

आप मुझसे विवाह नहीं करेंगे तो आजन्म कुमारी रहूंगी। वन्डर ! कैसी पति-व्रता है ? कलिकाल में सत्ययुग की अधिष्ठात्री ! मन से बर लिया सो बर लिया ।— इसी उधेड़वुन के आर्वतन और प्रत्यावर्तन के हिचकोलों में नरोत्तम भूलता रहा ।

एकाएक तृप्ति ने उसके ध्यान को भंग कर दिया । आज वह नई साड़ी और छितराये कुन्तलों में ऐसी लग रही थी जैसे उसके समक्ष साक्षात् वीणापाणि-सरस्वती हो । वह उसे श्रद्धा से देखता रहा । तृप्ति उसे देखती रही ।

‘नरोत्तम दा ।’

नरोत्तम उसे एकटक मंत्रमुग्ध-सा देखता रहा । उसकी इच्छा हुई कि एक बार वह उसके नादान मुख पर शत-शत पवित्र चुम्बनों का वर्षण कर दे पर उसके हृदय की कायरता ने उसे वहीं रोक दिया । वह उसका एक भी पायन स्पर्श नहीं कर सका ।

‘नरोत्तम दा, तुम्हें इन्दिरा दीदी बुला रही है ।’ तृप्ति बोली ।

‘तुम वहां क्यों गई थीं ?’

‘उनका सामान बंधवाने ।’

‘क्यों ? क्या तुम्हें उनके जाने का दुख नहीं ?’

उसने गर्दन हिलाकर बताया कि नहीं और वह ढिठाई से नरोत्तम को चिढ़ाने के लिहाज से बोली, ‘शत्रु की भी सहायता करना क्या मनुष्य का धर्म नहीं है ?’

‘तुम बड़ी दृष्ट हो ।’ वह चिढ़कर बोला ।

‘नरोत्तम दा, तड़ातड़ी करो ना ?’

‘अच्छा चलो ।’ कहकर नरोत्तम रुक गया, ‘मैं नहीं चलता, कह देना कि मेरी तबीयत एकाएक खराब हो गई ।’

‘नहीं दादा, देखो न, मैं भी चल रही हूं, जाते हुए की आत्मा को कभी भी कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। यह भी मनुष्य-धर्म है ।’

‘अच्छा ।’ उसने क्रोध से तृप्ति को देखा और चल पड़ा ।

इन्दिरा ने अन्तिम बार इतना ही कहा, ‘यह तृप्ति बहुत चतुर और चंचल है। इसकी देख-भाल करना, यह कीचड़ का फूल है ।’ उसकी आंखें भर आईं, पर तृप्ति जड़ की तरह वहीं खड़ी रही । एक बार उसने इन्दिरा की चरण धूलि लेनी चाही फिर न जाने क्यों रुक गई । उसने केवल नमस्कार में हाथ जोड़ दिए ।

‘‘रवीन्द्र-संगीत’ से मुखरित मधुर प्रभात अब मैं यहां नहीं देख सकूंगा।’ नरोत्तम ने वापस आते ही सोचा। उसके पीछे तृप्ति चल रही थी, विलकुल मौन। तृप्ति ने अपनी आकृति को खूब गम्भीर बना लिया था।

‘देखो न नरोत्तम दा, वे लोग कितने अच्छे लग रहे हैं। ऐसा लगता है कि जैसे उन्होंने नूतन विवाह किया है।’

नरोत्तम कुछ नहीं बोला। उसने उस जोड़े को बड़े ध्यान से देखा—देखा, पहले नूतन वधू को और फिर तृप्ति को। वह आश्चर्य चकित हो गया कि तृप्ति ने ठीक उस वधू की तरह अपनी साड़ी को बना रखा है। उसकी चाल में उसी वधू की तरह धीमापन आ गया है और उसके गिरते-उठते कदम फूल की तरह निस्पंद हो गए हैं।

उसने हंसकर पूछा, ‘तृप्ति तू पागल तो नहीं है?’

‘क्यों?’ उसने प्यार से देखा।

प्रश्न जटिल था। क्यों! वह क्या उत्तर देता? वह कैसे पागल हो गई है? उसने इतना ही पूछा कि वर-वधू...! उसे क्या अधिकार है कि वह उसे कहे कि तू मुझे प्यार करती है।

फिर भी वह बोला, ‘पागल इसलिए कि तुममें वर-वधू को देखकर जिज्ञासा क्यों उत्पन्न हुई?’

‘मुझे अच्छे लगते हैं।’ उसने ललाट पर सलवटे डालकर कहा।

‘तू जाकर इनसे इनकी एक तस्वीर मांगकर ले आ और फिर नित्य सवेरे-सवेरे इनके दर्शन करके इनकी पूजा करना।’

तृप्ति चुप हो गई।

कुछ देर तक वे दोनों चुपचाप चलते रहे।

‘नरोत्तम दा, आपको इन्दिरा दीदी के जाने का दुख है?’ तृप्ति ने एकाएक पूछा।

‘हां।’

‘क्यों!’

‘वह बच्चों को सुधार देती ।’

‘छिः छिः छिः ! वह बच्चों को खाक सुधार देती ? मैं कहती हूँ कि पति को छोड़ने वाली कुलक्षणा स्त्री सब छोकरियों को तलाक देना सिखला देती ।’ उसके स्वर में घृणा थी ।

‘तू उससे बहुत जलती है ।’

‘हां, नहीं-नहीं, मैं भला उससे क्यों जलती ?’ वह संभलकर बोली, ‘वह सच-मुच दया की पात्रा थी, आपको उसे रोकना चाहिए था ।’

‘ठीक है ।’ वह बिगड़कर बोला, ‘मैं मुनीम जी के घर खाना खाने जाऊंगा ।’

तृप्ति वहां से उछलती-कूदती भाग खड़ी हुई ।

नरोत्तम के मन में सोया हुआ प्यार तृप्ति और इन्दिरा के चारों ओर चक्कर लगाने लगा ।

क्वार्टर के सामने आते ही उसने देखा कि तृप्ति ने अपने घर के आगे कूड़े का ढेर कर रखा है ।

उसने रोहिणी को पुकारा ।

रोहिणी घूँघट सरकाती हुई बाहर आई, ‘क्या बात है नरोत्तम दा, इन्दिरा दीदी को व्यर्थ ही जाना पड़ा । यहां के लोग बड़े बोके (मूर्ख) हैं ।’

‘जो होना था, वह हो गया ।’ उसने बात को वहीं खत्म करने के ख्याल से कहा, ‘बदमास तृप्ति कहां है ?’

‘भीतर ।’

‘पुकारो तो ?’

‘तृप्ति...! ओ तृप्ति !’

‘क्या है भाभी ?’ तृप्ति ने आकर पूछा ।

‘यह मैं बताता हूँ, यह कूड़ा यहां पर क्यों फेंका ? तुम अपनी शरारत से बाज नहीं आओगी ?’

‘इसमें शरारत की क्या बात है, ऐसे सफाई-पसंद हैं तो एक ड्रम यहां भी रखवा दीजिए । मुझसे वहां नहीं ले जाया जाता ।’

‘क्यों, तू कौन-सी राजा की पुत्री है?’

‘मैं?’ वह हंस पड़ी, ‘मैं सम्राट-सुपुत्री हूँ।’

‘बड़ी ढीठ है।’ रोहिणी ने मुस्कराकर कहा।

‘तुम तो ऐसा ही कहोगी!’

‘क्यों?’

‘तुम्हारे दादा हैं न? तुम्हें साड़ी लाकर देते हैं न?’

बीच में बोल पड़ा नरोत्तम, ‘तुममें जलन बहुत है तृप्ति।’

‘मैं बताऊँ आपको, इन्दिरा दीदी के जाने की खुशी सबसे अधिक इसे ही है। पता नहीं क्यों?’ रोहिणी कह उठी।

नरोत्तम ने इस क्यों का उत्तर जानते हुए भी नहीं दिया। उसे एकाएक तृप्ति पर गुस्सा आ गया। लेकिन उसे गुस्से को पी जाना पड़ा।

वह हठात् वहाँ से चल पड़ा, यह कहते हुए, ‘तृप्ति के कारण उस बेचारी को यहाँ से जाना पड़ा।’

रोहिणी यह सुनकर स्तब्ध रह गई।

दूसरे दिन एक युवक तृप्ति को देखने आया। तृप्ति उसे पसंद आ गई। उसने तृप्ति को अच्छी उपमाओं से विभूषित भी किया। लेकिन दहेज को लेकर बात आगे नहीं बढ़ी।

तृप्ति को इससे रंज हुआ।

वह नरोत्तम से बोली, ‘जब वह चला गया तब बाबा रो पड़े थे।’

‘जवान बेटी जब घर में होती है तो हर एक पिता की ऐसी ही हालत हो जाती है।’ नरोत्तम ने दार्शनिक लहजे में कहा।

‘नरोत्तम दा, तुमसे एक बात पूछूँ?’

‘हां!’

‘तुम्हारा खाना मैं बना दिया करूँ?’

‘क्यों?’

‘यों ही?’

‘नहीं, भाई नहीं ! मुझे यहां अब कुछ दिन ही रहना है ।’

तृप्ति चुप हो गई । एकाएक वह विगलित स्वर में फिर बोली, ‘नरोत्तम दा, तुमने विवाह कर लिया ?’

‘नहीं ।’

‘फिर करते क्यों नहीं ?’

‘योंही ।’

‘क्या तुम भी दहेज लोगे ?’

‘नहीं ।’

‘तुम बड़े अच्छे हो, और तुम्हारे यहां की लड़कियां भी बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं कि उनका विवाह तुरन्त हो जाता है ।’ उसका स्वर आर्द्र था ।

फिर वह उदास हो गई ।

नरोत्तम ने कहा, ‘एक बात पूछूं ।’

तृप्ति ने अपनी दृष्टि उसपर जमा दी ।

‘इन्दिरा के बारे में तुमने ऐसी चर्चा क्यों फैलाई ?’

‘सच कहूं नरोत्तम दा, वह मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती थी । मुझे लगता था कि वह मुझसे और हमारे परिवार से हमारे नरोत्तम दा को छीन रही है । आप भी मुबह-शाम उसके पास ही रहते थे । इसलिए मैंने काली मां से और इमली के गाछ पर बसने वाले देवता से प्रार्थना की थी कि उसे यहां से जल्दी से खाना कर दे । उन्होंने उसे भगाने में मेरा भी योग चाहा । मैंने यह बात सबको कह दी ।’ उसका सिर अपराधी की भांति झुका हुआ था ।

‘किसीका अपकार नहीं करना चाहिए तृप्ति ।’

‘मैं कहां करती हूं ? मैं हर एक को पूजना चाहती हूं । पर दुर्भाग्य मेरा भी साथ नहीं छोड़ता ।’ उसने स्वर को दबाकर कहा ।

‘अब तुम जाओ ।’

‘मैं थोड़ी देर और बठूंगी ।’

‘क्यों ?’

तृप्ति ने प्यार से भीगी हुई दृष्टि नरोत्तम पर डाली । नरोत्तम को उस दृष्टि

में अमृत की वे बूंदें दृष्टिगोचर हुईं जिनमें यौवन, मधुर स्वप्न और अनंत अभिलाषाएं कुलाचें भर रहे हों... और वे जो बूंदें युग-युगान्तर नारी के नेत्रों से ढलकती रहेंगी, ढलकती रहेंगी।

१७

दो मास के बाद।

मन के बन्धन का तन से क्या वास्ता ?

इन्दिरा के प्रति नरोत्तम का जिज्ञासाभरा मन तड़प उठा। तृप्ति की भावनाओं में जो मौन प्रेम-निमंत्रण था, वह नरोत्तम के मन में बार-बार कृष्णा का उद्रेक बनकर प्रस्फुटित होता था। कभी-कभी वह सोचता जरूर था कि तृप्ति उसे प्यार करती है, उसके परिचितों में सबसे निर्दोष युवती भी वही है पर उसका बाप...! तब वह अपने आपपर झुंझला उठता था कि उसे प्रत्येक सम्बन्ध को इसी दृष्टिकोण से नहीं सोचना चाहिए।

इधर तृप्ति उसका घर साफ करने लगी थी। उसकी प्रत्येक गड़बड़ी को मिटा रही थी। उसके सुख को अपना सुख और उसके दुख को अपना दुख मान रही थी पर यह सब मौन बनकर। जहांतक बातचीत का सिलसिला है वही नपी-तुली बातें! आप चाय पीएंगे? आपको वह चीज ला दूं? नरोत्तम दा, आप विवाह क्यों नहीं करते? कोई अच्छी लड़की ढूंढिए न, ...में बताऊं नरोत्तम दा, आप कृष्णा दीदी से ब्याह कर लीजिए। बेचारी ३५ वर्ष की हो रही है, कोई भी उससे शादी नहीं करता। वह आपको खूब प्यार करेगी।

उपहास, हंसी और खिलखिलाहट।

इस बीच नरोत्तम दो बार कलकत्ता हो आया था।

सुनंदा की शादी की बातचीत आगे नहीं बढ़ी। चक्रवर्ती बड़ा परेशान था। कुछ दिनों बाद ही इन्दिरा रोमी के साथ रहने लगी थी। उसने रोमी को राम बना लिया था। और बेचारा रोमी?

इन्दिरा ने नरोत्तम को बताया था—जब मैं पहली बार उस दिन मनुष्य से

मिली तब वह मलेरिया का रोगी था। वह इतना थक गया था कि उसका आकर्षक तन केवल कंकाल मात्र रह गया था। उसके गालों की हड्डियां उभर आई थीं। उसके नेत्र गहरे गड्ढे मात्र बन गए थे। आंखों में तृष्णा की अजीब ललक थी। मनुष्य की इस दशा पर इन्दिरा का हृदय पसीज गया।—

मैंने रुद्ध कंठ से कहा, 'रोमी, तुम्हें क्या हो गया ?'

रोमी कुछ देर तक मेरे हाथ को अपने हाथ में लेकर जड़-सा उस अनंत अम्वर की ओर देखता रहा, जहां एक अदृश्य शक्ति वास करती है। तब वह धीरे-धीरे बोला, 'मैं जानता हूं कि ईसा प्रभु पतित से पतित प्राणी को अपनी शरण में ले लेता है पर मुझे नहीं लेगा। वह मुझे अपने बुरे कर्मों का दण्ड दे रहा है। देखो न इन्दिरा, इतनी दीन अवस्था में कौन प्राणी जीने की लालसा रखेगा ? इस पर कभी-कभी मुझपर कोई जबरन दया कर देता है तो वह दया और पीड़ाजनक हो जाती है।... एक कुत्ता है, बीमार है, दर्द के मारे चिल्ला रहा है, एक आदमी सोचता है कि निरीह जीव तड़प रहा है, इसका उपचार कर दूं और वह इच्छा रहित होकर भी उसकी सेवा करता है। लेकिन उस सेवा का क्या अर्थ हो सकता है। सिर्फ इतना ही कि बेचारा तड़प रहा है। इस बीच मुझे एक पादरी मिला। उसने भी मेरे स्वास्थ्य की कामना प्रभु से की थी, पर इन सभी कामों में मुझे आदमी की आत्मा का सत्य नहीं मिला। वह एक विवशताजनित कर्तव्य था जिसे वह पादरी पूरा करता था और हम सब करते रहते हैं। कहां आदमी को करुणा अहम् से रहित करके सर्वोपरि बनाती थी और कहां कर्तव्य बेचारे को विवश कर कुछ कराता है।'

इन्दिरा ने उसे बताया, 'मुझे रोमी ने दुख में बड़ा सम्बल दिया था। मेरे दुख को उसने अपना दुख समझा था। मुझे लगा कि इस व्यक्ति को किसीकी सच्ची सहानुभूति चाहिए और मैंने उसे दी। उपकार का बदला प्रत्युपकार में हो जाएगा। देखो न, वह मेरी सहानुभूति से राम की भांति तेजस्वी हो गया है।'

'और सुनंदा ?' नरोत्तम ने प्रश्न किया था।

'उसके लिए मैं प्राणप्रण से प्रयत्न करूंगी। सम्पत्ति एकत्र करके उसका विवाह करवाऊंगी।'

'पर इससे तुम्हारी सामाजिक प्रतिष्ठा पर आघात लगेगा।'

‘यह समाज सुख को सहन नहीं कर सकता। नारी यहां दीपक की बाती है। जले तो लोग जब चाहे स्नेह से वंचित कर दें और न जले तो निकालकर फेंक दें। मैंने सोचा था कि अब मैं सात्त्विक जीवन व्यतीत करूंगी पर इस समाज ने कहने करने दिया। तब मैं उस व्यक्ति की चाह पूर्ण क्यों न करूं, जो मेरे बिना अपने आपको अपूर्ण समझता है।’

विचारों के मारे वह उद्वेलित हो गया। उसके ललाट पर कई स्वेद कण उभर आए।

‘जीवन बड़ा विचित्र है। कभी-कभी यहां का सत्य कल्पना से भी आगे बढ़ जाता है। मानव सहजता से उसपर विश्वास नहीं करता।’ नरोत्तम ने अपने आप से कहा।

तभी उसने एकदम निश्चय किया कि वह कलकत्ता जाएगा। इन्दिरा से मिले हुए उसे काफी दिन हो गए हैं। अभी दस दिन पूर्व उसका पत्र आया था कि रोगी अब पूर्ण स्वस्थ है। अब उसका भविष्य स्वर्णिम किरणों की तरह मनोहर और निरभ्र नभ की तरह दिन-प्रति दिन सुषमामय होगा।

मनुष्य कितना स्वप्नशील होता है। आकाश-कुसुम की कामना की स्वप्निल मादकता में वह जीवन के शीर्ष पंखों को अनंत की ओर उड़ाता ही चलता है।

उड़े और खूब उड़े। उड़ना ही उसकी सार्थकता है।

इन्दिरा इस उड़ने की क्रिया पर ही विश्वास रखती है।

पर नरोत्तम जैसे-जैसे इन्दिरा से विमुख-विलग होने की कोशिश करता जा रहा था, वैसे-वैसे वह उसके बन्धन में और बंध रहा था। आदमी अपनी मानसिक क्रियाओं का कितना दास है ! अन्तस्तल के गुह्य प्रदेश में प्रथम पाने वाली इच्छाएं धीरे-धीरे मनुष्य की निर्देशिका बन जाती हैं। नरोत्तम का इधर इन्दिरा के प्रति कोई विशेष आकर्षण नहीं था। लेकिन उसका रोमी से सम्बन्ध हो जाना नरोत्तम के लिए एक पराजयजनित अटूट घृणित सम्बन्ध बन गया था। नरोत्तम बार-बार इन्दिरा से मिलने के लिए विवश हो जाता था। अपने मन की कोई योजना, कोई प्रसन्नता और कोई मन्तव्य उसे इन्दिरा को सुनाए बिना अपूर्ण और निरुद्देश्य लगता था। चाहे वे इन्दिरा को दुख ही क्यों न पहुंचाते हों ?

अन्त में वह तीसरी बार कलकत्ता आया।

जब वह आ रहा था तब तृप्ति ने बड़ी चंचलता से उसे कहा था, 'नरोत्तम दा, आप वापस आएन, तब मेरे लिए एक साड़ी लाना, ठीक वैसी ही जैसी उस दिन वह नूतन वधू पहने हुए थी।'।

'और पैसे?' उसने उपहास से पूछा।

'ये रहे।' उसने अपनी मुट्ठी के लगभग दस रुपए उसके सामने फैला दिए।

नरोत्तम ने कोमल स्वर में कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हारे लिए साड़ी ले आऊंगा, इन पैसें को संभाल कर रखना, तुम्हारे विवाह में काम आएंगे।'।

वह शर्मा गई। कुछ बोली नहीं। पर उसकी पलकों की ओट में जो अदम्य अतृप्ति करुणा के रूप में भांक रही थी, उसे नरोत्तम पल भर के लिए भी नहीं भूल सका।

कलकत्ता आकर वह सीधा वेल्लेजली स्क्वायर की ओर रवाना हुआ। इन्दिरा वहीं रहती थी।

जब वह अटैची लेकर टैक्सी से वहां उतरा तब रोमी हाथ में एक थैला लिए हुए बाहर जा रहा था। बीमारी के कारण वह काफी दुर्बल हो गया था। उसके वस्त्र भी अत्यन्त साधारण थे। बिना क्रीज की खाकी पैंट और सफेद कमीज, जो गर्दन की कॉलर से मैला हो गया था। जूतों की हालत से भली भांति जाना जा सकता था कि यदि बरसात हो जाए तो पानी उसके तलुवों के बांध को तोड़कर अवश्य भीतर आ जाए। उसने तुरन्त उड़ती दृष्टि से उसे देखा। मन ही मन कह उठा, हमारा भविष्य दिन-प्रति दिन स्वर्णिम और सुषमामय होगा। रोमी ने उत्साह से कहा, 'हलो मिस्टर नरोत्तम?'

'हलो, हम आए और आप जा रहे हैं, ऐसा भी क्या है?'

'बिजनेस इज बिजनेस।' उसने अपने थैले की ओर संकेत किया, 'मैं बारह-एक बजे तक लौट आऊंगा।'।

'अच्छा, गुडलक!'

'थैंक्यू।' रोमी चला गया।

इन्दिरा ने उसकी आवाज को पहचान लिया था । अगवानी के लिए नीचे आई । उसे देखकर नरोत्तम को धक्का-सा लगा । बदली से घिरा हुआ सूर्य जिस तरह निस्तेज हो जाता है, उसी तरह इन्दिरा का मुख इधर मलीन हो गया था । फिर भी वह उत्साह से बोली, 'कब आए नरोत्तम बाबू ?'

'अभी ही ।'

'आइए ।'

वे दोनों ऊपर चले आए । नरोत्तम चाय पीकर दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त होने चला गया । वहां से आकर वह कुछ देर तक मौन ही रहा क्योंकि इन्दिरा ने किसी प्रकार की चर्चा नहीं चलाई । अंत में नरोत्तम को ही मौन भंग करना पड़ा, 'रोमी, आजकल बिजनेस में बड़ा व्यस्त है ।'

'हां, जीवन-निर्वाह के लिए कुछ न कुछ करना ही पड़ता है । हम लोग निठल्ले बैठ भी कैसे सकते हैं ?'

'तुमने भी कहीं सविस ज्वाइन कर ली क्या ?'

'नहीं, कई जगह अप्लाई कर रखी है ।'

'वंसे रोमी ने बिजनेस किस वस्तु का किया है ?'

'स्याही का । उसने एक ऐसी स्याही का अन्वेषण किया है जिसे आप किसी भी तरह मिटा नहीं सकते और न उसपर पानी का कोई प्रभाव ही होता है ।'

'तब तो खूब चलता होगा तुम्हारा बिजनेस ?'

'कहां ?'

'क्यों ?'

'बेचारा रोमी घर-घर घूमकर अपनी स्याही का प्रचार करता है । शाम तक तीन-चार रुपए कमा लाता है ।' वह स्नेहसिक्त स्वर में बोली, 'यदि इस बार में नहीं होती तो वह इस असार संसार से चला जाता ।'

नरोत्तम उसे कटूक्ति कहना नहीं चाहता था पर उससे कहे बिना रहा भी नहीं गया । मिलन की तीव्र उत्कंठा के साथ-साथ इन्दिरा को कटु सत्य द्वारा पीड़ा पहुंचाने में उसे बड़ा आनंद आता था । वह उसी उदासी के साथ बोल पड़ा, 'एक की प्रीति दूसरे के लिए घातक हो गई । बेचारी सुनंदा...!'

‘देखो नरोत्तम, तुम यदि मुझे जलाने के उद्देश्य से यहां आते हो, तब यहां मत आया करो।’ उसने कठोरता से कहा, ‘मुझे लोग चरित्रहीन कहें या कुलटा, मुझे किसीकी भी चिंता नहीं। मैं यह जानती हूं कि रोमी के साथ मुझे सुख है और उसे भी। फिर कष्ट किसे नहीं आते? इस संसार में चन्द्र की शुभ्र स्निग्ध ज्योत्स्ना के साथ सूरज की तृप्त आग्नेय किरणें भी तो हैं।’

फिर वह उपेक्षित स्वर में बोली, ‘कौन किसीके दुख में संगी बनकर आता है? हर मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत हो सम्बन्धों को चिरस्थायी बनाए हुए है। मेरी मां है, मेरे बाबा हैं, मेरी सुनंदा है, सभी मुझसे घृणा करने लगे हैं। तुम यह सुनकर आश्चर्य करोगे कि सुनंदा ने मुझे कितनी कड़वी बातें कहीं? वह ना-समझ लड़की जिसे हम नादान और अबोध समझे हुए थे, फूट-फूकर रो पड़ी और अपने हाथों में मुखको छुपाकर रोती ही बोली—दीदी, तुमने यह क्या किया? एक विजातीय से नाता जोड़कर तुमने हमारे कुटुम्ब पर कलंक लगा दिया और गरिमा को एकदम कलुषित कर दिया। अब हमें कौन आदर की दृष्टि से देखेगा? अच्छा होता कि अपने इस कुकर्म के पहले ही तू मर जाती!—नरोत्तम, मरण की दुष्कामना सभी करते हैं। जिस पति को मैंने ईश्वर की भांति मानकर अपने नारीत्व का अर्घ्य अर्पण किया था, उसी पति को कल तक यही लोग बड़ा दुष्ट और आवारा कहते थे, और आज मुझे नीच कहते हैं। अब उनमें नया विश्वास जन्मा है कि मैंने ही उसे छोड़ा है; यदि ऐसी बात नहीं थी तो मैं परित्यक्ता का सादा और सात्त्विक जीवन यापन करके एक सुन्दर आदर्श की स्थापना करती।—क्या अर्थहीन अहम् की अग्नि में जलकर आत्मा के समस्त रसों का हनन ही मेरी जैसी युवती का जीवन है? बोलो, तुम चुप क्यों हो?’

नरोत्तम ने कहा, ‘शायद तुम नहीं भूली हो। मैंने एक बार कहा भी था कि इस प्रकार का कोई भी कदम सामाजिक परिधि के बाहर नहीं होना चाहिए। तुम किसी बंगाली से ही नाता जोड़ लेती तब भी अपनों की घृणा कम ह तुमने एक ईसाई से सम्बन्ध कर लिया, इसलिए तुम क्षम्य भी नहीं हो। पुनर्भू की प्रतिष्ठा हमारे समाज में कहां?’

‘समाज और हृदय, प्रेम और धर्म, इनके बीच कभी सभभौता नहीं हुआ है।

हृदय और प्रेम का संसार निर्द्वन्द्व और निश्शंक है। समाज और धर्म जहां मानवीय बन्धनों को खंडित करते हैं, वहां हृदय और प्रेम उन्हें एक ऐसी भावना में बांध देते हैं, जो चिर है, अटूट है। तुमने मुझे पुनर्भू कहा, कैसे कहा ? तुम कैसे जान गए कि मैंने सिविल मैरिज कर ली है ?'

‘विवाह तुमने कब किया, यह मुझे नहीं मालूम पर इस तरह रात-दिन का साथ-साथ रहना, खाना और सुख-दुख में हिस्सा बंटाने का तात्पर्य यही हो सकता है कि तुम इसकी वधू हो या भविष्य में होगी।’

वह निश्चयात्मक स्वर में बोली, ‘मैंने उससे विवाह कर भी लिया है। आज से एक मास पहले की बात है। रोमी पूर्णरूप से स्वस्थ नहीं हुआ था। मैं दोपहर को कभी-कभी बाहर चली जाती थी। एक दिन आकर देखती हूं कि रोमी बिस्तरे पर आँधा लेटा हुआ सिसक रहा है। मैं भौंचक्की-सी उसे देखती रही। मुझे एकदम आशंका हुई कि कहीं इसके नया रोग तो खड़ा नहीं हो गया है, पर ईश्वर की कृपा समझो, ऐसी कोई बात नहीं थी। मैंने उसे कई बार पूछा पर वह निरुत्तर रहा। वह अपनी अस्थिरता और अशांत चित्त के कारण उन्मत्त-सा हो रहा था। लगता था, वह किसी आन्तरिक व्यथा से छलनी-सा हो रहा है। मुझे उसका वह रूप नहीं देखा गया। मैंने कोमलता से उसके सिर को सहलाया। प्रथम बार वह मुझसे भयभीत शिशु की भांति निश्छलता से लिपटने का प्रयास करने लगा जैसे कोई उसे मुझसे विलग करना चाहता हो। वह मेरे चरणों पर लोटकर भरीए स्वर में बोला, ‘इन्दिरा, इन्दिरा, मुझे इस भय से मुक्त करो कि तुम मुझे छोड़कर नहीं जाओगी।’

‘मैंने उसे प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। उसके निर्दोष मुखपर कितना सारल्य था ! मैंने उसे वात्सल्य की भावना से पुचकारा। वह पुनः उत्तेजित हो गया। आकुलता से बोला, ‘इन्दिरा, मैं तुम्हें फूलों की शय्या पर सुलाऊंगा, तुम्हारे लिए इस संसार की सारी निधियां इकट्ठी कर दूंगा पर तुम मुझे छोड़कर कहीं दूर मत चली जाना। मैं तुम्हारे बिना पंखहीन पंखी की भांति तड़प-तड़पकर मर जाऊंगा। तुम यह भली भांति जानती हो, फूल का सौन्दर्य उसका सौरभ है; तारों का रूप उनका भ्रिल-मिलाना है, बिजली का महत्त्व उसका दमकना है, इनके बिना ये सारहीन हैं और मैं

तुम्हारे बिना आत्महीन हूँ। इसलिए मुझे वचन दो कि तुम मुझ छोड़कर नहीं जाओगी।' उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

'मैंने सूखी मंद मुस्कान से कहा, 'जहाँ अग्नि का पवित्र अनुष्ठान श्रेयहीन हो जाता है, वहाँ वचन अपना क्या मूल्य रखेंगे? हृदय का मिलन बाह्य रूढ़ियों की चरमराती परम्पराओं का विश्वास नहीं करते। क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं?' वह चुप हो गया। मैं हंसकर बोली, 'तुम ऐसे अविश्वसनीय विचार अपने मन में क्यों ले आते हो?'

'वह अस्पष्टता से बोला, 'अभाव मनुष्य को सब कुछ करा देते हैं।'

'यह रोमी का उत्तर था पर मुझे इस उत्तर से परितोष कहाँ? मैं समझ गई कि अतल गहराई में निहित उसका यह भय सही था। सुबोध को मैंने स्वीकार नहीं किया, क्या यह मेरे मनोभावों का प्रमाण नहीं कि मैं कल किसी वस्तु को लेकर इससे भी विलग हो सकती हूँ? अतः मैंने उसे भय-मुक्त करने के लिए विवाह कर लिया और मैं पुनर्भू हो गई। विवाह करने बाद मैंने उससे एक बात कही, 'रोमी, विवाह तुम्हारे आत्मसंतोष के लिए है, तुम यह समझो कि मैंने इन्दिरा को एक सामाजिक नैतिक बंधन से बांध रखा है, लेकिन मेरे लिए इन सबका कोई महत्व नहीं है। सुबोध को मैंने इसलिए छोड़ा कि उसने मेरे अन्तर्गतल के विश्वास को खंडित कर दिया। विश्वासघात मेरे लिए असह्य है। तुम इस बात को स्मरण रखना।' रोमी के नेत्रों में अश्रु भर आए।

'मतलब यह है कि अब तुम्हारा लौट आना असंभव है!' नरोत्तम ने एक बुजुर्ग की तरह पूछा।

'हां, मां और बाबा स्नेह करेंगे तो उत्तम है, अन्यथा मैं रोमी के साथ शेष जीवन गुजार दूंगी! मेरा ऐसा विश्वास है कि तरुण होने पर एक युवती के लिए पति नामक पुरुष अधिक उपादेय सिद्ध हो सकता है।'

'अब भी तुम्हें सुबोध की याद आती है?' नरोत्तम ने नया प्रश्न किया।

'तुम तो मुझसे ऐसे प्रश्न करने लगे हो जैसे कोई इन्टरव्यू लेने आए हो पर मैं तुम्हें सच ही बताऊंगी कि मैं उसे कभी भी याद नहीं करती, मुझे उससे सख्त घृणा है।' फिर रोमी की दृष्टि में ममत्व की जो अजस्र पावन धारा है, उसके

समक्ष संसार का प्रत्येक रूढ़िगत बन्धन टूटकर अस्तित्वहीन हो सकता है।' उसके स्वर में दृढ़ता स्पष्ट झलक रही थी।

'संध्या का भोजन तुम्हारा और रोमी का मेरे साथ रहा।' नरोत्तम उठ गया, 'न मालूम मुझे तुम्हारे यह सब कार्य आन्तरिक रूप से अच्छे क्यों नहीं लगते? हृदय में तुम्हारे प्रति घृणा का कुहासा-सा छाया रहता है कि तुम अच्छी होते हुए भी अच्छी नहीं हो। एक अजीब-से चरित्र का सम्मिश्रण है तुममें।'।

वह तपाक से बोली, 'उसका दावा मैं भी नहीं करती। मैं कहां कहती हूं कि मैं सती-साध्वी हूं। रही तुम्हें अच्छी लगने की बात, वह तभी संभव है जब मैं तुम्हारे मस्तिष्क में बनी प्रतिमा के सांचे में ढल जाती या मैं अपने जीवन को एक विधवा की तरह दुत्कार-फटकार सहकर, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के आश्रय में रहकर गुजारती। लेकिन मेरा स्वप्न नये सूरज की किरणों से उद्भासित वह लोक है, जहां मुझे संसार के सुख नहीं, आत्मा का आनंद मिलेगा और मेरी आत्मा का आनंद अब रोमी के साथ है।' वह दीर्घ सांस लेकर बोली, 'मनुष्य को चैतन्य होकर अपने आपको व्यर्थ के संतापों में नहीं जलाना चाहिए।'।

नरोत्तम निस्तब्ध-सा चलने को उद्यत हुआ। उसने मन ही मन विचारा, 'यह रोमी के अलावा किसीको कुछ नहीं समझती, फिर भला मैं यहां बार-बार क्यों आता हूं?' प्रकट बोला, 'यदि मैं तुम्हारे यहां आना छोड़ दूं तो क्या तुम्हें दुख नहीं होगा?'

'दुख किस बात का? पथ का पाथेय एक होता है। वह मैंने सदा के लिए बना लिया है। अब कोई आए और जाए, दुख नहीं। आएंगे तो पलकों में बिठाऊंगी, जाएंगे तो कोई बाधा नहीं बनूंगी।'।

नरोत्तम ने अपने आपसे कहा, 'अब मैं यहां कदापि नहीं आऊंगा। इसे मेरी जरा भी जरूरत नहीं है पर मन....?'

तभी इन्दिरा खिलखिलाकर बोली, 'रात का भोजन हम दोनों तुम्हारे साथ करेंगे न?'

'हां!' नरोत्तम सीढ़ियां उतर गया।

रात को उन तीनों ने एक साथ भोजन किया। कलकत्ता के साधारण होटल

में सबने अपनी-अपनी पसंद का खाना खाया। खाते-खाते रोमी बोला, 'आज का दिन बड़ा बुरा रहा। एक पैसा भी पैदा नहीं हुआ।'

दिन भर के गहरे आन्दोलन के बाद नरोत्तम की घृणा गहरी हो गई थी। वह मन ही मन चीखा कि मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि तुम भूखों मरो ताकि इन्दिरा का शेष स्वप्न नये अन्धकार की दानवी भुजाओं में पिसकर रह जाए।

वह जोर-जोर से कौर खाने लगा।

'यह तुमने अच्छा समाचार नहीं सुनाया रोमी?' चिंतित होकर इन्दिरा ने कहा, 'आज कोई बड़ा सौदा होने वाला था न!'

'नहीं हुआ, परसों की तारीख मिली है।'

'फिर?'

'तुम रोमी को गोद में लेकर जाओ और रोमी तुम्हें सिर पर रखकर बन्दर की तरह उछले।' नरोत्तम ने बड़े कौर को हलक से उतारकर स्वगत कहा, 'प्यार पेट को कैसे भरेगा, यही मुझे देखना है।'

इन्दिरा उदास होकर बोली, 'फिर उस मकान-मालिक को क्या कहेंगे? वह बड़ा दुष्ट ठहरा।'

'दुष्ट नहीं, शैतान कहो, गन्दी गालियां वकने लगता है।'

नरोत्तम की घृणा चिल्ला उठी, 'मैं उसे कहूंगा कि वह तुम्हारा सारा सामान बाहर फेंक दे ताकि इस अभिमान की पुतली को यह मालूम पड़ जाए, कि अहसान करने वालों को कभी नहीं भूलना चाहिए।'

'नरोत्तम बाबू!' इन्दिरा ने शहद-से मीठे स्वर में कहा।

नरोत्तम की स्वप्नमयी घृणा टूट गई। वह घबड़ा उठा। तपाक से बोला, 'हां-हां, तुम कुछ कह रही थीं न?'

'नहीं तो, मैंने आपको पुकारा था।'

'बोलो। कहने में, चाहे वह कितना ही कटु सत्य क्यों न हो, तुम्हें नहीं घबड़ाना चाहिए।'

'कुछ रुपये चाहिए।' वह गर्दन नीची करके बोली।

'कितने।' शेर की तरह अकड़कर नरोत्तम बोला।

‘सौ ।’

‘अभी ?’

‘जी ।’

‘दे दूंगा ।’ उसके स्वर में लापरवाही थी ।

‘दुखी मन से नहीं ।’ इन्दिरा ने अपनी दृष्टि उसपर जमा दी ।

‘यह क्या कहती हो इन्दिरा, तुम नहीं समझती कि तुम्हारी सहायता में मुझे कितना आंतरिक सुख मिलता है ।’

‘मैं ये रुपये आपको शीघ्र ही लौटा दूंगी ।’

‘लौटाने की क्या बात है ?’

‘ऋण आखिर ऋण है ।’

नरोत्तम ने हाथ धोकर तुरन्त उसे सौ रुपये दे दिए । रोमी आर्द्रस्वर में बोला, ‘आपने हमारी भारी मदद की है, नहीं तो हम बड़े संकट में पड़ जाते । हम शीघ्र ही आपका रुपया लौटा देंगे, मेरा बिजनेस बस चमकने ही वाला है ।’

रोमी ने सजल आंखों से इन्दिरा की ओर देखा । कृतज्ञता से भरी वे आंखें कितनी भली लगती थीं ?

जब वे लोग खाना खाकर विदा होने लगे तब नरोत्तम को सम्बोधित करके इन्दिरा बोली, ‘यह संसार अनंत अवसादों का आश्रय है, और हम उन अवसादों पर विभिन्न आवरण डालकर सुखी बनने का प्रयास करते हैं । पर वह सुख सुख थोड़े ही होता है, वह तो छल है जो हमें क्षण भर में छल कर छाया की तरह अदृश्य हो जाता है । फिर भी मनुष्य कितना निर्बल है कि उन छलों से इस तरह लिपटता रहता है जिस तरह अनंत अनुराग की तृष्णा लिए लता वृक्ष से लिपटती है । तूफान आता है, वृक्ष गिरकर धराशायी हो जाता है और बेचारी लता... बस नारी का यही जीवन है ? दुख, अनंत व्यथाएं, असीम घृणा ! फिर भी उसे लता की तरह लिपटकर चलना पड़ता है और जब तक उसमें लिपटने की शक्ति है, वह इससे वंचित नहीं रह सकती ! यदि वृक्ष अपने सर्वनाश के साथ लता के उद्गम को बंजर कर दे तब बेचारी लता सिवाय पैरों से कुचल जाने के अलावा क्या कर सकती है ?’

‘मैं इसे नारी का पतन कहता हूं । जिस युवती के विचारों में साम्य नहीं हो,

वह जीवन में सामंजस्य कैसे ला सकती है ?'

'जब शेषनाग का थाती पर आरूढ़ यह संसार ही सामंजस्य के सिद्धान्त के विरुद्ध है तब हम कैसे सिद्धान्तबद्ध हो सकते हैं।' 'अच्छा, इन रुपयों के लिए धन्यवाद, शीघ्र लौटा दूंगी।' वे दोनों विदा हो गए।

नरोत्तम को उनके जाने के बाद लगा कि वह फिर पराजित हो गया है।

१८

२६

रेल के डिब्बे में नरोत्तम एक कोने में बैठा था। उसे बार-बार इन्दिरा के वे शब्द याद आ रहे थे जो उसने विदा के समय कहे थे। नरोत्तम को लगा कि इन्दिरा उसे बिलकुल बुद्धू समझती है, तभी तो उसने वाक्य समाप्त करके व्यंग्यभरी हंसी से उसे देखा था जैसे वह अभी बच्चा है और उसे अभी बहुत समझना और देखना है।

उसके ठीक सामने एक साधू बैठा था। वह तरुण था। उसके चेहरे पर ओज झलक रहा था। वह उसे गौर से देखता रहा, देखता रहा। उसे लगा कि हो न हो यह सुबोध ही है। उत्सुकता पेट के दर्द की भांति जब ऐंठन देने लगी तब उसने बात का सिलसिला जारी करने लिए कुछ देर तक विचारा। उसने देखा कि जगह की कमी के कारण वह तेजस्वी संन्यासी सिमट-सिकुड़कर बैठा है। उसने आदर-पूर्वक कहा, 'आप इधर आ जाइए।'।

'नहीं।'।

'नहीं क्या, आप आराम से बैठिए न ?'

'नहीं, संसार पर कृपादृष्टि रखने वाले कृपापात्र कैसे बन सकते हैं। जब कंटकाकीर्ण मार्ग ही अपना लिया है, तब इस प्रकार की अभिलाषा हमें अपने कर्तव्य से विमुख कर देती है।' वह तरुण संन्यासी रूखी मुस्कान के साथ मधुर स्वर में बोला, 'मनुष्य सुख का सम्मोह स्वेच्छा से नहीं त्यागता, तभी वह अनेक संभ्रमों में फंसा रहता है।'।

इस प्रकार बात का सिलसिला बढ़ता गया। विचार-विमर्श में कभी-कभी नरोत्तम उत्तेजित हो उठता था जिससे वह सारे डिब्बे का केन्द्रबिंदु बन जाता था।

अंत में उस तरुण संन्यासी ने गंभीरता से कहा, 'नारी महान् है और उसका आलौकिक सौन्दर्य नर के अवरुद्ध पथों का निर्देशक ! उसका अतुल्य सौन्दर्य हमें सहस्र व्याधियों से विमुक्त करता है। लेकिन मनुष्य में उसके उस अद्भुत सौन्दर्य को परखने वाली दिव्य दृष्टि नहीं है।'

तरुण संन्यासी के मुख पर भावुकता चमकने लगी। वह कुछ देर तक रुककर बोला, 'मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ। शाही लकड़हारा जैसा भाग्यशाली नहीं, पर वह आर्यावर्त का एक राजकुमार था। नाम याद नहीं पड़ता। लेकिन वह अपने पिता का अत्यन्त लाड़ला बेटा था। अतुल सम्पत्ति का स्वामी होने के कारण उसकी प्रवृत्तियाँ वैभव से आच्छन्न होकर हिरन की तरह चौकड़ियाँ भरने लगीं।

'एक दिन वह घोर अरण्य में आखेट हेतु गया। वहाँ उसने कुसुम-लताओं के बीच एक सुकुमार वनकन्या को देखा। वह उसके अपरिमित अलौकिक सौन्दर्य पर पूर्ण रूप से आसक्त हो गया। लेकिन उसका साहस पंगु होकर रह गया, इसलिए उसने वनकन्या से तनिक भी बातचीत नहीं की। वह केवल चक्षु-संचालन करता रहा।

'प्रथम भेंट के बाद वह सदा वहाँ जाने लगा।

'वह जंगली जाति की एक अद्वितीय-अनिष्ट सुन्दरी थी।

'विवाह संभव न होने के कारण वह राजकुमार रूठकर कोप-भवनमें सो गया। यह समाचार महाराज के पास पहुँचा। महाराज स्वयं अपने प्रिय पुत्र के पास आए और इस प्रकार रूठ जाने का कारण पूछा। तब राजकुमार ने दृढ़ता से कहा कि अमुक वन में एक वनकन्या रहती है, यदि आप मेरा विवाह उससे नहीं कराएंगे तो मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।

'महाराज को यह स्वीकार नहीं था। कौटुम्बिक मर्यादा और आन के विरुद्ध वे कोई भी कार्य करने को उद्यत नहीं हुए। इधर राजकुमार ने अपना हठ नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे उसकी स्थिति चिंताजनक होने लगी। रानी ने यह सुना। ममता अपनी सन्तान को कैसे मिटने देती। वह राजा के पास गई। अनुनयभरे स्वर में बोली, 'महाराज, खानदान के दीपक को बचाइए, वह बुझ रहा है।'

'महाराज दृढ़ता से बोले, 'जो दीपक भङ्गावातों से खेलेगा, उसका फल यही होगा।'

‘रानी को भी गुस्सा आ गया, ‘बुझकर वह दीपक आपके इहलोक-परलोक दोनों को अन्धकारमय कर देगा।’

‘महाराज उसी कठोरता से बोले, ‘मैं इहलोक बिगाड़कर परलोक सुधारना नहीं चाहता। ऐसा कुपुत्र क्या हमें मृत्युपर्यन्त सुख दे सकता है?’

‘पर रानी अपनी बात पर अड़ी रही।

‘तब राजा को उसकी बात स्वीकार करनी पड़ी।

‘विवाहोपरान्त राजकुमार उस वनकन्या को सात समुद्र पार सिंहलद्वीप ले गया। सिंहल द्वीप की सुन्दरियां बहुप्रशंसित थीं। वहां राजकुमार प्रथम दृष्टि-जनित प्रेम का उल्लंघन नहीं कर सका। वह सिंहल-सुन्दरी पर मुग्ध हो गया।

‘वनकन्या उसकी उपेक्षा को महसूस करने लगी। राजकुमार की आसक्ति एकाएक कैसे मंद पड़ गई? एक रात उसने उसके रहस्य को जान लिया। वह वनकन्या थी, जंगली स्वभाव की; दृढ़ और कठोर। एक रात वह सिंहलद्वीप के किसी कुमार के साथ भाग गई।

‘कहानी यहां समाप्त हो जाती है।

‘लेकिन इस कहानी में दोषी कौन है? प्रश्न बड़ा गम्भीर है। साधारण लोग उस नारी को ही दोषी बताएंगे पर दोषी वह पुरुष है जिसने नारी के पावन सौन्दर्य से जीवन-ज्योति का दान न लेकर उसके सौन्दर्य को कलंकित करके तृप्ति का साधन मात्र बनाना चाहा। यह न्याय का अतिक्रमण है, अतः उस नारी ने अपना पाथेय दूसरा बना लिया। इसी प्रकार हमारा समाज और प्रकृति नारी की भावना से खेलती आई है। मैं दिव्य पुरुष नहीं हूँ और न ही मेरे पास सन्त-महात्माओं जैसी दिव्य दृष्टि ही है पर मैं कठोर तपस्या के बल पर इतना कह सकता हूँ—ज्ञान और सत्य के संसार से विलग एक और भी शक्ति है—वह है भावना और वह भावना है। नारी अतः नारी को श्रद्धालु की भांति पूजो।’

वह तरुण संन्यासी इसके बाद ऐसा चुप हुआ कि फिर बोला ही नहीं। नरोत्तम का साहस भी नहीं हुआ। वह कुछ देर तक उस संन्यासी को देखता रहा। उसे लगा कि वह सुबोध है, बेचारा सुबोध! पत्नी का सताया और तिरस्कृत!

लेकिन नरोत्तम काफी देर बाद बोला, ‘एक बात बता सकते हैं आप?’

‘कहिए ।’ संन्यासी ने शांति से उत्तर दिया ।

‘पहले भारतीय नारी पातिव्रत्य धर्म को सर्वस्व मानकर जीवन यापन करती थी और आज वह पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर लेती है और उसे दूसरे व्यक्ति के साथ भी उतना ही सुख और संतोष प्राप्त होता है जितना पहले पति के साथ । क्या यह कुरीति हमारे धर्म और संस्कृति के लिए घातक त्तिद्ध नहीं होगी ?’ नरोत्तम प्रश्न करके उस संन्यासी की ओर देखने लगा ।

तरुण के अधरों पर सौजन्यपूर्ण कांति मुखरित हो उठी । वह एक उपदेशक की मुद्रा में बोला, ‘युग के प्रचंड प्रभंजन को कौन रोक सका है ? सदा समाज और धर्म के मापदंड बदलते आए हैं । मेरा ऐसा विचार है कि युग के मानव पुनः प्राचीनता की ओर अग्रसर हो रहे हैं । वही मुक्त हास्य, वही मुक्त सम्बन्ध और वही मुक्त नाते-रिश्ते ! न अनुचित हस्तक्षेप और न अनुचित प्रतिबन्ध । नये युग के नये प्रतिमान ! मैं कहता हूं कि ऐसा समय आने वाला है जब हम सुख और स्वतंत्रता की सांस ले सकेंगे ।’

अब नरोत्तम से रहा नहीं गया । उसके अन्तस्तल में बैठा कोई बार-बार कह रहा था—हो न हो यह सुबोध ही है । उसने इसी आशय को ध्यान में रखकर कहा, ‘मेरी एक मित्र है इन्दिरा, उसने अपने पति को छोड़ दिया है । उसका स्वभाव बड़ा विचित्र है । देखिए, उसने अपने समाज के नियमों का अतिक्रमण करके एक ईसाई से ब्याह किया है ।’

‘हम इतने संकुचित होकर सोचते ही क्यों हैं ?’ वह संयत स्वर में बोला, ‘आज के युग में एक विचित्र बात और देखने में आती है कि ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ का नारा बुलन्द करने वाले व्यक्ति अपने-अपने धर्म के प्रचार-प्रसार में सम्पत्ति को पानी की तरह बहा रहे हैं । फिर ‘मानव-धर्म’ की स्थापना कैसे होगी ? कथनी और करनी में बड़ा अन्तर है । ‘हिंसा मत करो’ कहकर अपनी पत्नी को मांस पकाने के लिए आज्ञा देना ही आज की नीति है । बंगाली समाज गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्वास को कितनी बड़ी ठेस पहुंचा रहा है जिसमें पूर्व-पश्चिम के भेद के मिटाने का दृढ़ संकल्प है ? वे सभी संस्कृतियों का संगम देखना चाहते थे और हम अब भी ईसाई और बंगाली, बंगाली और हिन्दुस्तानी का प्रश्न खड़ा कर देते हैं ।...’

आपकी मित्र इन्दिरा ने अपने पति को छोड़कर दूसरे के साथ शादी कर ली, पर क्यों ? अवश्य पति ने उसके मन और तन का ध्यान नहीं रखा होगा अथवा उसकी नारी को मर्मन्तक यंत्रणा दी होगी । उसे विवश किया होगा कि वह विद्रोह करे, वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जाए ताकि उसे कोई पीड़ा देकर सताए नहीं । '...मैंने पहले कहा था कि नारी भावना है । उसकी भावना को ठेस पहुंचाकर कोई व्यक्ति नारी का वास्तविक सामीप्य नहीं भोग सकता ।'

उस तरुण की आंखें सजल हो उठीं । नरोत्तम के मन में कई बार उस तरुण को पूछने की इच्छा होती थी कि आप साधू क्यों बने पर उसके तेजस्वी मुखमंडल पर दृष्टि पड़ते ही उसका इरादा कच्चे धागे की भांति टूट जाता था ।

स्टेशन आ गया था । संशय, श्रौत्सुक्य, सन्देह की भावना लिए नरोत्तम उस तरुण संन्यासी को देखता हुआ उतर गया ।

१९

दूसरे दिन नरोत्तम अपने कार्यालय के कार्य में व्यस्त रहा । संध्या के समय वह अपने विस्तरे पर आकर पड़ गया । पर उसे नींद नहीं आई । उस तरुण का उज्ज्वलमुख उसके समक्ष बार-बार नाच उठता था । सारल्य की प्रतिमूर्ति, शांत और गंभीर । आंखों में अव्यक्त व्यथा की जलती शिखाएं !

नरोत्तम को लग रहा था कि हो न हो, वह सुबोध ही है । नारी से तिरस्कृत होने के बाद नर में दो ही प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं—विरक्ति की ओर उन्मुख होकर एकदम व्यक्तिवादी हो जाना या समष्टि में अपने आपका विलोप कर लेना । 'समष्टि में तुष्टि' के अभाव में उसने दूसरे पथ का अनुसरण किया । वह अब जीवन के सभी तत्त्वों से समभूता करके अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर रहा है । उपदेश दे रहा है । उस उपदेश द्वारा मानो वह अपने अन्तर में छिपाए विचारों के तूफानों को संसार के समक्ष रखता है । उसने अपनी कहानी किस रूप से मुझे सुनाई ! एक राजकुमार और वनकन्या । वनकन्या और राजकुमार !

‘नरोत्तम दा !’ तृप्ति ने पुकारा ।

‘अरे तू इतनी रात गए क्यों आई ?’ उसने विस्मय से पूछा ।

‘मेरा मन नहीं लगा ।’ उसने भोलेपन से कहा ।

‘क्यों ?’

‘मैं क्या जानू ? अरे हां, मैं तो भूल गई, मां ने पूछा है कि आप चाय पीएंगे ।’

‘इतनी रात गए !’

‘रात कहां गई है नरोत्तम दा, अभी साढ़े आठ बजे हैं ।’

‘बस !’

‘और क्या, आपको भांति सभी थोड़े ही हैं कि रात पड़ी कि नई दुल्हन की भांति घूंघट निकालकर...’

‘आजकल तू कवियित्री होने लगी है ।’ बीच में ही नरोत्तम बोला ।

तृप्ति ने एक बार उसे स्नेहभरी दृष्टि से देखा । नरोत्तम को उसकी आंखों की गहराई में अपनत्व भांकता हुआ दिखलाई पड़ा । वह उसे देखता रहा, समझता रहा । संन्यासी के शब्द एकाएक याद हो आए—‘नारी का अलौकिक सौन्दर्य मानव में जीवन का संचार करता है ।’ नरोत्तम लज्जा से नत तृप्ति के नयनाभिराम मुख को देखता रहा । संचरण और कम्पन, कम्पन और संचरण ! वह वाचाल हो उठा । उसने तुरन्त अपना सूटकेस खोला । मन पल भर के लिए हट गया, तृप्ति से । उसने सूटकेस में से एक साड़ी निकालकर तृप्ति के हाथों में सौंप दी ।

‘देख, मैं तेरे लिए क्या लाया हूं ।’

‘साड़ी ?’

‘तूने कहा था न ?’

‘हां, ठीक वैसी है, जैसी उस वधू ने पहन रखी थी ।’

‘तू इसे कब पहनेगी ?’

‘मैं इसे कल पहनूंगी ।’

‘पहनकर जाएगी कहां ?’

‘दूर, उस जंगल में, काली माई के मन्दिर में, उसकी पूजा करने ।’

‘अरे वाह, इसको पहनकर तू काली माई के मंदिर जाएगी ।’ नरोत्तम ने

विस्मय से पूछा। उसकी आंखें स्थिर थीं।

‘और कहां जाऊं?’ वह उदास होकर बोली, ‘क्या आप मुझे अपने साथ ले जाएंगे? मैं आपके साथ हाट चलना चाहती हूं।’

‘मैं? नहीं, नहीं, तू मेरे साथ कहां चलेगी? अपने बाबा के साथ जा।’

तभी श्रीमती सेन ने पुकारा, ‘तृप्ति, ओ तृप्ति!’

तृप्ति चिड़िया की तरह फक से नरोत्तम की आंखों से ओझल हो गई।

‘इतनी देर कहां लगा दी थी?’ श्रीमती सेन ने तुनककर पूछा।

‘नरोत्तम दा, इन्दिरा दीदी की बातें बताने लगे थे, ... देखो मेरे लिए कितनी अच्छी साड़ी लाए हैं नरोत्तम दा! देख तो मां! भाभी तू भी देखना!’

मां ने साड़ी को बड़े गौर से देखा। लगभग चालीस रूपयों की साड़ी थी। मां ने एक बार फिर सन्देह भरी दृष्टि से उस साड़ी को और तृप्ति के मुख को देखा— दोनों नूतन थे, दोनों स्वच्छ थे। फिर भी यह भेंट कुछ मतलब रखती थी। यौवन की अमराई में चहकती बुलबुल की ओर सबकी दृष्टि उठ ही जाती है। अतः उसने तृप्ति को मधुर स्वर में इतना ही कहा, ‘तृप्ति, नरोत्तम बाबू से अधिक मिलना-जुलना अब तेरे लिए अच्छा नहीं।’

‘क्यों?’

‘तू अब बच्ची नहीं है।’

उस दिन तृप्ति ने यह जाना कि वह बच्ची नहीं है। इस छोटे-से वाक्य ने उसके मानस-लोक में तूफान उठा दिया। प्रतिक्रियाओं के उतार-चढ़ाव में वह डूब-सी गई। उसने एक बार फिर अपने आप दोहराया, ‘मैं बच्ची नहीं हूं।’

हालांकि इसके पहले वह ऐसा कई बार सुन चुकी थी पर उसने आज तक इतना गौर नहीं किया था कि उसमें कई परिवर्तन आ गए हैं। वह अपने तन में सिहरन लेकर दर्पण के सम्मुख गई, अपने आपको उसने शनैः-शनैः दर्पण में उतारा और फिर स्वयं के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई।

इसके बाद जब वह चाय देने गई, तब नरोत्तम छत पर चला गया था। तृप्ति ने संकोच करते हुए उसे पुकारा, ‘नरोत्तम दा!’

‘आया।’ नरोत्तम नीचे आया। उसने तुरन्त चाय पीकर कप तृप्ति को वापस

लौटा दिया।

‘आज बड़ी गर्मी पड़ रही है।’ नरोत्तम ने कुछ क्षण मौन रहकर कहा।

‘हां।’ आज तृप्ति की आंखें भुकी हुई थीं।

‘यदि अब बरसात नहीं हुई, तो ‘कालेरा’ शुरू हो जाएगा।’

‘होने दो, अच्छा मैं चली।’

‘अरे क्यों, तू तो ऐसे जा रही है, जैसे मैं कोई सांप हूं और थोड़ी देर में काट लूंगा।’ नरोत्तम यह सब कहकर शर्मा गया।

‘नहीं, मां ने कहा है कि अब तू बच्ची नहीं है।’ कहते-कहते तृप्ति की आंखें सजल हो उठीं। लज्जा उसके सौन्दर्य को बढ़ा गई। उसकी दृष्टि पूर्ववत् थी।

‘ओह!’ नरोत्तम एकाएक व्यथा में डूब गया।

तृप्ति चली गई। उसके नेत्रों में संकोच का सागर लहरें मार रहा था।

नरोत्तम तारों की आंखमिचौनी के नीचे स्वप्नाविष्ट-सा पड़ा था। अब तृप्ति बच्ची नहीं है। युवा है। तभी तो उसकी मुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। इस मिट्टी के व्यक्तियों का यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि व्यक्तित्व के विकास के समय उसे प्रतिबन्धों में जकड़ना पड़ता है।’

तब वह घंटों तृप्ति के बारे में विचारता रहा। तृप्ति के साथ उसे इन्दिरा की भी याद आई। अस्थिर विचारों की इन्दिरा का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न समय में उसने नये-नये रूपों में देखा।

तृप्ति, इन्दिरा, तारिणी, राजिया की भाभी और कितनी ही युवतियां!

उलझनें, भय, घृणा और निद्रा, गहरी निद्रा।

सवेरा होने के पहले ही रोहिणी की तबीयत अस्वस्थ होगई थी। भांभरके (राजस्थानी में, लगभग सवेरे के पांच-छह बजे) उसे एक साथ कै और टट्टियां लगने लगी थीं। सवेरा होते-होते यह बात सारे एरिया में फैल गई।

कालेरा, हैजा, घातक रोग!

सारी की सारी आबादी आतंकित हो उठी।

नरोत्तम को खबर लगते ही वह उसे अस्पताल ले गया। मिल और अस्पताल के बीच एक नदी पड़ती थी। पुल का रास्ता लगभग डेढ़ मील के चक्कर का पड़ता

था। अतः एक नाव पर रोहिणी को बैठाकर अस्पताल ले जाया गया। वहाँ उसकी स्थिति ठीक होने लगी।

इसके बाद स्वयं नरोत्तम सभी खाद्य पदार्थों को देख-देखकर खाने लगा तथा उसकी ओर से स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान रखने की हिदायत सबको दे दी गई। कुछ वज्रट तुरन्त उसने नीबू-डाभ आदि पीने के अन्तर्गत गरीब मजदूरों एवं मजदूरों के परिवारों के लिए पारित करा दिया। अब वह दिन-दिन भर हैजे के रोकने के प्रयास में लगा रहता था।

लेकिन रोहिणी के घर लौटकर आने के पूर्व ही तृप्ति इस रोग का शिकार हो गई। उसे भी वह अस्पताल में दाखिल करा आया। जब नरोत्तम ने अपनी गोद में उसे उठाया उस समय तृप्ति के चेहरे पर अतृप्तियों व दुखों के सातों सागर लहरा रहे थे। वह तड़प रही थी लेकिन उसने उस तड़प को अधरों तक रहने दिया। वेदना के तिमिर को भेदता हुआ उसका वही शाश्वत संगीत 'मृत्यु-दूत-काँलेरा' के अंकपाश में ही गूँज उठा, 'आपनार...माथा...पोका खेयचे।' पहली बार नरोत्तम की आँखों में अश्रु छलछला आए। जैसे उसके हृदय के कोने में वर्षों से दबा हुआ प्यार का स्रोत आज एकाएक फूट पड़ा हो। वह स्नेह से पिघलकर अबोध तृप्ति के गालों पर पवित्र चुम्बनों की वर्षा कर देना चाहता था। पर वह अपनी इस पवित्र भावना को दबाकर रह गया, वस उसके अश्रु बहते रहे। उसे याद आता रहा, 'आपनार माथा पोका खेयचे'। इस वाक्य में छिपी नारी के प्रेम की याचना! नरोत्तम भाव-विह्वल हो उठा।

तृप्ति को पानी चढ़ाया गया।

दूसरे दिन उसकी स्थिति सुधरने लगी। रोहिणी वापस घर आ गई थी। बड़ी दुर्बल और पीली होकर। उसकी सूरत से ऐसा लगता था कि जैसे वह महीनों से बीमार है।

नरोत्तम बार-बार अस्पताल जाता था। वैसे लेबर-आफिसर होने के कारण उसका कर्तव्य भी था लेकिन वहाँ के लोगों ने इसका कोई दूसरा ही अर्थ लगाया। विशेषकर अनुपमा दादी कहने लगी कि वह तृप्ति की कैसे सेवा नहीं करेगा, इतने दिन से जो प्रेम का व्यापार चल रहा है? सेन बाबू और श्रीमती सेन को

इन बातों से बड़ी तकलीफ होती थी। वे सोचते थे कि यह उनकी लड़की के हक में बुरा ही हो रहा है। फिर भी वे चुप थे क्योंकि बीमारी में अधिक खर्च हो रहा था और इतना खर्च वे वहन नहीं कर सकते थे। इसलिए वे चोट खाकर भी चुप थे। आदमी अर्थ के सामने एक असहाय गुलाम है।

तीसरे दिन तृप्ति की दशा काफी सुधर गई। नरोत्तम उससे मिलने के लिए गया था। वह बैठी-बैठी बंगला की पत्रिका 'प्रवासी' पढ़ रही थी। नरोत्तम ने मुस्क-राकर उसकी ओर देखा। आज सवेरे-सवेरे वह सोच रहा था कि तृप्ति की सेवा में उसे असीम सुख क्यों मिला? प्रश्न करना आसान था पर उसका उत्तर उसे खोजे नहीं मिल रहा था। तभी उसे नल पर अनुपमा दादी और शेफाली बुआ की बातें सुनाई पड़ीं। शेफाली अहसानभरे स्वर में कह रही थी, 'देखो अनुपमा, ऐसा आफिसर ही हम गरीबों का दुख दूर कर सकता है।'

'बुआ, यह आफिसर का कर्तव्य नहीं, यह प्यार के करतव है।' उसने अपना स्वर धीमा कर लिया, 'नरोत्तम बाबू तृप्ति से प्यार करता है। अरी तुमने देखा नहीं, नरोत्तम बाबू का मुंह चिंताओं के कारण सूख गया है।'

'तुम सदा उल्टा ही सोचती हो।' शेफाली ने अनुपमा से शिकायत की।

'तब वह दौड़-दौड़कर तुम्हारे घर तो नहीं आता।' अनुपमा ने नल बन्द करते हुए कहा, 'पर ऐसी बात अधिक दिन तक नहीं छिपती है। देखती रहियो, यह भांडा थोड़े दिनों में फूट ही जाएगा।'

नरोत्तम अनुपमा को जाते हुए देखता रहा। उसे तृप्ति की सेवा में असीम सुख इसलिए ही मिलता है कि वह तृप्ति को प्यार करता है। अनुपमा दादी ने सच कहा कि वह तृप्ति को चाहता है। 'तब तृप्ति की एक-एक बात सुगन्ध की तरह उसके मन में बस गई। वह सोचने लगा कि तृप्ति उसे बहुत चाहती है, तभी वह उसका इतना ख्याल रखती है, खाने-पीने और उठने-बैठने तक का; तभी उसने उस दिन वर-वधू को देखकर कहा था कि नरोत्तम बाबू यह वधू अपने स्वामी के साथ कितनी भली लग रही है? 'और नरोत्तम के मस्तिष्क में प्यार के सुनहले बादल छाते गए।

तृप्ति ने पत्रिका को एक किनारे रखकर उच्छ्वसित स्वर में कहा, 'नरोत्तम दा, डाक्टर ने कहा है कि अब तुम अच्छी हो जाओगी, खतरा टल गया है।'

‘भगवान को धन्यवाद दो ।’

‘नहीं ।’ वही वचन का हठ भरा स्वर ।

‘अरी पगली, भगवान से नहीं डरोगी तो....’

‘देखो नरोत्तम बाबू, मैं धन्यवाद आपको दूंगी । सिस्टर सरोज कह रही थी कि आपने मेरी बहुत सेवा की है ।’

‘बाबू !’ नरोत्तम ने अपने आपसे कहा और फिर उसे प्रेम भरी दृष्टि से देखा । तृप्ति भी सहम गई । वे दोनों चुप हो गए । नरोत्तम ने आज तृप्ति को लेकर बहुत सोचा था । उसने यह भी निश्चय किया था कि वह तृप्ति से पूछेगा कि वह भी उससे प्यार करती है कि नहीं, पर उसके कायर मन ने उसे इस बार भी धोखा दे दिया । वह अपने आप रोमांचित हो गया । उत्तेजित होकर बोला, ‘आज मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, वोलो तुम्हारे लिए क्या लाऊँ ?’

उसने तुरन्त कहा, ‘रवर का बबुआ ।’

नरोत्तम चुप होगया । थोड़ी देर बाद बोला, ‘उसका क्या करोगी ?’

‘एक बार मैंने किसी साप्ताहिक पत्र में एक कहानी पढ़ी थी, उसमें एक मित्र अपने निकटतम मित्र की पत्नी को यही तोहफा देता है ।’

‘अच्छा ।’ कहकर नरोत्तम लौट आया । कलकत्ता जाना था, इसलिए मैनेजर से कुछ आवश्यक वार्तालाप करके वह वहाँ के लिए रवाना हो गया ।

२०

सेठजी एक नयी मिल खरीदने के चक्कर में थे । किसी बंगाली जमींदार की वह मिल थी । अच्छी चलती थी । लेकिन धीरे-धीरे उसके मालिक की ऐय्याशी बढ़ती गई । मालिक को सुरा और सुन्दरी में बेहोश देखकर नौकरों ने मनमानी करनी शुरू कर दी । परिणाम जो निकलना था, वह निकलकर रहा, याने घाटा, घाटा, घाटा ! उधर मजदूरों ने हड़ताल कर रखी थी । तनखाह का वितरण ठीक नहीं हो रहा था । लेकिन करोड़ों की मिल, लाखों में आ रही थी ।

नरोत्तम ने कहा, 'देखिए सेठजी, मुझे इस प्रकार के व्यापार का अधिक ज्ञान नहीं है।'

'ज्ञान का क्या लेना-देना है, बस तुमको यह सौदा जंचता है कि नहीं? यह मैं चोखी तरह जानता हूँ कि जैसे ही वह मिल अपने हाथ में आएगी, वैसे ही चांदी की खेती शुरू हो जाएगी।'

'फिर ले डालिए।'

'ले तो डालूंगा, पर तुम्हें वहां जाना पड़ेगा। देखो न, तुमने जब से अपनी मिल का काम संभाला है, तब से कभी कोई गड़बड़ नहीं हुई।'

'यह ठीक है, पर वहां की स्थिति काफी बिगड़ी हुई है। वहां के मजदूरों में भय-कर असंतोष है।'

'लेकिन तुम सबको ठीक कर दोगे। यही गुण तुममें बहुत बड़ा है। तुम ही जानते हो कि यह मजदूर लोग कैसे होते हैं। ट्रेडयूनियनों में कहां पोल होती है। मजदूरों का दमन कैसे किया जाता है। उनसे समझौते का उपाय क्या है। उन्हें काबू में कैसे लाया जा सकता है।'

'परिस्थिति से समझौता करके चलना ही इस युग की सफलता है।... अच्छा, मुझे कब तक जाना पड़ेगा।'

'यही पांच-सात दिन में। अभी तो लेन-देन की बातचीत चल ही रही है।'

'अच्छा, चला जाऊंगा।'

'देखो, तुम्हें सेठानी जी ने बुलाया है।'

सेठानी से मिलकर उसने गहरा सांस लिया। अब उसे इन्दिरा की याद सताने लगी। इन्दिरा का ध्यान आते ही वह सीधा चक्रवर्ती के घर गया। चक्रवर्ती को दो-तीन दिन से बुखार आ रहा था। उसकी बीबी बड़ी चिंतित थी। सुनंदा आजकल घर पर ही रहती थी। जिस दिन इन्दिरा ने रोमी से अपना संबंध स्थापित किया, उसी दिन से चक्रवर्ती क्षुब्ध-सा रहने लगा। उसे आज की सोसायटी और शिक्षा परसे विश्वास उठ गया और उसने सुनंदा को उसी दिन धनबाद से यहां पर बुला लिया। उसकी पढ़ाई-लिखाई समाप्त कर दी।

सुनंदा ने कोई विरोध नहीं किया। उसने भी दीदी के इस कार्य को निंदनीय

एवं घृणित ही समझा। अब उसकी श्रद्धेय दीदी उसके लिए चरित्रहीन के अलावा कुछ नहीं थी।

नरोत्तम को देखते ही चक्रवर्ती की बहू गद्गद हो उठी। शिकायत भरे स्वर में बोली, 'आप तो हमें भूल ही गए नरोत्तम बाबू, इसीलिए कहने वालों ने ठीक कहा है कि परदेसियों की प्रीत बरसात की तरह होती है, बरसी और चली गई।'।

'नहीं, नहीं, इधर काम बहुत रहा। मिल का चक्कर ही कुछ विचित्र है, एक मिनट का अवकाश नहीं मिलता।...चक्रवर्ती बाबू कहां हैं।' उसने भीतर इधर-उधर देखकर कहा।

तभी सुनंदा आ गई। प्रणाम करके बोली, 'नरोत्तम दा, आप कब आए ?'

'आज सुबह।'।

चक्रवर्ती की पत्नी ने इस बार फिर शिकायत की, 'तुम्हारे नरोत्तम दा, बड़े मानुस हैं, हम गरीबों को याद थोड़े ही करेंगे ?'

नरोत्तम मुस्करा दिया।

चक्रवर्ती ऊपर के कमरे में सोया हुआ था। उसके पास रखी शीशी में लाल रंग का मिक्सवर पड़ा था। नरोत्तम को देखते ही चक्रवर्ती बोली, 'नमस्कार नरोत्तम बाबू !'

'आप सोइए-सोइए, मैं अभी बैठ जाता हूं।'।

चक्रवर्ती दीवार के सहारे बैठ गया। उसकी आंखों में दुख भलक रहा था। उसकी आन्तरिक वेदना को जानकर नरोत्तम बिल्कुल चुप रहा। सुनंदा ने आकर कहा, 'आपके लिए चाय बनाऊं ?'

'चाय के लिए भी पूछती हो ? इस परोपकारी पुरुष ने बड़ी कोशिश की थी कि हम सुखी हो जाएं पर भाग्य में विधाता ने जो दुर्भाग्य की अमिट रेखाएं अंकित कर दी हैं, उन्हें हम कैसे मिटा सकते हैं ?' चक्रवर्ती निराशा से बोला।

नरोत्तम इसपर भी चुप रहा।

'देखिए नरोत्तम बाबू, मुझे कितना दुखी बना दिया है मेरी सन्तान ने। क्या प्रत्येक बाप अपनी सन्तान को इसलिए ही अपना रक्षित पिलाता है कि वह उसकी कीर्ति और सुदिन का भागी न बनकर उसके अरमानों से खेलें ? ...मैंने सुनंदा को

घर बुला लिया है। न मैं इसे शिक्षित करूंगा और न गुणी। जैसी उसकी मां है, वैसी ही इसे बनाऊंगा ताकि इसमें विद्रोह के बीज अंकुरित न हों। मैंने देखा है और तथ्य भी निकाला है कि मनुष्य के व्यक्तित्व को स्वतंत्र करना भी खतरनाक है। वह स्वतंत्र होकर रूढ़ियों को तोड़ता है सो तोड़ता ही है, साथ में वह परिवार व समाज की सहज सहानुभूति और उसके अनुराग के वक्ष पर भी छुरा भोंक देता है। आज इन्दिरा हमारे बीच आ नहीं सकती। हम उसे बड़ी अजीब दृष्टि से देखते हैं। इन छोटे-छोटे वच्चों को उससे घृणा है। क्यों ? पहले उसने अपने पति को छोड़ा। इसके बाद एक ईसाई से विवाह किया। आप नहीं जानते कि 'मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना चाहिए' कहने वाले प्रयोग में कितने संकीर्ण और संकुचित होते हैं। घृणा की भावना दिन-प्रति दिन हममें तेज होती जा रही है। मैं कहूंगा कि एक दिन यही भावना घृणा को तीव्र कर देगी और आदमी उतना ही नृशंस हो जाएगा जितना वह युद्ध-भूमि में होता है।'

चक्रवर्ती जब चुप हो गया तब नरोत्तम दुख से बोला, 'आपकी धारणा गलत है। मानवीय प्रेम का रूप कल से आज अधिक व्यापक है। हम एक दूसरे के अधिक निकट हैं। हममें घृणा की मात्रा कम हो गई है।'

'आप क्या कहते हैं नरोत्तम बाबू !' चक्रवर्ती मुंह बिचकाकर लम्बे स्वर में बोला, 'घृणा की भावना कल से आज तीव्र है। कल भारत में लोग मानवता का मूल्यांकन व्यापक पैमाने पर करते थे। पुरु ने सिकन्दर को छोड़ दिया; युद्धक्षेत्र में उसे मारा नहीं, क्योंकि उसने उसकी प्रेयसि से राखी बंधवाली थी। चन्द्रगुप्त ने हेलन से ब्याह किया पर उसे हिंदू धर्म अंगीकार कराके नहीं। महान् अकबर ने मानसिंह की बहिन से विवाह किया पर उसे मुसलमान बनाकर नहीं। पर आज हममें यह संकीर्ण मनोवृत्ति आ गई है। हमारे एक बंगाली लड़के का प्यार एक क्रिश्चियन लड़की से हो गया। विवाह तभी हुआ जब उस लड़के ने क्रिश्चियन बनना स्वीकार किया। बताइए हमारी बंधुत्व की भावना व्यापक हुई या घृणा की ? केवल 'भाषणों का बन्धुत्व' प्रयोग में खरा कैसे उतर सकता है ?' वह कुछ देर तक मौन रहा, जैसे वह गंभीरता में डूब गया हो फिर धीरे-धीरे क्रमशः स्वर को ऊंचा करता हुआ बोला, 'इन्दिरा ने रोमी के साथ विवाह कर लिया। वह सुख

से है। लेकिन मैंने एक दिन सुबोध को देखा। लपककर उसे पकड़ा। पूछा कि तुम कैसे हो ? वह बोला कि मोशाय, आपको पहचानने में गलती हुई है। मैं सुबोध नहीं हूँ और उसने मुझे एक प्राचीन कहानी सुनाकर यह साबित कर दिया कि एक चेहरे के कई व्यक्ति हो सकते हैं। मैंने सोच लिया कि यह अपने आपको छुपा रहा है। इसीलिए मैंने उसे बातों ही बातों में तीखे सत्य से अवगत करा दिया कि इन्दिरा ने रोमी नामक क्रिश्चियन से विवाह कर लिया है।’

वह बड़ी शांति से बोला, ‘लता में जब तक लिपटने की शक्ति होगी, तब तक वह अपने समीप की वस्तु से लिपटेगी ही।’

‘हां वही, बिलकुल वहीं, चक्रवर्ती बाबू में भी उस संन्यासी से मिला था। मुझे भी उसने अपनी कहानी सुनाई थी। सच है उसके तारुण्य को देखकर मन तरस से भर आया।’ नरोत्तम व्यग्रता से बोला।

‘ऐसे पति को त्याग कर इन्दिरा ने उस स्याही बेचने वाले से नाता जोड़ा। छिः ! छिः ! पतन हो गया है इस इन्दिरा का।’

‘मैं इन्दिरा से मिला था।’

मुनंदा चाय लेकर आ गई थी। बोली, ‘आप इन्दिरा दीदी से मिले थे ? कब ? वह कैसी है ?’ उसका स्वर एकाएक निश्छल हो गया और फिर उसकी मुद्रा कठोर हो गई जैसे उसे किसी घृणित बात का ध्यान हो आया हो।

‘अच्छी है।’

‘पर बाबा दिन-प्रतिदिन उसके कारण क्षीण होते जा रहे हैं। ये पल भर भी अपने अशांत मन को धैर्य नहीं देते। डाक्टरों का कहना है कि यह अशांति बड़ी अशुभ है।’

चाय का घूट लेकर नरोत्तम बोला, ‘होनी होकर ही रहती है। इन्दिरा का जीवन उसके साथ सुखी है, ठीक है। अब हमें यही सोचकर धैर्य धारण कर लेना चाहिए कि इन्दिरा हमारी विटिया थी ही नहीं।’

‘मनुष्य अपने आपसे इतना बड़ा छल कैसे कर सकता है ? सत्य अदृश्य होकर भी दृश्य है। दृश्य को हम कैसे भुठला सकते हैं ?’ चक्रवर्ती बोला।

‘लेकिन अब उस दृश्य को देखकर अपने आपको पीड़ा पहुंचाना भी उचित नहीं।’

‘सोचता हूँ कि नहीं पहुँचाऊँ पर मन नहीं मानता। आप नहीं जानते कि इन्दिरा की घृणा अब मेरी घृणा हो गई है। लोग मुझसे घृणा करते हैं कि इसने अपनी बेटी को बिगाड़ा।’

‘लोगों की जवान आप नहीं रोक सकते पर आपको इससे उद्विग्न नहीं होना चाहिए। देखिए, अभी आपके सिर पर बड़ी जिम्मेदारी है। सुनंदा और आपका बच्चा....’

‘मुझपर कोई जिम्मेदारी नहीं है। सुनंदा के लिए एक लड़का ठीक कर लिया है। रेल्वे में फोर्थ क्लास का कर्मचारी—खलासी है। चरित्र का अच्छा और मेहनती। आगामी सर्दी में विवाह हो जाएगा।’

चाय खत्म हो गई थी।

चक्रवर्ती की पत्नी इन बातों से ऊबी हुई प्रतीत हुई। उसकी भाव-भंगिमा से लगता था कि वह इन बातों को टालना चाहती है। बीच में ही प्रभावशाली ढंग से बोली, ‘नरोत्तम बाबू, आपने विवाह किया या नहीं?’

‘नहीं।’ लजाकर नरोत्तम बोला जैसे उसे अब इस उम्र में कुंवारा नहीं रहना चाहिए।

‘क्यों, आपको कौन-सी दिक्कत है?’

‘कोई नहीं।’

‘या लव-मैरिज के चक्कर में हैं, क्यों दादा?’ सुनंदा ने बीच में ही कहा। उसके होठों पर कुटिल हास्य था।

‘लव-मैरिज!’ चक्रवर्ती पुलिस की भांति भारी स्वर में बोला, ‘लव-मैरिज कभी मत कीजिएगा नरोत्तम बाबू, इन्दिरा का परिणाम आप देख ही चुके हैं। मुझे अब प्रेम-परिणय से चिढ़ हो गई है। सोचता हूँ, यह सब बकवास है।’

नरोत्तम कुछ नहीं बोला। उस समय उसे तृप्ति की स्मृति हो आई। फिर इधर-उधर की बातें होती रहीं। चक्रवर्ती घृणा पर ही बार-बार बोलता था। उसकी बीबी और सुनंदा नरोत्तम के विवाह के बारे में मजेदार प्रश्न पूछते जा रहे थे।

लगभग दो घंटे के बाद नरोत्तम वहां से चला। इन्दिरा के प्रति उसके मन में घृणा भर आई थी। उसने सोच लिया था कि वह इन्दिरा के यहां कभी नहीं जाएगा।

उसने अपने इरादे को एक बार फिर दोहराया और चौरंगी पर चल पड़ा। वहाँ उसने 'सनीचर' नामक हिन्दी पत्र खरीदा और जाकर होटल में बैठ गया। चाय पीते-पीते उसको लगा कि वह इन्दिरा से न मिलकर अच्छा नहीं कर रहा है। आखिर वह उसकी कर्जदार है। उसे चलकर अपने रुपयों का तकाजा ही कर लेना चाहिए। तकाजे के लिए जाना भी एक आदमी की अपनी शान होती है। और उसने जल्दी-जल्दी चाय पीकर बिल चुकाया।

ट्राम वेलेजली की ओर जा रही थी। वह लपककर उसपर चढ़ गया। उतरा और इन्दिरा की बाड़ी की ओर गया। रोमी तुरन्त नीचे उतरा। सम्मान सहित ऊपर ले जाकर बोला, 'मुझे अब छुट्टी दीजिए, मैं शाम तक आऊंगा।'

नरोत्तम ने उसपर तुरन्त चोट की, 'क्यों, कोई बड़ा सौदा होने वाला है मिस्टर रोमी?' वह हंस पड़ा। रोमी उस हंसी से उदास हो गया। तभी इन्दिरा आ गई। रोमी पर व्यंग्य हुआ सुनकर वह ठिठक गई। फिर वह सब्यंग मुस्कराकर बोली, 'रोमी, तुम्हें उदास नहीं होना चाहिए, भरा पेट सदा खाली पेट पर हंसता ही है।'

रोमी ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चला गया।

उसके जाते ही इन्दिरा बोली, 'नरोत्तम, तुमने यह अच्छा नहीं किया। वह बेचारा अर्थ की तंगी के कारण बहुत परेशान रहता है।'

'मुझे यह मालूम नहीं था कि वह इतना गंभीर हो जाएगा।'

'अच्छा, पहले तुम यह बताओ कि कब आए। अरे, मैं भी कैसी पगली हूँ। तुम्हारे लिए चाय बनाना भी भूल गई।' नरोत्तम बोलने को उद्यत हुआ पर इन्दिरा ने उसे रोक दिया, 'तुम्हें चाय पीनी ही होगी। सच नरोत्तम, तुम्हें देखकर मैं ऐसा अनुभव करती हूँ कि जैसे खुशी का आलोक मेरे चारों ओर बिखर गया है।' उसने अपने भीतर फूटती हुई हंसी को बड़ी सावधानी से रोक लिया।

'लेकिन मैं चाय पीकर आया हूँ।'

'तब शाम का खाना हमारे यहाँ रहा, आज मेरी सालगिरह है। तुम्हारे लिए स्पेशल खाना पकाऊंगी।'

'लेकिन मुझे पांच बजे वाली गाड़ी से जाना है।'

'आज तुम नहीं जा सकते।'

‘क्यों ?’

‘मैं जो कहती हूँ ।’

‘पर वहां भी तो तृप्ति बीमार है ।’

‘तृप्ति !’ इन्दिरा कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली, ‘क्यों नरोत्तम, क्या तृप्ति तुम्हारे बिना ठीक नहीं हो सकती ?’

‘तुम गधी हो ।’ नरोत्तम ने चिढ़कर कहा, ‘हर बात गलत तरीके से ही सोचती हो । वास्तव में तुममें बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है । तुम पहले वाली इन्दिरा नहीं रही ।’

इन्दिरा ने उसका कर-स्पर्श करके कहा, ‘पर आज तुम वहां नहीं जा सकते । और हां, मैं तुम्हारे रूपए नहीं लौटा सकी । इसके लिए क्षमा मांगती हूँ ।’

इन्दिरा कुछ रुककर बोली, ‘आज शाम का खाना तुम यहीं खाओगे । आज मेरा जन्म दिन है । संसार में यदि प्रेम नाम की कोई वस्तु है तब तुम यहां से नहीं जाओगे ।... देखो रोमी कुछ सामान खरीदने के लिए गया है ।’

इस बार नरोत्तम को लगा कि इन्दिरा के स्वर में अपनत्व का अभाव है । उसका पूर्ण अभिनय व्यंग से परिपूर्ण है ।

‘इन्दिरा मैं जा रहा हूँ ।’

‘नहीं रुको ?’

‘नहीं ।’ वह उठ खड़ा हुआ ।

‘तब फिर जाओ, तृप्ति अच्छी लड़की है । तुम्हें सुख ही देगी ।’ वह सीढ़ियां उतरने लगा, इन्दिरा पीछे से बोली, ‘मैं तुम्हारे रूपए शीघ्र लौटा दूंगी ।’

और नरोत्तम सोच रहा था—रोमी के साथ रहते-रहते इन्दिरा में गहरा परिवर्तन आ गया है । उसकी भावुकता सिक्कों की टक्कर में बुझ-सी रही है । वह जान गई है कि संसार में रूपयों के बिना कुछ नहीं होता । कुछ नहीं होता ।

इन्दिरा के प्रति नरोत्तम के मन में फिर घृणा की लहरें उठने लगीं। वह घृणा उसके मानस-मन्दिर में धूम्र की उठती हुई लपटों की भांति आच्छन्न होने लगी। उसे महसूस हुआ कि उसके चैतन्य में घृणा के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

इन्दिरा जो पहले अपनी आन के लिए बड़े से बड़ा दुख भेल सकती थी वह रोमी की होकर कितनी दुर्बल हो गई है। वह गहरी आत्मीयता, स्नेह, प्यार का ढोंग करके उसे बनाती है। तब उसे लगा कि आपसी बन्धन मनुष्य को कमजोर कर देते हैं। वह भी कितना मूर्ख है। उसे दृढ़ होकर इन्दिरा से अपने रूप मांगने चाहिए थे पर वह न जाने कैसे अपनी इस दुर्बलता को त्याग पाएगा। वह उसके सामने जाकर क्यों दुर्बल बन जाता है ?

रेल अपनी रफ्तार से सटाक् सटाक् करती जा रही थी। नरोत्तम के हाथ में एक डिब्बा था, उस डिब्बे में एक बबुआ था, रबर का बबुआ। जिसे हिलाया जाता तो वह अपनी मधुर आवाज में कहता—‘मां !’

तृप्ति ने वह बबुआ मंगवाया था। क्यों ? वह मुस्करा उठा।

नरोत्तम को उसकी पुनः याद आई। एक दिन एक युवक उसे देखने आया था। उसे तृप्ति पसन्द आ गई थी पर दहेज को लेकर सारा मामला बिगड़ गया। यह भी कैसा समाज है। उसे समाज पर बड़ा ही रोष आया। उसका वश चलता तो वह इस अवस्था का आमूलचूल परिवर्तन कर देता।

विचारों की उथल-पुथल में वह वापस मिल पहुंचा। क्वार्टर में कदम रखते ही मोना ने प्रवेश किया।

‘नरोत्तम दा, दीदी आपको खूब याद कर रही है।’

‘क्यों ?’

‘मैं क्या जानूं ?’ उसने बाल स्वभाव से तुनककर कहा।

‘तू कुछ भी नहीं जानती ?’

‘नहीं तो, पर अनुपमा दादी कहती थी कि आप तृप्ति दीदी से प्यार करते हैं।’

‘छिः छिः छिः ! वह बिलकुल मिथ्या भाषण करती है। उपेक्षा के भाव का

प्रदर्शन करके नरोत्तम मन ही मन न जाने क्यों पुलकित हो गया ।

‘फिर आप वहां चले जाइएगा ।’

‘ठीक है ।’

नरोत्तम जब आफिस पहुंचा, तब मैनेजर गुलाटी सेठजी के पत्र पर मुनीम हरप्रसाद से बातचीत कर रहा था । नरोत्तम को देखते ही वे दोनों इस तरह उचक-कर खड़े हुए जैसे वे इस बात के प्रयास में हैं कि वे दोनों एक दूसरे से अधिक उसके शुभ चिन्तक हैं । गुलाटी ने तपाक से कहा, ‘सेठजी का पत्र आया है, उन्होंने लिखा है कि नरोत्तम बाबू जिसे उचित समझेंगे, एक दफे भेज देंगे ।’

नरोत्तम ने मुंह पर हाथ फेरकर कहा, ‘ठीक है, लेकिन इसपर इतनी जल्दी निर्णय कैसे किया जा सकता है ?’

मुनीम तुरन्त अपने कान में कलम खोंसता हुआ बोला, ‘आप ठीक कह रहे हैं, यह मामूली बात थोड़े ही है ।’

‘लेकिन मैं कल शाम तक यह निर्णय कर लूंगा कि एक बार कलकत्ता किसे भेजा जाए ? पद भी तो साधारण नहीं है ।’ नरोत्तम ने कहा ।

‘ठीक है ।’ गुलाटी ने कहा, ‘जब आप अपने कार्य से निवृत्त हो जाएं तो मुझसे मिलते जाइएगा । कुछ विशेष व्यक्तिगत बातें करनी हैं ।’

नरोत्तम ने स्वीकृति दे दी । तभी मुनीम बोला, ‘आज संझा को आपको मेरे यहां ही खाना खाने आना पड़ेगा । दाल की पूरियां और पकौड़े बनेंगे, उन्हें गर्मा-गर्म खाया जाए तभी मजा रहेगा ।’

‘आ जाऊंगा ।’ नरोत्तम ने मंद मुस्कान से कहा ।

उनकी स्वीकृति पाकर मुनीम ने गर्व भरी दृष्टि से मैनेजर की ओर देखा जैसे वह आंखों की भाषा में कह रहा हो कि मैं भी आपसे कम नहीं । कम नहीं ।

लगभग तीन घंटे पश्चात नरोत्तम गुलाटी से मिला ।

गुलाटी ने सिगरेट का कश खींचकर कहा, ‘आपके क्वार्टर के सम्मुख कोई तृप्ति नाम की छोकरी रहती है ?’

‘क्यों ?’

‘उसको लेकर यहां भिन्न-भिन्न चर्चाएं उठ रही हैं ?’

‘मतलब ?’ नरोत्तम एकदम गंभीर हो गया ।

‘आप यह भलीभांति जानते हैं कि प्रत्येक समाज में कुछ बुरे तत्त्व होते हैं जिनका काम सिर्फ एक ही है कि लोगों की कमजोर भावना को उभाड़कर उनसे अपनी अपराधी वृत्ति का शमन करना ।... मेरा मतलब यह है कि कल वे लोग कह रहे थे कि आफिसर होकर कामगारों की बहू-बेटियों पर कुदृष्टि नहीं रख सकता ।... और वह बेहूदा सोतन यहां तक कह बैठा कि थोड़े दिन पहले मैंने उस खोखी (लड़की) तृप्ति को नरोत्तम बाबू के कमरे में लगभग ६-१० बजे खिलखिला कर हंसते हुए देखा था । इस प्रकार का भ्रष्टाचार यहां नहीं चल सकता । ये सब बातें आपके वातावरण को दूषित कर सकती हैं ।’

नरोत्तम धैर्य से सुनता रहा ।

गुलाटी ने आगे कहा, ‘आप जानते हैं कि ये लोग निकृष्ट वृत्ति के होते हैं, दया नाम की वस्तु इनके दिमाग में बहुत कम होती है । कहीं अकेले देखकर छुरा-चुरा भोंक दिया तो अनर्थ हो जाएगा ।’

नरोत्तम ने संयत होकर कहा, ‘(मूर्ख लोग हर हंसी में पाप और हर सम्बन्ध में वासना की दुर्गन्ध देखते हैं) लेकिन हमें इससे भयभीत होकर कर्तव्य-विमुख नहीं होना चाहिए ।’

‘वह तो ठीक है । पर कहीं चोट-वोट कर दें तो ?’

नरोत्तम के तन में चोट की भयानक पीड़ा की काल्पनिक अनुभूति से सिहरन उत्पन्न हो गई । उसे अचानक राजिया का क्षत-विक्षत शव स्मरण हो आया । वह कांप उठा । उसे लगा कि ठीक उसी प्रकार उसे भी लोग एक नारी के कारण छुरों से छलनी कर रहे हैं और वह निडाल हुआ सड़क पर पड़ा है ।

नरोत्तम संभलकर बोला, ‘आपकी राय ठीक है । मैं तो विशुद्ध मन से इनकी सेवा कर रहा हूं । कालेरा के कारण बेचारे मजदूर भयभीत हैं । प्राणों का सम्मोह सबको है । इसपर भी यदि कोई मेरी सेवाओं का गलत अर्थ लगाता है, तब मैं कुछ नहीं कर सकता ।... जैसा एक आफिसर सेवा करता है, वैसी मैं भी कर दूंगा । मुझे भी ऐसे परमार्थ से क्या लेना है जो कि मेरे प्राणों का घातक हो जाए ।’

तभी गुलाटी ने प्रसंग को न समझते हुए अधिकारपूर्ण स्वर में कहा, ‘तभी

समझदारों ने कहा है कि मजदूरों को जागने मत दें, उन्हें सोचने मत दें, उन्हें स्वतंत्र न होने दें। यदि इनमें ये तीन गुण आ जाएंगे तो ये मालिकों की दुनिया अपने अधिकार में कर लेंगे।'

नरोत्तम इस दकियानूसी दलील का कोई उत्तर देना नहीं चाहता था पर बात को स्पष्ट करने के ख्याल से कहा, 'मजदूरों का जागना कोई नहीं रोक सकता, परंतु गुण्डागर्दी भी नहीं सही जाएगी।'

वह उठकर वहां से चला आया।

क्वार्टर में आकर वह उन्मन-सा पड़ा रहा। एकाएक उसकी दृष्टि तृप्ति के तोहफे पर पड़ी। तोहफे को देखते ही उसके मन में तृप्ति को लेकर कई भाव आए-गए।

वह सोचने लगा कि वह तृप्ति को अवश्य प्यार करता है। उसे उसके समक्ष इस सत्य को स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन उसकी आत्मा सदा उसे धोखा देती आई है। वह बहुत कमजोर और कायर है। वह कुछ भी नहीं कह सकता।

दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनकर उसका ध्यान भंग हुआ। वह उठा और द्वार खोल दिए।

मोना खड़ी थी गुमसुम-सी।

'क्यों मोना, कैसे आई हो?'

'मां पूछ रही है कि आप हस्पताल जाएंगे?' मोना का स्वर उदास था और आंखों में सजलता था।

'क्यों, क्या बात है?'

'बात कुछ नहीं है, दीदी का हृदय उदास है। मां पूछती है कि कुछ फल लेकर आप वहां जाएंगे क्या?'

नरोत्तम कलकत्ता से फल लाया था। उन्हें मोना को देकर कह उठा, 'मेरी तबीयत खराब है, इसलिए आज मैं वहां नहीं जा सकूंगा, तू ही चली जा।'

'मैं अकेली?'

'अरी डरती क्यों है?'

'मैं अकेली नहीं जाऊंगी, मुझे डर लगता है।' उसने रोनी सूरत बनाकर बड़े

ही कोमल स्वर में कहा ।

‘फिर ऐसा कर, किसीको साथ ले जा ।’

‘हां, ज्योत्स्ना चले तो मैं भी चली जाऊं ।’

‘तू उसे ही साथ ले जा और सुन ।’ कहकर नरोत्तम वह डिब्बा उठा लाया, ‘और यह डिब्बा अपनी तृप्ति दीदी को दे देना, उसे किसी नर्स को देना है ।’

‘ठीक है ।’

मोना और ज्योत्स्ना दोनों हस्पताल पहुंचीं । तृप्ति ने जाते ही पूछा, ‘आपना राधा पोका खेयचे—कहां है ?’

मोना ने विहंसकर कहा, ‘उन्होंने यह भेजा है ।’ उसने वह डिब्बा तृप्ति के हाथ में थमा दिया ।

‘नरोत्तम दा खुद क्यों नहीं आए ?’ तृप्ति ने बबुए को बाहर निकालकर पूछा ।

‘उनकी तबियत अच्छी नहीं है । वे कह रहे थे कि मेरे सिर में दर्द है ।’

‘उनके सिर में दर्द है ? देखो मोना, तू ज़रा उन्हें एनासिन दे देना । नरोत्तम दा बड़े लापरवाह हैं और अभी मौसम ज़रा भी अच्छा नहीं है । फिर उन्हें कालेरा की रोकथाम भी करनी है ।’ तृप्ति का कंठ भर आया, ‘मोना, अपने दादा की देख-भाल करेगी न ?’

‘हां ।’

तभी उसने उस बबुआ को उठाया और नीचे किया । बबुआ बोल उठा, ‘मां !’

मोना किलक उठी, ‘अरी दीदी, यह तो बोलता भी है—मां ! कितना सुन्दर है यह ! दीदी यह मुझे दे दे न ?’

ज्योत्स्ना अपने हृदय के भावों को नहीं रोक सकी । हाथ बढ़ाकर बोली, ‘दीदी, एक बार मुझे दे न, मैं भी इसे बुलाऊंगी ।’

तृप्ति ने उसे दे दिया । बबुआ बोल उठा, ‘मां !’

मां, मां, मां !

तृप्ति को लगा कि कण-कण में, अणु-अणु में एक ही शब्द गूंज रहा है—मां !

भावोद्रेक के कारण तृप्ति की आंखों में अश्रु आ गए। वह बोली, 'मोना, नरोत्तम दा को कहना कि वे एक बार जरूर आकर मुझसे मिल जाएं।'

'मैं कह दूंगी।' कहकर मोना वहां चुपचाप बैठ गई। तृप्ति उस बबुए को देखने लगी। मोना और ज्योत्स्ना स्टूलों पर बैठी थीं। वे आपस में धुल-मिलकर बातें करने लगीं।

मोना आहिस्ते से बोली, 'मैं नरोत्तम दादा को कहूंगी कि वे मुझे भी एक छोटा बबुआ ला दें।'

ज्योत्स्ना ने भी अत्यन्त भोलेपन से कहा, 'मैं भी दादा से कहूंगी कि वे मुझे भी एक बबुआ ला दें।'

मोना ने विस्मय से ज्योत्स्ना से पूछा, 'तू उस बबुए का क्या करेगी? मेरे वाले से ही खेल लेना।'

'क्यों? तू बात-बात पर कुट्टी करके बैठ जो जाती है?'

तभी तृप्ति ने कहा, 'अब तुम दोनों जाओ और नरोत्तम बाबू को भेज देना। ...हां, मां से कहना कि दीदी का दिल डूब-सा रहा है।'

इस बार मोना ने देखा कि दीदी का चेहरा एकदम उदास हो गया है। वह झटपट उठकर भागी। उसने घर जाकर मां को सारा हाल कहा। मां ने तुरन्त नरोत्तम को कहा। नरोत्तम ने लाख चाहा पर इस बार वह अपने को नहीं रोक सका। उसने कपड़े बदले और हस्पताल की ओर चल पड़ा।

संध्या का धानी आंचल क्षितिज की शोभा-श्री को बढ़ा रहा था। नदी का जल किरणों के कारण इस तरह चमक रहा था जैसे प्रकाश के छोटे-छोटे टुकड़े जल-राशि में तैर रहे हों। डूबते सूरज की हल्की रोशनी के आगे उड़ती हुई चील को देखकर दो-तीन बच्चे आपस में बातचीत कर रहे थे कि देखो वह चील सूरज देवता के पास जा रही है।

नदी में चल रही नाव पर बैठा एक मल्लाह चिउड़ा खा रहा था और दूसरा मूड़ी के फाँके मार रहा था। नरोत्तम नितांत मौन बैठा बबुए के बारे में सोच रहा था। उसके विचार बढ़ते गए और किनारा आ गया।

वह शीघ्र कदम उठाता हुआ अस्पताल में दाखिल हुआ। तृप्ति के पास गया।

तृप्ति बबुए को पास में बैठाए बुझी-बुझी आंखों से द्वार की ओर देख रही थी।

नरोत्तम को देखकर उसके अधरों पर सूखी मुस्कान नाच उठी।

‘कैसी हो?’

तृप्ति ने अत्यन्त हल्के स्वर में कहा, ‘नरोत्तम बाबू, दिल डूबा जा रहा है, सारे सीने में आग-सी लग रही है।’

नरोत्तम तुरन्त डाक्टर के पास गया। उसे सारा हाल कहा। डाक्टर उसे सांत्वना देते हुए बोला, ‘घबराने की कोई बात नहीं है। दवा मैंने दे दी है। आकुलता ठीक हो जाएगी।’

नरोत्तम ने आकर तृप्ति को जैसा डाक्टर ने कहा था, वैसा कह दिया। वह वहां बैठ गया—तृप्ति के ठीक सामने। तृप्ति कहने लगी, ‘नरोत्तम बाबू, क्यों मुझे बार बार लगता है कि मैं यहां से वापस नहीं जा सकूंगी।’

‘धत् पगली, हम तुझे एक-दो दिन में यहां से ले जाएंगे। रोहिणी तुझे खूब याद करती है। कहती थी कि इस बार तृप्ति का विवाह कर देंगे—वह भी खूब धूमधाम से।’

तृप्ति ने कहा, ‘कल रात मैंने एक स्वप्न देखा था। घोर मरुस्थल, आग की भांति दहकती बालू और उस बालू में अन्तहीन तृष्णा लिए पवन-वेग से भागता हुआ एक मृग। मृग क्या था—स्वर्ण-मृग! वह भागता रहा। उसे बार-बार अनंत सागर दीख जाता था पर बार-बार उसे निराश ही होना पड़ता था।... अचानक वह मृग अन्तहीन तृष्णा लिए उस चिलचिलाती धूप में मरने लगा। मुझे लगा कि वह बेचारा अवश्य प्यासा होगा, इसलिए मैं जल लेकर उस ओर भागी लेकिन व्यर्थ, सब व्यर्थ! वह बेचारा मर गया।... तृप्ति कुछ देर तक अपलक नरोत्तम की ओर देखती रही, ‘इस स्वप्न के बाद मेरा मन घबराता ही जा रहा है।’

‘तुम्हें वहम हो गया है।’ नरोत्तम ने गर्दन को झटका देकर कहा, ‘प्रायः स्वप्न का प्रभाव उल्टा ही होता है। मैं कहता हूं कि इस स्वप्न के बाद तुम्हें तुरन्त स्वस्थ हो जाना चाहिए। इस प्रकार के स्वप्न का आना अत्यन्त शुभ है।’ उसने उसे सांत्वना दी।

तृप्ति अपने दिल पर बार-बार हाथ फेर रही थी। ऐसा लगता था कि उसके

हृदय में दर्द है। उसकी आंखें भलमलाकर धुंधली हो गई। नरोत्तम उसे धुंधला-धुंधला-सा दीखने लगा। उसने आंचल से अपने अश्रु पोंछकर विनीत स्वर में कहा, 'मेरी एक अभिलाषा पूर्ण करेंगे नरोत्तम बाबू ?'

'तुम आज्ञा करो न ?' नरोत्तम ने शीघ्रता से कहा।

'देखिए, यदि मैं मर जाऊं तो आप मुझे वही साड़ी पहना देना जो आप कलकत्ता से लाए थे और आप मुझे जलाने जरूर चलना।' तृप्ति की आंखों से अश्रु ऐसे बह रहे थे जैसे कोई निर्बाध धारा बह रही हो। उसके स्वर में गहरी आत्मीयता छलक रही थी।

'फिर वही पागलपन।' नरोत्तम ने चिढ़कर कहा, 'रोहिणी कहती थी कि तृप्ति को इस बार मैं कलकत्ता ले जाऊंगी। वहां के अजायबघर में एक अजीब जन्तु आया है।'

'वह भी पागल है ?' तृप्ति ने टूटते स्वर में कहा।

तभी डाक्टर दास ने आकर कहा, 'मरीज को आराम की जरूरत है। उसे चुप रहने दीजिए।'

नरोत्तम ने उठकर डाक्टर दास से पूछा, 'क्यों डाक्टर साहब, कुछ खतरा तो नहीं है ?'

'नहीं, नहीं, खतरा कुछ भी नहीं है। यह लड़की बहुत जल्दी घबरा जाती है। स्वभावतः बड़ी कोमल है।'

नरोत्तम चला आया।

२२

निशा का तिमिर नदी के उस पार से इस तरह फैल रहा था जैसे कोई दैत्य काले पर्वत को कन्धे पर उठाए चला आ रहा हो। मजदूरों के घरों से निकलती हुई नागिन-सी बल खाती धुएं की लपटें ऊर्ध्व पथ की ओर जा रही थीं। नल पर अनुपमा दादी और शेफाली बुआ बैठी-बैठी बाल्टियां माज रही थीं ! कुछ लड़के

सब्जियों के थँले लिए हुए घरों की ओर लपक रहे थे ।

नरोत्तम मुनीम के 'घर से अभी-अभी खाना खाकर आया था । वह 'सामरसेट माम' का उपन्यास 'ह्यूमन बौडेज' अपने विचारों के आन्दोलन को रोकने के लिए पढ़ने लगा । उसने गहरे प्रात्मसंयम के पश्चात् अपने विचारों पर, अपने आपपर विजय पाई और उसने आगे की पंक्तियाँ पढ़ीं—हेवर्ड के आगमन से फिलिप को अत्यन्त लाभ हुआ । हर दिन उसके विचार मिल्ट्रेड पर कम से कम केन्द्रित रहने लगे । अतीत की ओर वह घृणा से देखने लगा । उसकी समझ में न आ सका कि ऐसे प्रेम के असम्मान के सम्मुख वह कैसे झुक गया था, और जब वह मिल्ट्रेड के बारे में सोचता तो क्रोधपूर्ण घृणा के साथ ही, क्योंकि उसीके सम्मुख उसे अपनी हीनता प्रदर्शित करनी पड़ी..... फिलीप को लगा—उसका पुनर्जन्म हो रहा है । वह अपने को घेरने वाली हवा में इस तरह सांस लेने लगा जैसे उसने उसमें कभी सांस न ली हो, और दुनिया की हर बात में उसे बच्चों का-सा आनन्द आने लगा ।

लेकिन नरोत्तम को लगता है कि उसे भी अपने अतीत के प्रति घृणा है । इन्दिरा को वह इस तरह भुला देना चाहता है जिस तरह वह उसके जीवन में आई ही नहीं । लेकिन वह चालवाज और प्रभावशाली इन्दिरा हर बार उसे पराजित कर मुस्कराती रहती है । उसे उससे घृणा है । पर उससे भेंट करना नहीं चाहता, उसे अब उसका स्वभाव भी गड्ढे के रुके हुए गन्दले पानी की तरह दुर्गन्धमय लगता है । लेकिन फिर भी वह उसकी ओर लोहे की तरह खिंचा चला जाता है जैसे वह चुम्बक है ।

जैसे उसके विचारों के ऊपर कोई अन्य शक्तिशाली भावना अपना कार्य कर रही है जो उसके चाहने पर भी उसे विपरीत दिशा की ओर चलने को विवश करती है । वह उसके निर्देश पर विवश बालक की तरह चलता है । ठीक उसी तरह मचलकर वह बीच-बीच में रुकता अवश्य है किन्तु फिर उसे कोई आज्ञा देता है 'चल', और वह चल पड़ता है । सचमुच मनुष्य अपनी कई अज्ञात आंतरिक भावनाओं का गुलाम है ।

नरोत्तम ने पुस्तक एक कोने में रख दी । अतीत की स्मृतियाँ आज उसे उपहास भरी लगी । वह कितना कायर था ? एक घटना से आतंकित होकर घर से

भाग आया और फिर कभी लौटकर गया ही नहीं। वह कैसा पुंसत्वहीन अतीत है। वह उसे भूल जाएगा। वह अब नए सिरे से अपने जीवन को ढालेगा। कायाकल्प करेगा। वह अब तृप्ति को स्पष्ट कहेगा कि वह उसे प्यार करता है। वह इन्दिरा को भी सावधान करेगा कि वह शीघ्र ही अपने सारे सम्बन्ध व बन्धन उससे तोड़ेगा। उसे उससे ज़रा भी मोह नहीं, ज़रा भी लगाव नहीं। वह उससे घृणा करता है, घृणा।

इस प्रकार वह विचारों के सीमाहीन लोक में अदृश्य पवन-सा उड़ता रहा। न कोई उसका रुकाव था और न कोई उसका विश्राम !

लगभग रात के दस बजे उसे ऐसी अनुभूति हुई जैसे वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। चंद घड़ी की घोर निद्रा ने उसकी पुंसत्वहीन पुरातनता को नष्ट कर डाला है और उसे नवीन बना दिया है। उसे लगा कि उसकी समस्त भावनाएं बदल गई हैं। वह स्वस्थ है, काफी स्वस्थ और एतदम बदल गया है।

उसने उसी समय इन्दिरा को एक पत्र लिखा। उसे विश्वास था कि अन्तर में आए नूतन उद्गारों को यदि ठोस आधार भूमि देकर परिपक्व नहीं किया गया तो वे बदल भी सकते हैं। अतः उसने बड़ी शान्ति और विद्वत्ता से पत्र लिखा— इन्दिरा,

एक दिन रेल में मुझे सुबोध मिल गया था। गेरुए वस्त्र पहने हुए वह ओजस्वी युवक तुम्हारे साथ अन्याय करने के बाद कितना बदल गया है ! तुम्हारी उपेक्षा और तुमसे त्यक्त होने के बाद उसकी अन्तरात्मा में पावन आलोक की सृष्टि हो गई है और वह नारी जाति का अपूर्व सम्मान करने लगा है। उसने मुझे जीवन के कई सूत्र बताए। उनमें एक यह भी है कि मनुष्य नारी के अन्तःकरण के असीम लोक के एक छोर को भी पूर्ण रूप से नहीं समझ सकता। उसका यह कथन वास्तव में बड़ा ही विचारणीय है। मैं तुमसे पहले पहल मिला। रवीन्द्र-संगीत की पुनीत स्वर-लहरियों के महासागर में तन्मय तुम मुझे मीरां-सी महान और शुचि-शुभ्र लगीं। मैं तुम्हारी ओर आकर्षित हुआ। मैंने तुम्हारे ही कारण तुम्हारे परिवार से अपने आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किए। फिर हमारा और तुम्हारा यहां साथ हुआ। तब मैंने जाना कि तुमने अपने पति का त्याग कर दिया है। क्या नारी की उस उत्सर्ग

की भावना के लिए तुम अवरोधक पत्थर नहीं हो ? जिस भावुक बंगाली समाज में नारियां समिधा की तरह सर्वस्व अर्पण करती हैं—वहां तुम सन्ध्या को लौटे हुए अपने स्वामी को क्षमा नहीं कर सकती थीं ? क्या वह क्षम्य भी नहीं था ?...पर तुममें हमेशा से परिवर्तन के प्रति सम्मोह की अधिक मात्रा रही। तुम प्रत्येक वस्तु से तुरन्त ऊब उठती हो। यही तुम्हारा स्वभाव है। पुरानी काया, नया शरीर ! रूढ़ अर्थ में इन शब्दों को मत लेना, आधुनिक अर्थों में मैंने इनका उपयोग किया है।...फिर भी तुम्हारी भावुकता और परिवार के प्रति उत्तरदायित्व ने मुझे बहुत ही प्रभावित किए रखा। इतना सब कुछ जानते हुए तथा एक भय की भावना लिए भी मैं तुमसे सम्बन्ध बनाए रखना चाहता था। क्यों ? इसका उत्तर मेरे पास नहीं है।

एक दिन तृप्ति की ईर्ष्या ने तुम्हारे पाप को प्रकट दिया। तृप्ति नारी है न, वह यह समझती थी कि तुम मुझे बहका रही हो। नारी-ईर्ष्या, जलन और द्वेष ! तब उसने तुम्हारा रहस्य सबके सम्मुख प्रकट कर दिया। लाचार तुम्हें यहां से भाग जाना पड़ा।

फिर रोमी और तुम्हारा नया जीवन।

इस नए जीवन में तुम इस परिधि के छोर पर पहुंच गई हो जहां व्यक्ति अति आधुनिक और अति भौतिक बन जाता है। तुमने मुझे कई बार बहलाया, इसे मैं क्या कहूं ? छल या जघन्यता ? तुम यह जानती हो कि नरोत्तम मुझे कुछ भी नहीं कह सकता। वह मुझे कभी इन्कार नहीं कर सकता। अतः तुम मुझे भौतिक जगत में ही नहीं, भावना जगत में ठगने लगी। आज मैं तुम्हें साफ शब्दों में कह देना चाहता हूं कि तुम मेरे उपकारों को भूल जाओ। मैं तुमसे जरा भी सम्बन्ध रखना नहीं चाहता और न ही मैं इस पत्र का उत्तर ही चाहता हूं। बस तुम मुझे अपने से अलग, बिल्कुल अलग समझो।

—नरोत्तम

पत्र को समाप्त करके नरोत्तम को लगा कि वह बड़ी भारी चिंता से मुक्त हो गया है। उसके सिर पर जो शेषनाग की थाती जैसा बोझ था, वह हल्का हो गया है। वह उस पत्र को लिफाफे में बन्द करके छत की ओर इस तरह भागा जैसे

उसे अपने आपसे भय है, अपने विचारों से वह आतंकित है। उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि हवा का जोर का भोंका उसके पत्र को उड़ाकर कहीं दूर ले जा सकता है ?

एकान्त, शून्य, शांति !

वह छत पर बैठा क्षितिज के असीम अनंत अन्धकार की ओर देखने लगा। एकाएक उसे सुनाई दिया, 'आपनार माथा पोका...खेयचे !'...वह चौंक पड़ा। उसने सेन साहब के घर की ओर देखा, वहां कोई नहीं था। वह छत की दीवार पर बैठ गया।

विचारने लगा। सुख-दुख ! शांति-हाहाकार ! विजय-पराजय और न जाने क्या-क्या ? उसकी विचारधारा जंगल के ऊबड़-खाबड़ मैदान की नदी की तरह बहती रही।

उसने एक निर्णय किया कि तृप्ति से सवेरे ही जाकर कहेगा कि वह उसे प्यार करता है। वह नारी उसके प्रति कितनी श्रद्धा और कितना प्यार रखती है। उसमें कितनी उत्सर्ग की भावना है।

'नरोत्तम बाबू, नरोत्तम बाबू !' नीचे से श्रीमती सेन की आवाज आई।

'क्या है ?' नरोत्तम ने व्यग्रता से पूछा और भागता हुआ नीचे आया।

'देखिए न, कितनी पागल है तृप्ति, ऐसी दशा में वह आपकी साड़ी पहनकर बैठी है। कहती है कि नरोत्तम दा से कहना कि वह मुझसे अन्तिम बार आकर मिल जाए। जब तक वे नहीं आएंगे तब तक यह सांस इस तन से नहीं निकलेगा। मैं प्रतीक्षा करूंगी—अनंत काल तक उनकी प्रतीक्षा करती रहूंगी।'।

नरोत्तम ने अपने भावों को दबाकर कहा, 'वह पागल है, बहुत जल्दी घबरा जाती है। मैं सवेरे जाकर मिल आऊंगा।'।

श्रीमती सेन कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही।

'वैसे उसकी तबीयत कैसी है ?' नरोत्तम ने हठात् पूछा।

'बार-बार कहती है कि दिल बैठा जा रहा है, दिल में दर्द हो रहा है। बात यह है नरोत्तम बाबू ! उसकी तबीयत ठीक नहीं है।'।

'डॉक्टर ने इंजेक्शन दिया ?'

‘हां !’

‘फिर आराम हो जाएगा ।’

श्रीमती सेन की आंखें सजल हो गईं । बोली, उसका उदास मुख देखकर मुझे रोना आ गया । आज वह भरपूर स्वर में कहने लगी—मां, अब तुम्हें तृप्ति के लिए सुख-दुख नहीं उठाने पड़ेंगे । उसके लिए चिंतित नहीं होना पड़ेगा । देखो न मां, तरुण लड़की मां-बाप की निद्रा हरण कर लेती है । अब तुम बहुत मधुर निद्रा में सोओगी, ऐसी मधुर निद्रा में जो मनुष्य को सभी कष्टों से मुक्त कर देती है ।’ श्रीमती सेन ने आंचल से अपने अश्रु पोछे ।

नरोत्तम ने कहा, ‘वह अभी बच्ची है न ! उम्र से नहीं, ज्ञान से । मेरी समझ में यह पूर्ण नारी बनकर भी बच्चों जैसी ही रहेगी ।’

‘आप सवेरे जाकर मिलकर आइएगा ।’ श्रीमती सेन ने विश्वास से कहा ।

‘हां,हां ! आप निश्चित रहिए ।’

श्रीमती सेन चली गई । नरोत्तम अपने हृदय में आशंकाओं का बवंडर छिपाए पुनः छत पर आ आया ।

नदी से अनवरत आती हुई सरसर ध्वनि रात्रि की शांति को भंग कर रही थी । कभी-कभी रात्रि-चिड़िया बोलकर उड़ जाती थी । कोई मल्लाह इस मूकता में बंगाल की भाव-भूमि का निरंतर मानव-हृदय को स्पंदन करने वाला लोक-गीत गा रहा था । उसका स्वर संगीत की तरह मन को आलोड़ित-विलोड़ित कर रहा था ।

और नरोत्तम अपने अंतःकरण के विचार-लोक में नवीन निगूढ़ आलोक का दर्शन करने लगा । उसे लगा कि तृप्ति ही उसके विचारों और हृदय की प्रेरणा है । वह उसके अनुकूल है । उसमें एक नारी का त्याग, शील और ममत्व है । वह उसे ही अपनी जीवन-संगिनी बनाएगा । यह आसक्ति और प्रथम दृष्टि जनित प्रणय से उत्पन्न स्नेह धीरे-धीरे हृदय में प्रादुर्भूत होने वाली स्थायी और अनुरक्तिपूर्ण निधि बन जाएगा । वह तृप्ति के लिए सर्वस्व विसर्जन करेगा ।’

विचार, आंदोलन और निर्णय !

उसे तंद्रा-सी आ गई ।

पवन का मर्मर-संगीत उसके कर्ण-कुहरों में गूँज रहा था जैसे पवन गहरी आत्मीयता और वात्सल्य से चिंताओं में उन्मन नरोत्तम के लिए निद्रा का आह्वान कर रहा हो और उसे अपना ही अंश समझकर ममत्व से ओतप्रोत स्वर में लोरी सुना रहा हो :

आय रे पाखी लेजभोला

आमार खोकन के लिए गाछे तोला

(आ पूँछ लटकी चिरैया, मेरे मुँह को लेकर इस पेड़ पर चढ़ जा ।)

लोरी का शाश्वत संगीत मध्य में खंडित हो गया । नरोत्तम ऐसे चौंककर जागा जैसे वह कोई भयानक स्वप्न देख रहा हो । उसका सारा तन पसीने से लथपथ था । घड़ी देखने पर मालूम हुआ कि रात का एक बजा है ।

नरोत्तम ने अपने आपसे कहा, 'मुझे तृप्ति ने पुकारा ? कहां से पुकारा ? अरे यहां तो कोई नहीं है, फिर यह आवाज ?'

वह उद्विग्न होकर इधर-उधर देखने लगा । अंधकार और उसकी शून्यता ।

'अभी तो तृप्ति ने कहा था कि तुम आओ, देखो न मेरा दम घुटा जा रहा है । इस बार देर कर दी तो सच कहती हूं नरोत्तम इस जीवन की संध्या अंतर के समस्त बंधनों को तोड़कर मुक्त हो जाएगी ।'

नरोत्तम बंदी की भांति छटपटाने लगा । उसे लगा कि बार-बार उसे कोई कह रहा है कि तृप्ति का अंत आ गया । वह केवल उसकी प्रतीक्षा कर रही है, इस तरह जिस तरह स्वाति-बूंद की चातकी ।

मंथन, आशंकाएं और वाचालता !

वह उठा और जमादार के पास गया । अनुनयभरे स्वर में बोला, 'भैया, जरा अस्पताल तक मेरे साथ चलियो न !'

'पर क्यों ?' जमादार ने कहा ।

'तृप्ति की तबीयत ठीक नहीं है ।'

जमादार करवट बदलकर बोला, 'आप बावले हो गए हैं नरोत्तम बाबू । कोई सपना देख लिया होगा । आराम से जाकर सोइए, नहीं तो लोग आपकी तरफ अंगुलियां उठाने लगेंगे ।'

‘कुछ भी हो लेकिन तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा ।’

‘माफ करियो बाबू साहब, मैं अभी नहीं चल सकता । आप पगला गए हैं । मैं नहीं पगलाया ।’

अधिक बहस नरोत्तम को अच्छी नहीं लगी । वह भागता हुआ मुनीम के पास आया । मुनीम ने नरोत्तम को पूरे पांच मिनट तक धाराप्रवाह उपदेश दे दिया कि आपको इस तरह छिछलापन नहीं करना चाहिए । यहां के आदमी साफ-साफ शब्दों में कह देंगे कि ये बाबू लोग हमारी इज्जत पर डाका डालते फिरते हैं । आप आराम से सोइए, सवेरे चलेंगे ।

नरोत्तम हताश हो गया ।

लेकिन उसका अन्तर्मन उसे बार-बार कचोट रहा था, ‘तृप्ति की दशा अच्छी नहीं है । वह मेरी प्रतीक्षा कर रही है । वह मेरे जीवन-कुसुम का सौरभ है । मैं उसे पूर्ण आत्मा और हृदय से प्रेम करता हूं । मैंने उसे अपनी कल्पना के पूर्ण सौन्दर्य और आस्था के साथ अपनी प्रेयसी स्वीकार किया है । उसे मैं इतनी सरलता से विनष्ट नहीं होने दूंगा । नहीं होने दूंगा । अभी जाऊंगा । अभी ।’

वह दृढ़ता के साथ अकेला ही चल पड़ा ।

नदी के उस पार से आती हुई सांय-सांय हवाएं विचित्र भय का संचरण कर रही थी । नदी में खड़ी काले रंग की नाव का मस्तूल उसे पौराणिक दैत्य-सा लगा । उसके मन का भय जागा और वह पलभर में कांपकर स्थिर हो गया । उसने मस्तूल को ध्यान से देखा, फिर अपने भ्रम को मिटाकर आगे बढ़ा कि ओह यह तो नाव का मस्तूल है ।

हर क्षण नवीन कल्पना की सर्जना करता हुआ वह नदी के पास पहुंचा । हटात उसे धक्का-सा लगा कि कहीं नाव नहीं मिली तो ? उसका अन्तस् व्यथा से भर आया । उसने किनारे पर खड़ी नाव के एक मल्लाह से पूछा, ‘भाई उस पार चलोगे ?’

‘चलेगा, बोल कितना पैसा देगा ?’

‘जितना तुम चाहेगा ।’

‘दो टका (रुपए) लेगा ।’

‘देगा ।’

नाव के हरिकेन की रोशनी तेज हो गई। जगह-जगह से फ़टा हुआ पाल खुल गया और नाव उस किनारे की ओर चल पड़ी।

नरोत्तम बार-बार मल्लाहों से कह उठता था, 'अरे भाई, तड़ातड़ी करो, अरे भाई, तड़ातड़ी करो...'।

कभी-कभी मल्लाह भी भुंभुलाकर कह उठते थे कि कर तो रहे हैं, कर तो रहे हैं।

नाव की गति बहुत तेज थी पर नरोत्तम को लगता था जैसे वह बहुत धीमे-धीमे चल रही है। पतवारें जो एक मिनट में तीन बार चलनी चाहिएं, वह हर तीसरे मिनट पर एक बार चलती हैं। उसे मल्लाहों पर गुस्सा आ गया। लेकिन वह लाचार था। चुपचाप बैठा रहा।

नाव दूसरे किनारे पर पहुंची। वह शीघ्रता से उतरा। मल्लाहों को पैसा देकर कहा कि तुम मुझे वापस ले चलना।

अस्पताल के दरवाजे पर सिस्टर खड़ी थी। सिस्टर की अपलक दृष्टि रास्ते की ओर लगी हुई थी।

‘कसी हालत है सिस्टर?’

‘डाक्टर की राय है कि अब आप इसे घर ले जाइए।’

नरोत्तम के पांव धरती से चिपक गए। वह यंत्रवत तृप्ति के पास पहुंचा। निद्रा में निमग्न वह अचल सोई थी। उसकी गोद में चिर अभिलाषा की अपूर्णता का प्रतीक वही बबुआ था। उसने भावोद्रेक में आकर उस बबुए को उठाया। घुमाया। बबुआ कह उठा—‘मां!’

नरोत्तम की आंखें सजल हो उठीं।

सिस्टर ने जाकर डाक्टर को कहा। डाक्टर दास आए।

उन्होंने संतप्त स्वर में कहा, ‘यह थोड़ी देर की मेहमान है। आप इसे अब ले जाइए।’

‘तृप्ति उससे चिर विदा ले रही है।’ सोचकर वह सिसक पड़ा।

सिस्टर ने बताया कि उसने बार-बार आपको ही याद किया था। हर क्षण उसकी दृष्टि आपके नाम के साथ द्वार की ओर उठ जाती। नरोत्तम को लगा

कि उस जैसा इतना भाग इस संसार में कोई नहीं है। वह कुछ नहीं बोला। स्ट्रेचर पर लिटाकर वह उसे अस्पताल के मुख्य द्वार तक ले आया। बाद में उसने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

वही साड़ी, वही बबुआ और वही ...!

तरणी मन्द-मन्द मन्थर गति से महायात्रा के यात्री को लिए चल पड़ी। नरोत्तम एक टक तृप्ति को देख रहा था। उसने सुन रखा था कि जब दीया शेष होता है तब एक बार अत्यन्त प्रखरता से चमकता है। लेकिन तृप्ति ने तो चिर खामोशी अभी से ही धार ली है।

अप्रत्याशित तृप्ति ने नेत्र खोले। उनमें अधूरी साध, लालसा और प्रार्थना थी।

बोली, 'नरोत्तम बाबू, तुम अच्छे हो न, मुझे क्षमा कर देना'..... फिर वह व्यथित मुस्कान को अधरों पर लाती हुई आहिस्ते से रुक-रुककर कहने लगी—
आपनार...माथा...पोका...खेयचे।

स्वर टूट गया।

तृप्ति के हाथ में अब भी बबुआ था।

नरोत्तम चिंघाड़ पड़ा, 'तृप्ति !'

मल्लाह नेत्र मूंदकर खुदा से प्रार्थना करने लगे।

नरोत्तम को लगा कि नाव भंवर में आ गई है। सरिता बुभुक्षित की भांति चिंघाड़ रही है। उल्कापात के कारण नभ के समस्त तारागण टूट-टूटकर गिर रहे हैं। वह दोनों हाथों से सिर पकड़कर सिसक उठा। दुख, संताप और पीड़ा से उसका अंग-अंग फटने लगा पर वह लाचार था, मजबूर था। थोड़ी देर के बाद उसे लगा कि मल्लाह शांति के साथ पतवार चला रहे हैं। उनके होंठ प्रभु की अभ्यर्थना के लिए तड़प रहे हैं। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। प्रकृति और चराचर सभी समवेत स्वर में गा रहे हैं—हे ईश्वर, मृत आत्मा सुख और संतोष पाए। हम प्रज्ञा-हीन सदा तृष्णा के पीछे भटकते रहे हैं। तुम ही क्षमा प्रदान करोगे। हे प्रभु, हम क्षमा के पात्र हैं, हमें क्षमा करो।

प्रांगण में शव पड़ा था ।

सूर्य की पावन रश्मियों के पवित्र आलोक में तृप्ति का दाह-संस्कार किया जाएगा ।

श्रीमती सेन, सेन बाबू और मोना हृदयवेधक स्वर में चीख-चीखकर थक गए थे । अब वे गर्दन लटकाए पड़े-पड़े सिसक रहे थे जैसे मनुष्य को अन्त में थक ही जाना पड़ता है ।

लाश के ठीक सामने नरोत्तम अचल बैठा था । वह सोच रहा था, श्मशान के वैराग्य को लिए, एक संन्यासी की तरह कि यह रोना और तड़पना कैसा ? सारा संसार तृष्णा की अन्तहीन पीड़ाओं में जल रहा है । निविड़ तिमिर में जो अपराजेय और शाश्वत है, आलोक की, ज्योति की कामना कैसी ? सब नाशवान हैं, व्यर्थ हैं ।

तृप्ति गई । वधू बनने की चिर इच्छा लिए, वह चली गई ।

भावनाओं के अनंत पंख उड़ चले ।

तृप्ति चाहती थी कि उसे कुलीन वर मिले ।

कल्पना उड़ती गई—मरु प्रदेश के स्वर्णिम बालू के टीलों के आसपास छोटे-छोटे मिट्टी के घरों में गाती हुई लड़कियों के सम्मिलित स्वर के सन्निकट—

काचादाख, हेठ बनड़ी

पान चाबे, फूल सूँघे

करे ये बाबा जी सूं बीनती

बाबा जी देस देता, परदेस दीजो

म्हारी जोड़ी को वर हेरजो

हूँस खेल ऐ बाबा जी री बनड़ी प्यारी

हेर्यो ऐ फूल गुलाब रो

भावना अभिभूत नरोत्तम के मस्तक में साकार चित्र चित्रित हो गया । उसे लगा कि तृप्ति कच्चे अंगूर की लता के नीचे पान चबाती और फूल सूँघती अपने बाबा से विनती कर रही है : बाबा, देश के बजाय मुझे परदेस में कर देना पर मेरी

जोड़ी का वर देखना ।

और बाबा सेन विहंसकर कहता है—हंस-खेल बाबा की बेटी, मैंने तेरे लिए गुलाब का फूल देख लिया है ।

लेकिन तृप्ति को चांद-सा वर चाहिए । उसे इतने-से संतोष कहाँ ?
कह उठती है—

कालो मत हेरो, बाबा जी,
कुल नै लजावे
गोरो मत हेरो, बाबा जी,
अंग पसीजे
लांबो मत हेरो, बाबा जी,
सांगर चूटे
ओछो मत हेरो, बाबा जी,
बन्यू बतावे

नरोत्तम आत्मसात कर लेता—न उसे काला चाहिए क्योंकि वह कुल को लजाता है, गोरे की भी उसे जरूरत नहीं है, क्योंकि वह अधिक श्रम नहीं कर सकता । वह बार-बार पसीने से तर हो जाएगा । न अधिक लंबा कि खेजड़े से फलिया तोड़ सके और न बौना ही ।

फिर ?

तृप्ति उसे ललककर कहती है—मुझे तेरे जैसा वर चाहिए, तेरे जैसा ।
नरोत्तम के अधरों पर हंसी बिखर जाती है ।

कल्पना मधुर होती ही जाती है—

विवाह हो जाता है ।

बंगाल की वसुन्धरा महक उठती है ।

वर-वधू !

राधा-कृष्ण ! !

नरोत्तम और तृप्ति ! ! !

जूआ ! पाशों की क्रीड़ा ।

लड़कियों का समवेत मधुर स्वर—

राधा कृष्ण खेले पाशा आनंद अपार

पाशाय यदि हारे भगवान

मोहन बंशी करबे दान

राधा हरले दिवे मुक्ताहार

राधा कृष्ण खेले पाशा आनंद अपार ।

वर अंत में पराजित हो जाता है ।

वधू की सखियां प्रमोद और उल्लास में भूम जाती हैं ।

फिर स्मृति-पटल पर चिर पुरातन और चिर नवीन चित्र शनैः-शनैः मुखरित होता है ।

तृप्ति दुल्हन बन जाती है । वधू झिलमिल घूंघट की ओट में चिरन्तन नारी-सुलभ लज्जा की अंजली अपनी मादक अंखियों में भरे हुए आई है । अन्तरिक्ष में धूमकेतु की भांति दीप्त उसकी आनन-श्री पर आवरण देखकर नरोत्तम मन ही मन कह उठा, 'अरे, अपने प्रभु से यह आवरण कैसा ? हम और तुम एक प्राण दो तन हैं ।'

तृप्ति अपने में और सिमट जाती है ।

'देखो तृप्ति, मैं तुम्हारी पगध्वनि सुनने के लिए युग-युगान्तर से आकुल आतुर हूँ । तुम अपने स्वर्गीय घुंघरुवों की अलौकिक ठुमक-ठुमक सुनाकर मुझे मुग्ध करो ।

'देखो तृप्ति, मेरे ये भटकते नेत्र इस असीम शून्य में निरन्तर ज्वलित उस दीपक को ढूँढ़ रहे हैं जिसके दर्शन मात्र से नेत्रों का भ्रम दूर हो जाता है और वे अपने अपराध का दर्शन तुरन्त कर लेते हैं । तुम पूछोगी कि वह दीपक कहाँ है और मैं कहूँगा तेरा मुख !'

तृप्ति अपने मंगल मुख से आवरण हटा लेती है । शुभ्र ज्योत्स्ना से कक्ष प्रकाशित हो जाता है ।

वह नाटकीय प्रेयसि की तरह भावोद्वेलन को अपने सौन्दर्याभिमुख आनन पर लिए नरोत्तम के समीप आती है । कहती है—'प्राण ! स्तब्ध रात्रि के मौन क्षणों

मैं नीरव तारागण की मन्द ज्योत्स्ना के अंचल के नीचे मैं तुम्हारी निर्निमेष दृष्टि से प्रतीक्षा करती रही हूँ। धरित्री के कम्पन के साथ मुझे प्रतीत होता था कि किसी-के चरण मेरी ओर बढ़ रहे हैं। मैं वियोगिनी की तरह यंत्रवत् मदिर नयन में शाश्वत व्यथा बसाए उसे देखती थी। लेकिन मुझे हताश होना पड़ता था। वे चरण तुम्हारे नहीं थे; वे चरण थे मलय के, जो पर्वतों के श्रृंग से प्रकृति को लुभाने विश्व के इस अनंत पथ पर विचरण कर रहे थे। पर मैं तो तुम्हारे लिए पागल थी। 'और आज वह दिन आ गया जब मैं तुम्हें अपना महासमर्पण करूंगी। अकिंचन हूँ, विराट में मिल जाऊंगी। ससीम हूँ—असीम में विलीन हो जाऊंगी।

‘प्रभु ! मुझे स्पर्श कर !

‘प्रियतम मुझे अपने आलिंगन में आबद्ध कर !

‘अपने पीयूषवर्षक चुम्बनों द्वारा मेरे तीन लोक को जगमगा दे।

‘मेरे शत-शत बन्दनों को कृतार्थ कर।

‘ए मेरे प्रियतम, मैं अब पूर्ण रूप से तेरी हूँ।’

नरोत्तम ने तृप्ति की ठोड़ी उठाकर कहा, ‘तुम जानती हो कि मैं बहुत भय-भीत और चंचल हूँ। युगों की मेरी साध आज पूर्ण हुई है। मेरे अन्तराल के विचारों की अनुगामिनी तू है। इसलिए मैंने तुम्हें अपने सुषुप्त व डरपोक मानस का जाग्रत निर्भय प्रभु मान लिया है।

‘आ, महामिलन के पवित्र क्षणों से जीवन की सार्थकता को पूरा करें।’

कल्पनाओं के वितान बुनते गए।

स्वर्णिम व अलौकिक !

‘प्रिय मिलन के इन आतुर क्षणों की समाप्ति के पूर्व यह भ्रंशा कैसा ? आह, मेरे और तेरे ये अटूट बन्धन खंड-खंड हो रहे हैं।’ नरोत्तम कांपने लगा।

भ्रंशा पूर्ण वेग से उठने लगा।

देखते-देखते उस भ्रंशावात के अन्धड़ में नरोत्तम से तृप्ति दूर, बहुत दूर हो गई। वह उसे पुकारता रहा।

पर कहां ?

वह अन्धकार अमर हो गया।

नरोत्तम मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

जब वह चैतन्य हुआ तब उसके सम्मुख उसकी प्रतिकाय खड़ी थी। वह प्रतिकाय बड़ी बलिष्ठ थी। उसने अट्टहास करके कहा, 'अरे वह मिलन स्वप्निल था। वास्तविकता यह है कि तुम्हारी कायरता के कारण उस आराधिका को प्राण देने पड़े।

‘देख वह क्या?’

नरोत्तम की कल्पना बीभत्स हो गई।

उसने देखा कि उसके सम्मुख तृप्ति का निर्जीव-निश्चल शरीर पड़ा है। उसका मन हाहाकार कर उठा।

सिसकियों की धीमी ध्वनि ने नरोत्तम को भावलोक से कठोर प्रस्तर पर ला पटका।

उसने सोचा कि वह भी अपराधी है जिसके कारण तृप्ति अपने अधूरे स्वप्न लेकर मर गई।

लाश उसके समक्ष पड़ी थी।

श्रीमती सेन अब भी सिसक-सिसककर निद्रा की गोद में सोई रो रही थी। सेन साहब एक कोने में अभी अश्रुपूर्ण नेत्रों से समाधिस्थ नरोत्तम को देख रहे थे। मोना कमर के बल लेटी सिसक रही थी।

‘जो होना था, वह तो गया नरोत्तम बाबू!’

‘मरण पर किसीका अधिकार नहीं है।’

‘कल हंस-हंसकर सबको प्रसन्न करती थी और आज...’

नरोत्तम चुप रहा। उसकी भारी पलकों से फिर अश्रुस्राव होने लगा। सेन साहब नभ की ओर दृष्टि किए बैठ गए।

तृप्ति को देखकर वह अपने आपसे कह उठा, ‘तृप्ति, तुम मुझे क्षमा करना। मैं सदा तुमसे यह कहना चाहता था कि मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूँ पर तुम्हारे सम्मुख आते ही, मेरा साहस न जाने कहां लुप्त हो जाता था। मैं सदा यह विचारता था कि अपने मन-मन्दिर की कल्पना की प्रतिमा तुम्हें बनाऊंगा, और यही सोचकर मैं अर्चन और समर्पण की भावना लिए तुम्हारे पास आता, पर न जाने

मेरी वाणी को क्या हो जाता था ? यह समाज, यह उसकी सड़ांध, यह उसकी संकीर्ण भावना, मैं आफिसर और तुम मजदूर की बेटी ! सम्बन्ध पाप, मैं हार गया । मेरे मन की मेरे मन में ही रह गई तृप्ति !'

आकाश-गंगा की ज्योतिर्धारा में मयूर-रूपा तरणी पर बैठी हुई तृप्ति चली गई । नरोत्तम ने देखा कि वह परियों-सी कोमल और सुन्दर है । उसके मुख पर सहस्र-सूर्यो-सा प्रकाश और तेज है ।

पर यह लाश ?

उफ़ ! वह बार-बार क्यों सुखदायी कल्पनाओं में विचरण कर अपने को मर्मन्तिक पीड़ा पहुंचा रहा है ?

वह तो मर गई है । उसके प्राण-पखेरू उड़ गए हैं । यह मिट्टी है, मिट्टी । पंचतत्त्व की भौतिक काया पुनः पंचतत्त्व में विलीन हो गई ।

मरण...मरण...!

उसकी वेदना विश्व कवि की अमरवाणी में फूट पड़ी—

वरणमाला गांधा आछे

आमार चित्तमाभे,

कबे नीरव हास्य मुखे

आसबे वरेर साजे ।

सेदिन आमार रबे ना घर,

केइ बा आपन, केइ बा अपर

बिजन राते पतिर साथे

मिलबे पतिव्रता ।

मरण, आमार मरण, तुमि

कओ अमारे कथा ।

—मैंने अपने अन्तर में वरमाला गूँथ रखी है, उसे स्वीकार करने के लिए तुम किस समय अपने मुख पर नीरव मुस्कान लिए आओगे ? उस दिन मेरा घर नहीं रहेगा तथा यह पतिव्रता उस निर्जन रात्रि में अपने पति के साथ मिल जाएगी । हे मरण, हे मेरे मरण, तुम मुझसे बातें करो ।

वह धीरे-धीरे गुनगुनाता रहा, गुनगुनाता रहा, सिसकता रहा । शेष रात उन सबकी सिसकियों में डूबी और बीत गई ।

२४

तृप्ति की मृत्यु के उपरान्त नरोत्तम के मन में एक गहरी प्रतिक्रिया हुई कि वह बिलकुल मौन रहने लगा । यह मूकता मरघट से लौट आने के बाद उसमें और भी गहरी हो गई थी । आजकल वह न किसीसे बोलता था और न किसीसे विचार-विमर्श ही करता था । मोना यदा-कदा तृप्ति का नाम ले लिया करती तो वह उसे दुख से अभिभूत होकर डांट दिया करता था । वह बेचारी डरकर चुप हो जाती थी । श्रीमती सेन इस चुप्पी को घातक समझती थी । मुनीम और मैनेजर दोनों अलग परेशान थे । और यह बात निर्विवाद रूप से सारे क्षेत्र में फैल गई कि नरोत्तम बाबू और तृप्ति का प्रणय-सम्बन्ध था । उदाहरण के लिए इतना ही काफी था कि जितनी चिंता और दुख उसकी मृत्यु पर उसके मां-बाप को नहीं है, उतना नरोत्तम बाबू को है ।

नरोत्तम यह सब सुनकर चुप था । चुप क्या था अपितु यह समझिए कि उसकी आत्मा को यह सब सुनकर अव्यक्त परम सुख मिलता था ।

एक रात जब चांद की मधुरिम चांदनी में समस्त संसृति डूबी हुई थी तब एक चीख नरोत्तम के कमरे से आई । सेन बाबू और उनके दूसरे पड़ोसी अमिय बाबू दोनों एक साथ बाहर आए और लगे एक दूसरे को देखने !

‘क्या बात है सेन बाबू, चीख तो मेरे कानों में भी आई थी ?’

अमिय हालदार चांदनी में अपनी बिल्लौरी-सी आंखें चमकाते हुए घबराए स्वर में बोले, ‘मैं कहता हूं कि बड़ी भयानक चीख थी ।’

‘नरोत्तम बाबू के कमरे से आई है ।’ सेन बाबू ने अपना अनुमान शीघ्र दौड़ाया ।

‘चलो ।’ अमिय ने कहा ।

द्वार बार-बार खटखटाया गया पर किसी प्रकार का उत्तर नहीं मिला ।

उनके सन्देह को सत्य का आधार मिलने लगा ।

अमिय अधिक चंचल और चुस्त था । वह तुरन्त दीवार फांदकर भीतर गया । दरवाजा खोलकर सेन बाबू को साथ लिया ।

दोनों शंकित हृदय से भीतर गए ।

प्रकाश किया ।

देखा—नरोत्तम बाबू गाढ़ी निद्रा में निमग्न है ।

सेन ने कहा, 'नरोत्तम बाबू, 'नरोत्तम बाबू ।'

फिर उन्हें हिलाया गया । उनके हाथ-पांवों को देखा गया । वे गर्म थे । नाड़ी कुछ अधिक गति में चल रही थी । वे समझ नहीं पाए कि उन्हें क्या हो गया है ? अमिय ने जल भी उनके मुंह पर छिड़का पर व्यर्थ !

लाचार अमिय भागता हुआ मैनेजर साहब के पास गया । उन्हें खबर दी । वे भी भागते-भागते आए । सारी रात उन सबने आंखों में बिताई ।

सवेरा हुआ ।

सेन बाबू, मैनेजर और अमिय !

कोई निर्णय नहीं ! आखिर इन्हें क्या हो गया है ?

एकाएक उन्हें ऐसा लगा कि नरोत्तम बाबू के अधर फड़क रहे हैं । वे कुछ अस्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं । सेन बाबू ने उसपर झुककर पूछा, 'क्या है नरोत्तम बाबू !'

वही अस्पष्ट बड़बड़ाना ।

मैनेजर ने आगे बढ़कर नरोत्तम को बिठाते हुए पूछा, 'क्या बात है नरोत्तम बाबू ?'

'मुझे इसने मारा है और मैं इसे बहुत कष्ट दूंगी ।' नरोत्तम एकाएक चीखकर भड़क उठा । मैनेजर कांपकर रह गया । सेन बाबू के ललाट पर पसीना आ गया पर अमिय अमिय ही था । पहलवाननुमा नास्तिक ।

नरोत्तम भड़ककर बोला, 'आप हट जाइए मैनेजर साहब !'

मैनेजर साहब के प्राणों पर क्षण भर के लिए आ बनी । भीगी बिल्ली की भांति वे सहमकर एक कोने में दुबक गए । उनका चेहरा पीला पड़ गया ।

अमिय भड़ककर बोला, 'तुम्हें किसने मारा, बता ?'

नरोत्तम चीखकर बोला, 'नरोत्तम बाबू ने, वे मुझे ध्यार करते थे, मुझसे विवाह करना चाहते थे पर उस निष्ठुर ने सदा मुझे छला। वह छलिया है। धोखे-बाज है।'।

'तू कौन है ?' अमिय ने डांटकर पूछा।

'तृप्ति, सेन बाबू की बेटी !'

सब निश्चल और जड़।

'तू क्या चाहती है।' अमिय ने पूछा।

'विवाह ?'

'किससे ?'

'नरोत्तम बाबू से !'

'यह कैसे हो सकता है ?'

'मैं नहीं जानती।'।

'अच्छा कर देंगे।' 'चल तेरी मुक्ति करा दें।'।

'नहीं, पहले मेरी शादी कराइए।' वह गरज पड़ी।

नरोत्तम पुनः बेहोश हो गया।

उस दिन यह बात सारे क्षेत्र में इस तरह फैल गई जैसे अंधेरे पर सूर्य-प्रकाश।

सबकी जबान पर एक ही बात थी, 'तृप्ति प्रेतनी हो गई !'

'तृप्ति भूतनी हो गई।'।

'वह नरोत्तम बाबू को लग गई है।'।

आतंक, भय और प्रभु-प्रार्थना !

उस समय के चेतन हुए नरोत्तम बाबू लगभग दो बजे फिर अचेत हुए। इस बीच वे किसीसे बोले नहीं। उनकी भंगिमा विचित्र और भयानक थी। अचेता-वस्था में रो-रोकर उन्होंने आकाश अपने सिर पर उठा लिया। अमिय की ड्यूटी मैनेजर साहब ने वहीं लगा दी। अमिय ने पूछा, 'तू क्या चाहती है ?'

'मुझे भूख लगी है।'।

'क्या खाओगी ?'

‘मिठाई।’

तुरन्त मिठाई मंगवाई गई। कई आदमी तुरन्त एकत्र हो गए।

नरोत्तम की प्रेतनी ने सारी मिठाई खा ली। सब देखते रहे। बाबा रे बाबा, दो सेर मिठाई एक साथ खा गई।

मैनेजर साहब डाक्टर को बुलाकर लाए। उन्होंने सारे केस का अध्ययन करके बताया कि इन्हें फिट का रोग हो गया है। व्यथा के आघात ने इनकी चेतना पर विस्मृति का क्षणिक आवरण डाल दिया है। तृप्ति के स्वर में बोलना आज के युग में कोई आश्चर्य की बात नहीं रही है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्रमाणित कर दिया कि एक दूसरे में कभी-कभी गहरे साम्य संस्कार होते हैं और उसकी प्रतिक्रिया कभी इस रूप में भी प्रकट होती है। उन्होंने यह भी साबित कर दिया है कि हमारे अचेतन मन के कूप में बहुत-सी स्मृतियां दबी पड़ी रहती हैं। वे स्मृतियां परिस्थितिवश प्रकट होती हैं, तब ऐसा ही होता है।

उन्होंने दवा दे दी, ‘अब इनको होश काफी देर के बाद आएगा।’ जाते-जाते उन्होंने कहा।

मैनेजर साहब को इससे सांत्वना नहीं मिली।

‘और डाक्टर साहब ? हम लोग बहुत घबरा गए हैं।’

‘अच्छा यह होगा कि आप इन्हें यहां से कलकत्ता भेज दीजिए। प्रेत-प्रेतनी के चक्कर में फंसकर आप खामखा ही नरोत्तम बाबू को कष्ट देंगे।’

दूसरे दिन नरोत्तम बाबू की चेतना लौटी। इसके बीच कई बार तृप्ति बोली थी। अंत में तृप्ति ने यह भी कहा था कि अभी मैं दो दिन के लिए जाती हूं।

नरोत्तम की चेतना लौटने पर भी उसे इस रहस्य से अनभिज्ञ रखा गया। उसे बताया गया कि उसे फिट आने लगे हैं। लेकिन नरोत्तम ने स्वयं बताया कि उसे तृप्ति रात-दिन दीखती रहती है। वह उसके पास बैठी थी, उसने उससे बहुत-सी बातें की थीं।

लोगों के विश्वास को बल मिला—‘तृप्ति निस्सन्देह प्रेतनी बन गई है।’

कुछ वृद्ध एवं अंधविश्वासी व्यक्तियों ने झूठ-मूठ ही यह कहना आरम्भ कर दिया कि उन्होंने फलां आम के गाछ के नीचे तृप्ति को आम खाते देखा था।

एक न कहा, 'कल दोपहर को बारह बजे तृप्ति नदी में तैर रही थी। उसने अपने साथ में एक मगरमच्छ पकड़ रखा था।'

अनुपमा दादी ने कहा, 'कल मुझे सपने में तृप्ति कहने लगी कि दादी, अब तू पुनर्विवाह कर ले। तेरा मन पाप और असंयम से भरा हुआ है। यदि तू ऐसा नहीं करेगी तो मैं तुम्हें एक दिन जान से मार दूंगी।'

कृष्णा दादी कांपते स्वर में बोली, 'मुझे उसने वह-वह डांट पिलाई कि मैं रातभर सो नहीं सकी। कहने लगी कि तू कुंवारी रहकर पाप करती है। देख, तेरी दशा बहुत खराब होगी।'

भूत के आतंक ने पापात्माओं के पाप प्रकट कर दिए।

मनुष्य का भूत स्वयं उसमें होता है। उसकी भावना इन सभी अंधविश्वासों की सर्जक है।

कहने का तात्पर्य यह है कि मिल-एरिया में उन दिनों तृप्ति प्रायः सबको किसी न किसी रूप में दीखने लगी।

नरोत्तम को कलकत्ता भेज दिया गया।

वहां उसे एक अत्यन्त प्रवीण मनोवैज्ञानिक डाक्टर को दिखलाया गया। उसने उस केस का बहुत गम्भीर रूप से अध्ययन किया।

पहले ही दिन जब डाक्टर ब्लड टेस्ट करने के लिए तैयार हुआ वैसे ही नरोत्तम ने इनकार कर दिया।

दो अन्य व्यक्तियों ने आगे बढ़कर उसके हाथों को पकड़ा। उसकी भंगिमा में परिवर्तन आने लगा। देखते-देखते उसका सारा शरीर तन गया। पुतलियां विचित्र तरह से धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठ गईं। डाक्टर ध्यानपूर्वक उसे देखने लगा। उसने देखा नरोत्तम की तमाम नसें तन गई हैं। वक्ष फूल रहा है। सांस अत्यंत तीव्र गति से चलने लगी है। हर सांस के साथ अधर फड़क कर 'फूँ' की आवाज कर देते हैं। अत्यंत क्रोध की मुद्रा में वह चीखकर बोला, 'मुझे छोड़ दो, छोड़ दो मुझे, वर्ना मैं सबको मिटा दूंगी।'

डाक्टर ने उसे मुक्त कर दिया।

अत्यंत कोमल स्वर।

विस्मय, घोर विस्मय ।

सभी आंखें फाड़-फाड़कर जिज्ञासु की भांति देखने लगे । नरोत्तम बोला, 'मैं बीमार नहीं हूँ, जो मुझे सताएगा, उसे मैं कभी भी सुख से नहीं रहने दूंगी ।'

इस वाक्य को सुनते ही सेठ ने सेठानी की ओर भीत दृष्टि से देखा, जैसे वे नेत्रों की भाषा में कह रहे हों कि कहीं यह डायन हमारा अनिष्ट न कर दे । सेठानी ने कुछ उत्तर नहीं दिया । वह जैसे अपने पति के नेत्रों की भाषा समझ गई हो अतः भयमिश्रित दंभ के साथ रुकते-रुकते बोली, 'आप चिंता न कीजिए, जाड़गर मिया अब्दुला जी से घर को खीला^१ कर रखा है । अपना कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।'

नरोत्तम भड़ककर बोला, 'मैं बीमार नहीं हूँ, इस डाक्टर को यहां से ले जाओ वना मैं इसको कभी भी चैन नहीं लेने दूंगी ।' उसने शब्दों पर जोर देकर कहा, 'मैंने कह दिया न कि मैं रुग्ण नहीं हूँ मुझे कोई बीमारी नहीं है । मैं नरोत्तम बाबू को लेने आई हूँ, मैं इसे लेकर जाऊंगी, इसने मुझे बहुत सताया है, मुझसे प्यार नहीं किया, मुझे दुल्हन नहीं बनने दिया है, यह बड़ा निष्ठुर है, निष्ठुर...मैं इसे ले जाऊंगी...ले जाऊंगी ।'...कहकर नरोत्तम ने एक जोर की चीख मारी और अचेत हो गया ।

डाक्टर सुन्न-सा बैठा रहा । सब कुछ जानते हुए भी वह युगों से चले आ रहे अन्धविश्वासों के प्रति पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं हो सका था । उसके बदन में जड़ता-सी आ गई ।

सेठानी ने आकुल होकर पूछा, 'अब क्या होगा डाक्टर सा, नरोत्तम कैसे बचेगा ?'

'आप निश्चित रहिए, चिंता की कोई बात नहीं । यह सब मन के रोग हैं, तन के नहीं । जीवन की अतृप्तियां, संस्कारों का साम्य, उनकी प्रतिक्रियाएं और कुछ नहीं, नथिंग...'

थोड़ी देर बाद नरोत्तम स्वस्थ हो गया ।

डाक्टर ने पूछा, 'कैसी तबीयत है ?'

१. खीला कर रखा है—मंत्रों से घर को सुरक्षित करा लिया है ।

‘ठीक है, सिर अवश्य भारी है।’

‘और कुछ?’

‘कुछ नहीं, कुछ नहीं। सब ठीक है। अरे आप सब लोग मुझे इस तरह क्यों देख रहे हैं?’

‘नहीं तो?’ डाक्टर ने कहा, ‘आपकी तबीयत एकाएक खराब हो जाने के कारण ये सब घबरा गए हैं। आप सब चलिए... मैं नरोत्तम बाबू से कुछ बातें करना चाहता हूँ।’

कमरा खाली हो गया। डाक्टर ने व्यर्थ ही अपनी घड़ी को देखा। गंभीर मुद्रा को और गंभीर बनाकर बोले, ‘नरोत्तम बाबू, थोड़ी देर पहले आपको कुछ...’

‘क्या कुछ?’ वह हठात् बीच में बोला।

‘तृप्ति दिखलाई पड़ी थी।’

‘नहीं तो।’

‘याद कीजिए।’

‘मैं आपको अपने बारे में इतना ही कह सकता हूँ कि मेरा सिर भारी है। अंग-अंग में पीड़ा है, बस।’

डाक्टर खामोश हो गया।

बाहर की ऋतु में परिवर्तन दिखने लगा। थोड़ी देर पहले जो स्वच्छ निर्मल आकाश था, वह काली-पीली आंधी से दानवी-प्रकोप-सा भयंकर दिखने लगा।

घटाटोप अन्धकार। खें खें की कर्कश आवाज़ !

पक्षियों की चिंघाड़ और मकानों की छतों पर बनी छोटी-छोटी रसोइयों व कोठरियों के टिनों की घड़घड़ाहट।

डाक्टर ने लपककर शीशे के दरवाजे खिड़कियों पर चढ़ा दिए। कमरे में ऊमस उत्पन्न हो गई। पंखा खोल दिया गया।

डाक्टर ने कहा, ‘तृप्ति की मृत्यु के बाद वह आपको दीखी या नहीं। जैसा आपका-उसका सम्बन्ध था उससे...?’

नरोत्तम सजग होकर बोला, ‘वह मुझे रात को स्वप्न में दीखती है।’

‘स्वप्न में?’

‘हां, मुझे ऐसा लगता है ।’

‘हां-हां ! मुझसे छिपाकर रखने की कोई जरूरत नहीं नरोत्तम बाबू, मैं डाक्टर हूं, भयानक से भयानक और मधुर से मधुर सत्य को मैं सुनता हूं। सौन्दर्य की पावनता से लेकर रूप की बीभत्सता तक को मैं गहरी आत्मीयता से ग्रहण करता हूं। मुझसे कुछ भी नहीं छुपाइए। निस्संकोच होकर कहिए... कहिए न ?’

‘वह मुझे प्रायः रात को दीखती है। प्यार की बातें करती है। और तो और वह मुझे अपनी गोद में...’ कहते-कहते वह भयभीत हो गया। उसकी मुख-मुद्रा बदल गई। तनिक रोष भरे स्वर में बोला, ‘मैंने कह दिया न, यह सब मैं आपको नहीं बता सकता। उसने मुझे मना कर रखा है। डाक्टर साहब, आप विश्वास कीजिए यदि मैं आपको उसके बारे में सब कुछ बता दूंगा तो वह मेरा गला दबा देगी। वह मुझसे सख्त नाराज है। उसका कहना है कि मैंने उसे बहुत पीड़ा पहुंचाया है।’ नरोत्तम के नेत्र भर आए।

डाक्टर उसे आराम करने को कहकर चले गए।

उस रात डाक्टर नरोत्तम के कमरे के समीप वाले वरामदे में ही लेटे रहे। उनका सारा ध्यान नरोत्तम पर केन्द्रित था।

लगभग एक बजे नरोत्तम निद्रा में उठ बैठा। उसका मुख फूल-सा खिला हुआ था। उसके चेहरे पर मुस्कानों के सहस्र सूरज दीप्त हो उठे थे। मुदित स्वर में बोला, ‘तुम आ गई तृप्ति, देखो आज मैं तुम्हारी बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं।’

कुछ देर वह शांत रहा। उसके हाथों की हरकत से स्पष्ट जाना जा सकता था कि वह तृप्ति के हाथों को अपने हाथों में ले रहा है। उसने अपने पलंग पर एक बार हाथ का संकेत किया जैसे वह तृप्ति के बैठने के लिए जगह बना रहा हो।

‘तुम चिंता न करो, अब मैं तुम्हें कभी भी छोड़कर नहीं जाऊंगा। शपथ से कहता हूं कि मैं तुम्हें सच्चे मन से प्यार करता हूं। कह नहीं सका, यह मेरी कायरता थी।’ ..

इतना कहकर नरोत्तम बिस्तर पर अर्द्ध शायित हो गया।

अपने सिर पर उसने हाथ रखकर कहा, ‘तुम्हारा हाथ कितना कोमल है तृप्ति, बस, इसी तरह तुम मेरा सिर सहलाया करो, तुम्हारे स्पर्श में कितना सुख है ?...’

हां, मुझे नींद आ रही है। तुम पास में हो, फिर स्वप्नों के संसार में न खोऊं, यह कैसे हो सकता है ! .. देखो, मुझे नींद आ रही है, एक बार कह दो—आपनार माथा पोका खेयचे...!’

डाक्टर ने देखा नरोत्तम सो गया है। गहरी और प्रगाढ़ निद्रा में।

चौथे दिन उस हरकत के साथ दुलहिन की बात चल पड़ी थी। निद्रा की बेहोशी में ही नरोत्तम ने कहा, ‘अब मैं तुम्हें जल्दी ही दुलहिन बनाऊंगा। अब मैं स्वयं अपने एकांत से घबरा गया हूं। तुम दृष्टि से जैसे ही ओभल होती हो, वैसे ही मन उदास हो जाता है, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तुम सदा पास रहा करो।’

डाक्टर के दिमाग में कुछ बातें बैठीं—नरोत्तम को व्यस्त रखा जाए, सेक्स को लेकर जो अज्ञात कुंठाएं उसके अचेतन मन में घर कर चुकी हैं, उनको दूर किया जाए।

उसके लिए उसका विवाह हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। दुलहिन की आकांक्षा के साथ एकांत की समाप्ति !

नारी से भय, पलायन, प्रेम, आसक्ति और अतृप्ति !

सबकी समाप्ति !

‘फिर इनका विवाह कर ही दिया जाए।’ डाक्टर ने यह तय किया।

एक माह के कठिन प्रयोग के बाद नरोत्तम की हालत काफी सुधर गई। आज-कल रात को वह कम हरकत करने लग गया था।

उसके मां-बाप भी आ गए थे। पुत्र का सम्मोह उन्हें खींच लाया था। वे उसके सम्मुख बार-बार एक ही प्रस्ताव रखते थे, ‘तू विवाह कर ले, तेरे सारे रोग दूर हो जाएंगे।’ उन्होंने यह भी बताया कि तेरी मंगेतर कितने वर्षों से प्रतीक्षा कर रही है।

कई बार नरोत्तम मां की इन बातों की उपेक्षा कर दिया करता था। वह जानता था कि उसे मानसिक रोग है और कोई भी मानसिक रोग आगे चलकर जीवन के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। ऐसी हालत में किसीसे भी विवाह करके वह अपने साथ किसी दूसरे की जिन्दगी को एक जलती हुई लकड़ी नहीं बना सकता। जीवन के इस दुर्गम पथ पर भला कौन प्राणी किसी पागल या रोगी के साथ जान

धूमकर बंधकर चलना चाहेगा ?

उस दिन उषा के आगमन से प्राची दिशा सतरंगी आभा से उद्भासित थी। धीरे-धीरे फैलता हुआ प्रकाश ऐसा लगता था जैसे किसीने प्रकाश-पुंज को एक विशाल घेरे में बन्द कर दिया हो। समीर शीतल था। वातावरण में हल्का-हल्का प्रारंभिक कोलाहल उठ रहा था।

सेठजी अपने मुंह में दांतुन डाले हुए मोटर से उतरे और उसके साथ नरोत्तम ! झांझरके वह सदा उनके साथ विक्टोरिया मेमोरियल घूमने आया करता था।

आज भी सेठजी ने सदा की भांति नरोत्तम को विवाह के लिए कहा।

उसने वही आपत्तियां सेठजी के सम्मुख रखीं।

सेठजी ने गंभीरतापूर्वक कहा, 'तू नहीं जानता, बहू लक्ष्मी होती है, उसके पांव बड़े शुभ होते हैं। तू 'हां' कर ले। देख न, बेचारी तारिणी कितने वर्ष से तेरी 'हां' का इन्तजार कर रही है।'

'सेठजी, यदि उसे यह मालूम हो गया कि मैं पागल हूं तो वह इस नाते को कभी भी स्वीकार नहीं करेगी।'

सेठजी ने विस्मय भरे स्वर में कहा, 'वाह भाई, वाह ! हम उसे पता भी नहीं चलने देंगे, ऐसे बुद्ध हम थोड़े ही हैं।'

'ऐसा अन्याय मैं नहीं कर सकता।'

बात वहीं रुक जाती पर सेठानी के तीव्र आग्रह के कारण आज सेठजी इस बात पर तुल ही गए। नरोत्तम हजार बहाने करता रहा पर सेठजी ने आज उसकी एक भी नहीं चलने दी।

'नरोत्तम को हां भरा कर दम लूंगा।' अतः वे सीधे उसके साथ ही नरोत्तम के कमरे में आए।

नरोत्तम की मां उसके लिए चाय बना रही थी।

तुरन्त उनके बैठने का प्रबन्ध किया गया।

वे नरोत्तम की मां को सम्बोधित करके बोले, 'देखो बाई, नरोत्तम मेरी बात नहीं मान रहा है। मैं समझा-समझाकर हार गया हूं। भला कोई लड़की यह जान-

कर इससे शादी कैसे करेगी कि यह थोड़ा-बहुत पागल है।’

‘यह सोलह आने ठीक है।’ नरोत्तम का बाप गोपाल प्रसाद बोला।

‘फिर मैं किसीके जीवन के सर्वनाश का कारण क्यों बनूँ? उसकी बददुआएं क्यों लूँ?’ नरोत्तम ने सीधा उत्तर दिया, ‘आज मां सवेरे-सवेरे कह रही थी कि तुम रात को उठ गए थे। किसीसे बातें कर रहे थे। शादी की, विवाह की। रात की, दिन की। फिर बताइए न, कि इस हालत में मैं विवाह करके क्यों किसीकी जिंदगी बरबाद करूँ।’

‘पर डाक्टर साहब कह रहे थे कि विवाह से इनका ध्यान बंट जाएगा और इनकी हालत सुधर जाएगी।’

‘यदि आपको मेरे सुधर जाने की आशा है तब आप किसी लड़की को मेरी हालत के बारे में सब कुछ बताकर विवाह के लिए रजामंद कीजिए, उसे अन्धेरे में मत रखिए।’

‘लेकिन...’

और यह ‘लेकिन’ हमेशा काफी विवाद का विषय बन जाता था। परन्तु आज इस बात ने नई करवट ली। तारिणी के दोनों पत्र पढ़े गए। उनसे निर्णय किया गया कि उसे यहां बुला लिया जाए। यहां बुलाकर उसे सारी परिस्थिति से अवगत कर दिया जाएगा।

मां ने भी विश्वास के साथ कहा, ‘वह कहना मान ही लेगी। वह बड़ी सुशील और सुशिक्षित है। फिर उसने यह भी प्रण कर रखा है कि वह विवाह करेगी तो केवल नरोत्तम से।’

सेठजी आह छोड़कर बोले, ‘छोकरी बहुत पढ़ी-लिखी है। डाक्टर साहब कह रहे थे कि ऐसी लड़की मिल जाए तो बेड़ा पार ही समझो।’

तारिणी कलकत्ता आई।

वह भी सेठ जी के यहां ही ठहरी। सेठानी का विचित्र स्वभाव था कि कोई

भी पराया आदमी उसे विशेष अपना लगता था। उसका ममत्व उस व्यक्ति के प्रति इतनी तीव्रता से लिपटने लगता था जैसे वह ममता का अजस्र स्रोत है और जो फूटकर तुरन्त बंजर भूमि को लहलहा देगा।

सेठानी को तारिणी बहुत भा गई। प्रफुल्ल रक्ताभ कमल-सा मुख वाली तारिणी उसे परियों की रानी लगी।

सेठानी ने एक बार पुनः देखा—साक्षात् लक्ष्मी !

‘बेटी, तू लक्ष्मी है।’ वह विह्वल स्वर में बोली, ‘मैं तुझे अपनी बहू बनाऊंगी ही।’

तारिणी का मुख लज्जा से आरक्त हो गया।

‘लोग भी कैसे नीच होते हैं। मिल के पास कोई लड़की मर गई थी। उससे नरोत्तम डर गया था, बस लोगों ने अच्छे-भले को पागल कहना शुरू कर दिया। पर वह पागल नहीं है, भयभीत है। बस तेरा सहारा पाकर वह बिलकुल ही अच्छा हो जाएगा। स्त्री अपने पति के रोगों की सच्ची दवा होती है बेटी।’ सेठानी अर्थ भरी हंसी हंस पड़ी।

फिर न जाने क्या-क्या उपदेश देती रही सेठानी। तारिणी धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनती रही। क्या उत्तर देती ? प्रसन्नता व ममत्व में बह रही थी।

भोजन करके वह नरोत्तम से मिली।

अचानक अद्वितीय सौन्दर्य देखकर नरोत्तम निश्चल हो गया।

एकांत, एकाकी और सौन्दर्य !

अपलक-अचल चक्षुओं की बातें।

‘नमस्कार !’

नरोत्तम ने उसकी ओर देखकर मुस्करा भर दिया। हाथ स्वतः ही कुर्सी की ओर उठ गए। उसे पहले ही मालूम हो गया था कि तारिणी आई है। ‘उसने अपनी मां से यह भी सुना था कि वह बहुत रूपवती है। नम्र है। शीलवती है।

तारिणी बैठ गई।

नरोत्तम उसे देखता रहा।

वही मूकता—नवीन, दो विपरीत अनजान हृदयों वाली।

नरोत्तम कुछ देर तक उसे देखता रहा, फिर मुस्कराकर बोला, 'आपका इरादा अब भी पूर्ववत् है ?'

'जी ।'

'लेकिन आपने यह भी सुन लिया होगा कि आजकल में मानसिक रोग से पीड़ित हूं ।'

'जी नहीं । इतना जरूर सुना है कि इधर आप अस्वस्थ हैं ।...और वह होना भी चाहिए ।'

'क्यों ?'

'यह आयु ही ऐसी है ।' कहकर वह तनिक हंसी और तुरन्त गंभीर हो गई । उसकी अंजनमयी अंखियों में रहस्य-सा उमड़ पड़ा ।

'मैं आपका मतलब नहीं समझा ।'

'यह मेरे हृदय का शाप भी हो सकता है । क्या आपने मुझे नहीं सताया ? देखिए, मैं आपकी अभी तक प्रतीक्षा कर रही हूं ।'

'ठीक है, कदाचित्त जीवन भर संयोग नहीं होता लेकिन अब स्थिति बदल गई है । अब मैं वह नरोत्तम नहीं हूं, जो पहले था ।'

'क्यों ?'

'मुझे हर घड़ी ऐसा लगता है कि कोई मेरे पीछे-पीछे चलता रहता है । कोई मेरा हाथ पकड़े रहता है । रात्रि के नीरव क्षणों में कोई मेरे पांव दबाकर अपने जीवन को धन्य करता हुआ मिलता है । मैं उससे बातें करता हूं । जानती हैं आप, वह कौन है ?...तृप्ति !'

तारिणी जरा सावधान होकर बैठ गई ।

वह सांस लेकर बोला, 'यह तृप्ति मुझे बहुत सताती है । पल भर भी सुख और संतोष नहीं लेने देती । हरदम कहती रहती है कि तुमने मुझे बहुत सताया, दुख दिया, मारा है ।'

तारिणी कुछ अधिक न कहकर इतना ही कह पाई, 'आप अकेले हैं न, इसलिए वह आपका साथ नहीं छोड़ती । जहां आप एक से दो हुए, सब ठीक हो जाएगा । ...सुनिए, अभी कोई आपको दीख रहा है ?...नहीं, फिर जब आप अपने सन्देह

और उन संस्कारों को अपने मन से हटा देंगे, जो तृप्ति के संस्कारों से समानता रखते हैं, तब सब ठीक हो जाएगा। न कोई आपका पीछा करेगा और न आप किसी-के पीछे भागेंगे।’

‘तब ?’ नादान बालक की तरह वह जिज्ञासा भरा प्रश्न कर उठा।

तारिणी बोली, ‘मैंने पहले ही आपको लिख दिया था कि मैं विवाह करूंगी तो केवल आपसे अन्यथा आजन्म कुंवारी रहूंगी। आज वह दिन आ गया है जब मेरी सीमन्त में सिन्दूर लगेगा।...’ मैं सब कुछ जानती हूँ, और एक मनोविज्ञान की छात्रा रहने के कारण मैं आपसे यह भी कह सकती हूँ कि आपको कोई रोग नहीं है। आपको स्वप्न आते हैं और सदा एक-सा ही स्वप्न आते हैं। क्योंकि आप सदा एक को केन्द्र बिंदु बनाकर सोचा करते थे और तृप्ति को लेकर की गई कल्पनाएं आपके अचेतन मन में सोई पड़ी हैं जो समय पर स्वतः ही कार्यान्वित होती हैं।’

नरोत्तम कुछ नहीं बोला। वह तारिणी के मुख को देखता रहा, देखता रहा।

उसे लगा कि वास्तव में यह तारिणी बड़ी दृढ़ प्रतिज्ञा है। यह उससे विवाह करके ही दम लेगी। फिर भी उसने एक बार उससे प्रार्थना भरी स्पष्टोक्ति कही, ‘लोग मुझे पागल कहते हैं।’

‘आप किसीकी जबान नहीं रोक सकते।’

‘फिर ?’

‘आप बताइए कि आपको तो इस विवाह से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है ?...’ कहिए।’

‘इसके बारे में मैं आपसे इतना ही कह सकता हूँ कि आप स्थिति बिगड़ने पर मुझे दोष न दीजिएगा तथा पीड़ा देकर मुझे मत जलाइएगा।’

तारिणी के चेहरे पर अदम्य उत्साह के साथ-साथ पूर्ण नारीत्व का भाव जगमगा उठा, ‘नारी केवल श्रद्धा है। वह त्याग पर सम्पूर्ण विसर्जन कर सकती है।’ इतना कहकर वह उठ गई।

शहनाई के मधुर स्वरों के साथ नवीन जीवन की मन्दाकिनी प्रवाहित हुई। अत्यन्त सादगी से विवाह सम्पन्न हुआ। न तड़क-भड़क और न व्यर्थ का भोज ! केवल एक दिन थोड़ी-सी चाय-पार्टी। सेठानी केवल प्रसन्न ही नहीं थी, बल्कि वह प्रसन्नता में इतनी भाव विभोर हो गई थी कि उसने तारिणी के मुंह को नारियों की भारी उपस्थिति के बीच चूम लिया। तारिणी संकोच से लाल हो गई और अन्य युवतियां संगीत की मादक झंकार की भांति हंस पड़ीं।

नरोत्तम के माता-पिता के जीवन की पवित्र साध पूरी हो गई।

वे बार-बार अश्रुप्लावित हो उठते थे जैसे प्रसन्नता के ये अश्रु उन्होंने वर्षों से इसी दिन के लिए छिपा रखे हों।

और नरोत्तम ?

वह बार-बार शंकित होकर पीछे देखता था जैसे उसके पीछे कोई दुलहिन बनी आ रही है। उस दुलहिन ने वही धोती पहन रखी है, जो एक बार वह तृप्ति के कहने पर खरीद कर लाया था।

संदेह, भय और आशंकित होकर वह धूम-धूमकर पीछे देखता था।

छम् छम् छम् !

घुंघरू की ध्वनि !

वह क्या करे ? नरोत्तम को लगा कि इतने गंभीर कोलाहल में भी तृप्ति का स्वर तीव्र चीख की भांति गूँज रहा है, 'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, मैं तुमसे विवाह करूंगी, तुम मेरे हो।'।

जैसे-तैसे वह अपने कमरे में पहुँचा।

वहाँ पहुँचते-पहुँचते वह काफी बैचेन हो गया।

सुहाग रात की अमर-मधुर बेला में तारिणी नरोत्तम के चरणों में बैठी थी। कह रही थी—'कल्पनोन्मुख आपका मन क्षण-क्षण इसपर केन्द्रित होता है कि तृप्ति मेरे पास है। क्या आप इन पुनीत और प्रणय से उच्छ्वसित क्षणों में मुझे तृप्ति के बारे में कुछ बता सकेंगे ? नरोत्तम ने हाथ से अपनी डायरी की ओर संकेत

कर दिया ।

तारिणी नरोत्तम को आराम से लिटाकर डायरी पढ़ने लगी । धीरे-धीरे उसे महसूस हुआ कि तन्द्रिल नरोत्तम किसी अज्ञात भय से जकड़कर उसके पांव को बड़े जोर से पकड़ रहा है । उसकी भयभीत मुद्रा से पता लगता है कि जैसे उसे कोई स्वप्न में जबरदस्ती छीन रहा है ।

वह डायरी को एक ओर रखकर उसे गौर से देखने लगी ।

नरोत्तम बड़बड़ाने लगा, 'मैं सच कहता हूं कि मैंने तुम्हें धोखा नहीं दिया, ... मैं सदा से कमजोर मन का रहा हूं, मुझमें संघर्ष की शक्ति नहीं, ... मैं सदा तुम्हें अपनाता चाहता था पर मेरा साहस ही मुझसे सदा छल कर लेता था । ... विवाह ... विवाह मैंने कहां किया ? ... यह तो मैंने सबकी आज्ञा का पालन ... किया है । ... मैंने कहा न कि मैं बहुत दुर्बल हूं । ... सबने अधिक दबाया और मैंने हां कर ली । ... हां, सचमुच मैं तुम्हें अन्तर से प्यार करता हूं । ... अब भी ... तुम कहती हो कि मुझे स्पर्श करते हुए झिझकते क्यों हो ? ... न मालूम कौन-सी अज्ञात शक्ति मुझे कह रही है कि रुक जाओ ... रुक जाओ । फिर भी तृप्ति, मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता । ... आपनार ... माथा ... पोका खेयचे ... तुम्हारा यह वेदमंत्र जिसमें प्रणय का वारिधि आलोड़ित हो रहा है, वह हृदय से कैसे भुलाया जा सकता है ? यह असंभव है, ... बिलकुल असंभव ! '

क्षण भर गहरी शून्यता छा गई !

'वह काली का मन्दिर !'

'वह तेरी युग-युग की साध ... तुमने ही कहा था कि चलो नरोत्तम दा, मैं आपके लिए खाना बना दूंगी । ... पर तुम तो मुझे हठात् छोड़कर चली गई ? ... यह तुम्हारा अन्याय नहीं ? ... बोलो ... चुप क्यों हो ?'

तारिणी ने देखा, नरोत्तम बिस्तरे पर बैठ गया है । उसके नेत्र खुले हैं पर वह जाग्रत नहीं है । वह वहां से उठकर एक ओर खड़ी हो गई ।

नरोत्तम ने कहा, 'यहां बैठो तृप्ति, बैठो न ; यहां कोई नहीं है । यहां हम और तुम और तुम और हम ! ... फिर तुम जाने लगीं ! मैं डंके की चोट कह सकता हूं कि तुम मेरी हो । तुम मेरी हो । मैं तुम्हें अपनी बनाऊंगा, चाहे विश्व की समस्त

शक्तियां मेरा विरोध करती रहें ।...फिर कब आओगी ?...कल, कल...जरूर आओगी न ?...अब मैं किसीसे नहीं डरूंगा, ...हां सच, बिलकुल सच...!

नरोत्तम मंत्रचालित-सा पुनः बिस्तरे पर सो गया ।

तारिणी विचारों में तन्मय नरोत्तम को देखती रही, देखती रही ।

फिर वह डायरी सम्पूर्ण पढ़ कर सो गई ।

२७

कई दिनों बाद ।

नई दुलहिन ने अपने हाथों से चाय और नाश्ता बनाया था । नरोत्तम स्नान करके आया । सेठजी की सबसे छोटी लड़की लक्ष्मी आ गई थी । लक्ष्मी की आयु तीन वर्ष की थी । नई दुलहिन के प्रति उसकी बड़ी जिज्ञासा थी ।

लक्ष्मी को नरोत्तम ने गोदी में उठाकर मेज़ पर बिठा दिया । लक्ष्मी चाह भरी दृष्टि से हलुए को देखने लगी ।

‘खाओ बिटिया ।’

लक्ष्मी ने नहीं खाया । वह उन दोनों की प्रतीक्षा करने लगी । तारिणी हंसकर बोली, ‘पहले आप खाइए, बाद में यह खाएंगी ।’

‘क्यों ?’

‘देख लीजिए ।’

नरोत्तम ने जैसे ही दो कौर लिए, वैसे ही लक्ष्मी खाने लगी । नरोत्तम ने कहा, ‘तुम्हें तो ह्यूमैन साइकालोजी का बड़ा ज्ञान है !’

उसने ‘है तो सही’ इस शब्द को अपने मन ही मन दोहराया । फिर वह गंभीर हो गई ।

‘तुम गंभीर कैसे हो गई ?’ नरोत्तम ने तले हुए आलू को चखते हुए कहा, ‘जल्दी विवाह न करने का एक यह भी दुष्परिणाम उठाना पड़ता है कि व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ बच्चों की तरह किलक-फुदक नहीं सकता ।’

‘मैं यह सोच रही हूँ कि आप जैसे विद्वान पुरुष किस तरह प्रेत-योनि के चक्कर में पड़ गए।’ उसने नरोत्तम की बात पर ध्यान न देकर कहा।

नरोत्तम की आंखों में व्यथा भलक उठी, ‘कल मुझे फिर तृप्ति दिखाई दी थी। ... वह सचमुच प्रेतनी है। वह मेरे पीछे-पीछे घूमती रहती है। एक बार डरकर मैंने उससे पूछा भी था कि क्या तुम मेरा जीवन लोगी ? जानती हो कि उसने क्या उत्तर दिया ? कहने लगी कि नहीं रे, तू मेरा सच्चा प्रीतम है। मैं तुम्हें सदा जीवन दूंगी। ... तारिणी, इन भूत-प्रेतों के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ?’

तारिणी गंभीर हो गई।

लक्ष्मी हलुआ खाती-खाती बाहर चली गई।

नरोत्तम चाय का एक प्याला समाप्त कर चुका था। तारिणी ने दूसरा प्याला बनाकर उसे देते हुए कहा, ‘यह मनुष्यों का आदिम युग का संस्कार है। भूत-प्रेत हमारी प्राचीन शब्दावली मात्र हैं। आप देखेंगे कि आदिम युग में मनुष्य का ज्ञान पूर्ण रूप से जाग्रत नहीं हुआ था। वह जंगली पशुओं की भांति रहता था। फिर भी उनमें कई वस्तुओं के प्रति गहरी जिज्ञासा थी जैसे ... सूरज ... वर्षा और बच्चा !

‘वह आज के अबोध बालक की भांति सोचा करता था कि यह सूरज क्या है ? ... यह वर्षा कैसे होती है ? ... यह बच्चा कैसे पैदा होता है ?

‘मनुष्य चैतन्य है। इसलिए उसकी जिज्ञासा तीव्रतम होकर इस निर्णय पर पहुंची कि सूरज कोई आग का गोला है जो लुढ़कता हुआ पश्चिम की ओर जाता है, वहां उस गोले को एक भयानक अजगर निगल जाता है। कदाचित् पश्चिम से फैलता हुआ अंधकार उन्हें सांपों और अजगरों के अलावा अधिक कुछ नहीं लगा होगा ?

‘साथ ही साथ उन्होंने यह भी निर्णय किया कि यह आग का गोला इतना भयानक और शक्तिवान है कि वह सदा उस अजगर को जलाकर, उसके पेट को फाड़कर पुनः बाहर निकल आता है। ... इस तरह उन्होंने सूरज के अस्त और उगने की विधि की स्थापना की।

‘इसी प्रकार बरसात के बारे में उन्होंने अपनी अजीब मान्यताएं बनाईं। जैसे वर्षा के पूर्व आंधी, तूफान और बिजलियों का कड़कना और बरसना ! क्योंकि वर्षा

की उपादेयता के बारे में उनकी सुषुप्त प्रज्ञा एक अंश तक सोचने लगी थी, इसलिए उन्होंने यह निश्चय किया कि अवश्य इस नील निलय के पीछे कोई ऐसा व्यक्ति अथवा कोई ऐसी शक्ति है जिसका यह प्रताप है।

‘यहां उनको सर्वप्रथम एक महाशक्ति का आभास होता है।

‘मनुष्य के बारे में उनमें कई जिज्ञासाएं और आंतियां थीं।

‘जैसे, जब मनुष्य चलता था, तब उसकी छाया उसके साथ-साथ चलती थी। यह छाया भी उन आदि पुरुषों के लिए अत्यन्त कौतूहलपूर्ण प्रश्न उत्पन्न करती थी। वे समझते थे कि यह छाया मनुष्य के अंग का एक भाग है।

‘आपको विश्वास नहीं होगा। आज भी गांवों में ही नहीं, शहरों तक में छोटे-छोटे बच्चे यह कहते हुए आपको मिल जाएंगे कि छाया पर पांव मत रखना।... और तो और, कभी-कभी कोई दुर्बल लड़का जब सबल से पराजित हो जाता है तब वह तिलमिलाकर उसकी छाया पर पांव पटकने लगता है। उसे इससे भी संतोष का अनुभव होता है कि चलो, मैंने उसे खुद नहीं, उसकी छाया को ही पीट तो दिया।

‘तब हम इस निर्णय पर बिना किसी हिचकिचाहट के पहुंच जाते हैं कि इस छाया में मनुष्य की आत्मा या आत्मा के अंश की स्थापना समझी गई है। तब उस समय उन व्यक्तियों में इस छाया का बहुत भारी महत्त्व भी रहा होगा।

‘बाद में उन्हें यह भी पता चला कि यह छाया मनुष्य के मरने के बाद समाप्त हो जाती है, इसलिए उस छाया के प्रति उनकी आस्था और गहरी हो गई। वे इस निर्णय पर पहुंच गए कि इस छाया का मनुष्य की देह से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है।

‘तब उनके इस विश्वास ने अंधविश्वास का रूप धारण कर लिया।

‘हो सकता है किसीकी मृत्यु के बाद किसीको वह छाया दीखी हो, जिस तरह आज वह आपको दिखलाई पड़ती है। क्योंकि अक्सर यह देखा गया है कि इस प्रकार की घटनाएं इसी सिद्धांत पर फलीभूत होती हुई देखी गई हैं कि एक प्रेत प्रायः अपने निकटतम मित्र को ही दीखता है।

‘युग का विकास हुआ। मनुष्य के प्रज्ञा-चक्षु जैसे-जैसे खुलते गए, उनकी मान्यताओं और धारणाओं ने नई स्थापनाएं कीं। क्योंकि इन भूत-प्रेतों के मनो-

विज्ञान से सपनों का बहुत गहरा सम्बन्ध है। अतः संभव है, किसी व्यक्ति को कभी स्वप्न में विचित्र आकृति का व्यक्ति दीखा हो और उसने तुरन्त भूत-प्रेतों की एक विशेष आकृति को जन्म दे दिया हो। धीरे-धीरे कल्पनामयी ये आकृतियाँ जन-साधारण में प्रचलित होती गई।

‘क्योंकि हमें कभी-कभी प्रतीकात्मक और अपनी इच्छा के प्रतिकूल भावना के दृश्य स्वप्न में दीखते हैं। जैसे हमने किसी सुन्दरी की कल्पना की है और इसके विपरीत हमें अत्यन्त कुरूप युवती के दर्शन हो गए। यही बात इस छाया को आकृति रूप देने में रही होगी। यह भी सत्य है कि हम इतिहास की महान् वीर-विभूतियों और धार्मिक नेताओं की आकृतियों के बारे में भी कोई प्रामाणिक धारणा नहीं बना सकते। तब हम कल्पना-लोक की मिथ्या धारणा के बारे में विशेष अद्वितीय कल्पना कैसे कर सकते हैं? इसपर ये भूत-प्रेत हमारे मन में अच्छी भावना के प्रतीक नहीं माने गए हैं। आरम्भ से ही मृतक व्यक्ति की छाया देखकर मनुष्य के मन में भय का उद्रेक हुआ होगा। इसीलिए ऐसी कल्पना कर ली गई है कि भूत के सींग होते हैं, उसके पांव उल्टे होते हैं इत्यादि। ऐसा भी हो सकता है कि किसीने प्रतीकात्मक स्वप्न देख लिया हो और ऐसी धारणा का प्रचलन कर दिया हो।

‘कुछ भी हो, लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस योनि का कोई अस्तित्व नहीं। यह केवल मन की उपज है, आत्मा का भ्रम है।

‘धीरे-धीरे मनोवैज्ञानिकों ने इस बारे में अनेक प्रयोग किए। उन्हें पता चला कि यह योनि हमारे संस्कारों से सम्बन्धित है क्योंकि संस्कारों का जन्म किसी वस्तु को बार-बार देखने से अथवा सुनने से होता है। आप तृप्ति को लेकर सदा कुछ न कुछ देखते और सुनते रहे हैं। अतः यह आश्चर्य की वस्तु नहीं कि आप इस प्रकार की हरकतें करने लग जाएं। मनोवैज्ञानिकों ने इसे इस तरह स्पष्ट किया है कि मनुष्य के मन और तन के बीच प्राणों का सम्बन्ध है, प्राण ही तन और मन के सम्बन्ध को समाप्त कर देते हैं। और हमारा यह मन तन से सम्बन्ध रहित होकर एक सामूहिक मन में मिल जाता है।

‘पाश्चात्य विद्वानों की ऐसी भी धारणा है कि हम सबका एक सामूहिक मन होता है तब यह भी निर्विवाद रूप से मान लेना पड़ता है कि जब हम सबका एक

सामूहिक मन है तो हमारे संस्कार एक सीमा तक परस्पर सामंजस्य की भावना जरूर रखते हैं। तब हमारे संवेग, उद्वेग, विचार भी एक हृद में साग्यता रखेंगे, ऐसा मान लेना पड़ता है।

‘अब मैं आपको जरा और स्पष्ट कर दूँ कि ये भूत-प्रेत सिवाय मन के भ्रम के कुछ भी नहीं हैं। उनका सम्बन्ध सामूहिक संस्कारों का परस्पर मिलना ही है। जब व्यक्ति की अपनी चेतना होश खो देती है तब दूसरों के संस्कार उसमें समाहित होकर बोलने लगते हैं।

‘मैं आपको कभी कुछ उदाहरण देकर इसे और स्पष्ट करूँगी।’

२८

इन्दिरा ने हर्ष से प्रफुल्लित होकर कहा, ‘रोमी!’

रोमी ने गर्दन उठाकर गम्भीर दृष्टि से इन्दिरा की ओर देखा। इन्दिरा की मुख-श्री प्रसन्नता से दीप्त थी। भाग्य अभी तक उनके साथ नहीं हुआ था। इधर आर्थिक विषमताओं के कारण उन दोनों के बीच मौन दुराव उत्पन्न हो गया था। यह मौन दुराव उनमें कुंठाओं को जन्म दे रहा था।

‘क्या है?’ कुछ क्षण के उपरान्त रोमी ने पूछा। उसके स्वर में उसके अन्तस् की अनिच्छा स्पष्ट रूप से झलक रही थी।

‘देखो, मैं तुम्हारे लिए क्या लाई हूँ?’

‘मैं क्या जानूँ?’ उसने तनिक भी उत्सुकता नहीं दिखाई।

‘यह रही।’ कहकर उसने अपने आंचल के नीचे से एक नेम-प्लेट निकाली। उसपर मिस्टर रोमी की जगह ‘श्री राम’ लिखा था।

‘यह क्या?’ उसने विस्मय से पूछा।

‘आज से तुम राम हो गए। एकपत्नी-निष्ठ राम, सीता के लिए कनक की लंका जलाने वाले राम।’

‘तुम्हारी यह मनोवृत्ति अच्छी नहीं है।’

‘क्यों ?’ इन्दिरा की मुद्रा एकदम बदल गई ।

‘देखो, मैंने तुम्हारे कहने से अपनी पुरानी बाड़ी छोड़ी, वेश-भूषा और भाषा सभी को छोड़ा । किन्तु मैं इसे उचित नहीं समझता । तुम मेरी विवशता का अनुचित लाभ क्यों उठाती हो ?’

इन्दिरा की भृकुटियां देखते-देखते तन गईं ।

‘मैं अनुचित लाभ उठा रही हूँ ? देखो रोमी, यह लांछन मुझे अच्छा नहीं लगता ।’ उसने नाराजगी के स्वर में कहा ।

रोमी पुनः गम्भीर हो गया ।

आसमान बिलकुल साफ था । पड़ोसी का वच्चा जोर-जोर से चांय-चांय कर रहा था ।

‘मैं लांछन की बात नहीं करता हूँ । फिर भी यह विचारणीय है कि हम एक दूसरे पर पूर्ण रूप से विश्वास क्यों नहीं करते ?’

इन्दिरा की भौंहें किंचित वक्र हो गईं । वह लम्बे स्वर में बोली, ‘मैं तुमपर पूर्ण विश्वास नहीं करती, ऐसा तुम्हें नहीं कहना चाहिए । ऐसा कहकर तुमने मेरे अनुराग और स्नेह को बड़ी ठेस पहुंचाई है ।’

‘रोमी से राम बनाने की क्या आवश्यकता पड़ी ?’

‘राम मुझे प्रिय लगता है । प्रिय को अपनाने में विश्वास खंडित नहीं होता । तुम्हारी यह धारणा, कि मैं तुम्हें ईसाई से हिन्दू बना रही हूँ, सर्वथा मिथ्या है । मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, मैंने तुमपर सर्वस्व विसर्जन किया है; क्या मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि मैं तुम्हें रोमी से राम बना दूँ ।’ इन्दिरा की आंखों में सजलता चमक उठी ।

‘ऐसा किसने कहा ?’ वह अन्दर ही अन्दर भयभीत हो उठा ।

‘तुमने ! ... तुम ईसाइयों से घृणा करते थे । तुममें जरा भी असहिष्णुता नहीं थी, तुम अत्यन्त उदार थे । मुझे स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि तुम इन छोटी-छोटी बातों को लेकर मुझे पीड़ा पहुंचाओगे ।’ इन्दिरा के नेत्रों में अश्रु छलछला आए ।

‘मैं ईसाइयत से घृणा करता हूँ, यह तुमने कैसे जान लिया ? मैं उन ईसाइयों

से घृणा करता हूं जो मानवीय भावनाओं से परे प्रभु यीशु के नाम पर घब्बा लगाते हैं। देखो न, मिस्टर बोस ने....!’

‘इसपर भी तुम उन निम्न कोटि के व्यक्तियों में रहना चाहते हो ? आज तो केवल उन्होंने धार्मिक भावना के अन्धे प्रवाह में तुम्हारी रोटी-रोजी छीनी है, कल वे तुम्हारा जीवन भी छीन लेंगे।’

‘आदमी क्या इतना क्रूर बन सकता है ?’ वह विस्मय भरे स्वर में इस तरह बोला जिस तरह उसने यह प्रश्न मुख्यतः इन्दिरा से नहीं, अपने आपसे किया हो।

‘जरूर बन सकता है। धर्म की पुस्तकों में जितने व्यापक रूप से दया और करुणा के गीत गाए गए हैं, आदमी उतने ही भयंकर रूप से हृदयहीन और कठोर है। ‘जेरुसलम के धर्मयुद्ध’ क्या इसके प्रमाण नहीं, जहां ईसाइयों ने धर्मयुद्ध का नारा बुलन्द करके सारे यूरोप को मृत्यु की आग में भोंक दिया था ? ईसाइयों द्वारा यहूदियों को जीवित जला देना उस राक्षसी प्रवृत्ति का द्योतक नहीं जो उनके मन में धर्म के कारण ही उत्पन्न हुई थी ?’... उसने एक दीर्घ निश्वास लिया और शांति से बोली, ‘हम परमात्मा का नाम लेकर मनुष्य को इतना बड़ा अवश्य बना देते हैं कि वह सूरज की भांति निःस्वार्थ होकर सबकी सेवा करे किन्तु वह गन्दे नाले के पानी-सा भी उदार नहीं होता है जो जंगल के व्यर्थ वृक्षों को सींचकर उन्हें हरा बनाता है।’

रोमी उसकी ओर एकटक देखता रहा।

इन्दिरा चाय का पानी चढ़ाने लगी। चाय का पानी चढ़ाते-चढ़ाते वह बोली, ‘तुम्हारे समाज में अहंकार भरा पड़ा है। तुम्हारे ईसाई भाई कानून द्वारा सत्य का गला घोटना खूब जानते हैं। उनकी नैतिकता इतने नीचे गिर गई है कि वे अपनी युवा लड़कियों को भी अपने सुख के दांव पर लगा देते हैं। तुम कदाचित् भूल गए हो कि भिखारी ‘थामस’ की हत्या में क्या दैवी चमत्कार था ? उसे तुम्हारे पड़ोसी मारक्विस ने मारा था। जादू से किसीकी भी हत्या नहीं होती। बेचारा थामस, उसे गौरांग प्रभु शांति दें, कितनी पीड़ाजनक मृत्यु से परलोक गया होगा ? ...मारक्विस अवैध रूप से अफीम-गांजा बेचता है। उन अवैध पैसों से वह अपने जीवन का वैभव विलास एकत्र करता है। अपने समाज में सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति

गिना जाता है। आखिर यह सब क्यों ? क्या देवता पाप और अपराध के लिए भी मनुष्य को शक्ति प्रदान करता है ? यदि यह सही नहीं होता तो मारक्विस जैसा दुष्ट प्रकृति का प्राणी एक पल के लिए भी इस धरती पर सांस नहीं ले सकता।... और तुम इन्हीं व्यक्तियों में अपना शेष जीवन व्यतीत करना चाहते हो ? मैं ऐसे व्यक्तियों से सख्त घृणा करती हूँ। मैं वहाँ एक पल के लिए भी नहीं रह सकती।'

रोमी काफी देर से उसका एक पक्षीय भाषण सुन रहा था। चाय का प्याला हाथ में लेकर बोला, 'मेरे ही धर्म में थामस जैसा आदमी था जो भिखारी होकर भी प्रत्येक प्राणी के सुख-दुख में शरीक होता था। मेरे ही धर्म का अनुयायी पादरी एडमंड ग्रे है, जो प्रचंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ अपने सुख को दान कर स्वयं दूसरों के कष्टों को ले रहा है। इन्दिरा, यह असहिष्णुता अच्छी नहीं है। वैसे मैं तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल नहीं चलूंगा। क्योंकि मैं सर्वस्व देकर केवल तुम्हें पाना चाहता हूँ। कुछ भी करके तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ।'

अब तक वे दोनों चाय पी चुके थे। कुछ देर घोर निस्तब्धता छाई रही। दोनों अपने-अपने विचारों में तल्लीन थे। काफी देर बाद इन्दिरा व्यथा से अभिभूत होकर बोली, 'तुम अपनी आत्मा को एक सीमा तक मार लो रोमी, नहीं तो मुझे बड़ा दुख होगा। मैं चाहती हूँ कि तुम मेरी आज्ञा को इस तरह पूर्ण करो, जिस तरह एक गुलाम अपने स्वामी की करता है।... मैं तुम्हारे चरणों पर गिरकर तुमसे यही प्रार्थना करती हूँ। बोलो, मानोगे न मेरा कहना ?'

रोमी ने गहरी आह छोड़ी। उसका सारा शरीर जड़ था। वह कुछ क्षण उसी चमचमाते स्वच्छ आसमान को देखता रहा। उड़ती हुई चिड़िया और चील भी उसके मन को व्यर्थ का क्षणिक विचार दे जाती थी। न जाने वह चील को देखकर यह क्यों सोच बैठा कि यदि वह चील होता तो अति उत्तम होता।

फिर वह खिड़की में आकर खड़ा हो गया। रास्ता कोलाहल से पूर्ण था। भांति-भांति के लोग विभिन्न वोलियां बोलते हुए यंत्रवत् आ-जा रहे थे। उपमागों से मनुष्य की भीड़ उस खास रास्ते के लोगों में इस तरह मिलती थी जैसे प्रयोग-वादी कवियों की कोई उपमा हो।

रोमी उन सबको देखता रहा। समझता रहा। फिर आकर वह गर्दन झुकाकर,

नेत्र मूंदकर कुर्सी पर बैठ गया। इन्दिरा अपनी साड़ी बदलने लगी। उसने मेक-अप करके कहा, 'मैं ए० सी० घोष एंड कम्पनी जा रही हूँ। वहीं एक क्लर्क की आवश्यकता है।'

‘इस धूप में?’

‘हां, उन्होंने अभी का ही समय दिया है।’

रोमी कुछ नहीं बोला। इन्दिरा गंभीर मुद्रा लिए चली गई।

उसके जाते ही पड़ोसी का बच्चा फिर चांच-चांच कर उठा। क्षण भर के लिए वह विमूढ़-सा रहा और फिर विचारने लगा कि वह विलकुल बदल गया है। उसमें महापरिवर्तन आ गया है। यह सब कैसे? उसके भारी-भरकम विचार, सुन्दर शब्दावली, प्रभावशाली व्यक्तित्व, ये सब कहां चले गए? एकबार एडमंड ग्रे ने उसकी इन्हीं सब बातों को लेकर कहा था कि तुम बहुत अच्छे धर्म-प्रचारक बन सकते हो। किंतु कल उसीने कहा, ‘तुम अब एक साधारण प्राणी मात्र रह गए हो? प्राचीन कथाओं के उस पात्र की तरह जो दानवी शक्ति से एकदम बदल गया हो।’ तब उसे स्वयं का विश्लेषण करने के लिए विवश होना पड़ा। उसने अपनी परिस्थिति का बड़ी बारीकी से विवेचन किया और उसे लगा कि इन्दिरा के सम्पर्क में आने के पश्चात् वह इस दशा में पहुंचा है। इन्दिरा के प्रति पूर्व-आसक्ति उसके लिए हितकर थी किंतु पूर्वोत्तर की तृप्ति उसकी सारी भावुकता को मिटा गई। यह निर्णय करते ही वह सन्न-सा रह गया। फिर उसे यह निर्णय उचित होते हुए भी स्वयं को भयप्रद प्रतीत हुआ, अतः उसने अपने परिवर्तन का आधा बोझ ‘अर्थ’ पर डाल दिया। धीरे-धीरे उसने अपने आपपर आरोप लगाने के हेतु अपनी आत्मा को यह गर्जना करने के लिए विवश किया, ‘उसके परिवर्तन का कारण उसकी अपनी गरीबी है। इन्दिरा नहीं।’ इस गर्जना से उसे काफी संतोष मिला। उसे आन्तरिक सुख की अनुभूति हुई।

तत्पश्चात् उसके विचार बेल की भांति इन्दिरा रूपी वृक्ष के चारों ओर लिपटते गए। अन्त में उसने इन्दिरा की प्रत्येक बात को मान लेने में ही अपना हित समझा लेकिन उसने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए यह भी निर्णय किया कि

वह अपने अभावों का रोना उसके आगे नहीं रोएगा। चाहे उसके पास पीने को सिगरेट भी न रहे। ८

२९

नरोत्तम की दशा पहले से काफी सुधर गई थी। तारिणी के द्वारा नरोत्तम का मानसिक उपचार चल रहा था। सेक्स की अतृप्ति नारी-संसर्ग और समर्पण पाकर एक ही केन्द्र पर केन्द्रीभूत हो गई। दौरे कम पड़ने लगे। मन का भय भी भाटे में आई नदी के जल की भांति क्रमशः घटने लगा। सेठजी और सेठानी इससे बड़े प्रसन्न थे।

इन एकांत क्षणों में कभी-कभी नरोत्तम को इन्दिरा की याद हो आया करती थी। वह कहाँ है? क्या करती है, इन्हीं सब बातों में कभी-कभी उलझ जाता था। उस उदासी को देखकर तारिणी लापरवाही से कहा करती थी, 'तुम व्यर्थ में परेशान हो जाया करते हो। कह दिया न कि भूत-प्रेत कुछ नहीं हैं।' वह कहने लगती और नरोत्तम सुनता—

'मेरे एक बहुत ही परिचित मित्र हैं। वे साहित्यिक हैं। हिंदी में उनको यथेष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनकी पत्नी है। बौद्धिक धरातल का गहरा अंतर होने के कारण वे पति-पत्नी के रिश्ते के अलावा दोनों एक दूसरे से बहुत असंतुष्ट रहते हैं। इसपर संयुक्त परिवार में पनपती हुई द्वेषात्मक अधिकार की लड़ाई।...लेखक महोदय का अजीब हाल रहता है। पत्नी को कहे तो बुरा और घर वालों को कहे तो बुरा! फिर भी उनका मन पत्नी को ही भला-बुरा कहता है। उनके महान् आदर्श परिवार के सम्मुख अडिग रहते हैं और पत्नी के सम्मुख वे विकराल से विकराल और करुण से करुण रूप से प्रकट होते हैं।...धीरे-धीरे उनकी पत्नी के अचेतन मन में अपने प्रति, अपने पति के प्रति और अपने परिवार के प्रति विद्रोहात्मक घृणा उत्पन्न होती गई।...लाचार एक दिन वह बेहोश हो गई।...अनुमान क्या? प्रमाणित कर दिया गया कि इसे कोई भूतनी लग गई है। तंत्र-मंत्र वाले आए।

‘अब मैं आपको क्या बताऊँ ? उस समय खुद खड़ी थी। एक मंत्रवाले ने अपनी जेब में हाथ डालकर अंजली में पानी लेकर उनकी पत्नी की आँखों पर छिड़का। वह क्षण भर में, ‘मेरी आँखें जल रही हैं, मेरी आँखें जल रही हैं’... कहकर पुनः सो गई।

उस भाड़ागर ने तुरन्त दुबारा अपनी जेब में हाथ डाला और कड़ककर कहा, ‘तेरी आँखें क्या, मैं खुद तुझे जलाकर भस्म कर दूंगा या सच-सच बता कि तू कौन है ?’

‘फिर उन्होंने पानी छिड़का और वह उसी प्रकार कहकर अचेत हो गई। अब लेखक महोदय ने भाड़ागर के समीप बैठकर उनकी जेब को टटोला। उनकी जेब में काली मिर्च व नीम्बू का सूखा हुआ ‘सत’ निकला।

‘भाड़ागर जी भाड़ू खाए हुए-सा मुँह बनाकर चले गए।

‘रूढ़िवादी नवीनता का विरोध करते ही हैं।

‘एक और योगी महाराज आए। उन्होंने अपनी हथेली में त्रिशूल बनाकर यह सिद्ध किया कि इन्हें माता देवी का दोष है। उसका रहस्य भी बताऊँ आपको, राजस्थान में ‘आक’ नामक वृक्ष होता है। उसकी डंठल को तोड़ने से उसमें से दूध निकलता है। उस दूध से पहले ही हथेली में वह त्रिशूल बना लिया जाता है। सूखने पर वह दूध सरलता से साफ नहीं होता। फिर उसपर कुंकुम को गीला करके लगाने से वैसी ही शकल उभर आएगी जैसी आपने उसपर अंकित की है। वे भी कुछ भेंट-पूजा लेकर चले गए।

‘पर चौबीस घंटों की बेहोशी के बाद उनकी पत्नी रोने लगी और रोती-रोती जब वह थक गई तब उछल-कूद करने लगी। इस बीच कभी-कभी विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों के सूचक शब्द बोल जाती थी। बाद में डाक्टरों ने हिस्टीरिया रोग कायम कर दिया।

इसके बाद धीरे-धीरे पति की अधिक देखभाल और अपनत्व के कारण वह रोग स्वतः ही कम होता गया। उसके लक्षण, उसका जोश और उसकी उछल-कूद धीरे-मित गई।

‘उनकी पत्नी के साथ एक और विलक्षण घटना थी। उसका एक छोटा भाई

लगभग दस साल की उम्र में मर गया था। वह देवयोनि में चला गया, ऐसा सुनते हैं। वैशाख माह में उनकी पत्नी दो घड़े पानी उसके निमित्त किसी पंडित को दे दिया करती थी। इस अचेतन अवस्था में यदि वह उसी विशेष माह में पानी के घड़े नहीं देती थी तो उसका भाई भी उसके मुंह से बोलने लगता था कि मैं प्यासा हूँ। पानी के घड़े स्वयं उनकी पत्नी द्वारा सिर पर उठाकर डाल आने पर इस प्रकार की घटनाएं कभी नहीं होती थीं। अब आप ही बताइए कि इसे हम अपने अचेतन मन की प्रतिक्रिया नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे ?

तारिणी कुछ देर तक रुकी और फिर बोली, 'आजकल लेखक और उनकी पत्नी बड़े प्रसन्न हैं। संयुक्त परिवार के द्वेषात्मक वातावरण से मुक्त होते ही उनकी आत्मीयता बढ़ी और उनकी पत्नी विल्कुल स्वस्थ हो गई। यह संयुक्त परिवार इस अर्थ-व्यवस्था की अत्यन्त दूषित प्रणाली है।'

नरोत्तम कुछ नयापन अनुभव करता हुआ मुस्कराकर बोला, 'देखो, तुम्हारी चाय ठंडी हो गई है।'

३०

उस दिन चौरंगी के एक रेस्तरां में सुबोध ने रोमी को देखा। रोमी उसे नहीं जानता था पर सुबोध उससे भली भांति परिचित था। संन्यासी जीवन में वह कई बार इन्दिरा को देखने गया था। उसकी दुर्दशा से उसकी आत्मा को बहुत कष्ट होते थे किंतु वह नहीं चाहता था कि वह इन्दिरा के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करे। उसका अपना विचार बन गया था कि व्यक्ति स्वतंत्र है। फिर इन्दिरा को बांधकर रखना भी अति दुर्लभ था।

उसने रोमी से पास बैठने की इजाजत मांगी। रोमी ने उसे दे दी। सुबोध ने चैरे को 'काफी' लाने के लिए कहा। रोमी एक कप काफी पी चुका था। उसने अपनी जेब में हाथ डालकर पैसों को देखा। फिर एक हल्की आह छोड़ी।

सुबोध उसके मर्म को जान गया।

धीरे से काफी का घूंट लेता हुआ बोला, 'मैंने आपको कहीं देखा है ?' एक क्षण रुककर वह पुनः बोला, 'क्या आप इंक का बिजनेस करते हैं ?'

'जी हां !' उसने अनिच्छा से कहा ।

'तब तो मैंने आपको पहचानने में गलती नहीं की । आप ईसाई हैं न ?'

'जी !'

'आपका व्यापार कैसा चलता है ?'

रोमी को यह सब अच्छा नहीं लगा । परेशानी की हालत में वह बिल्कुल मौन रहना चाहता था । अभावों में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । इसपर एक अपरिचित व्यक्ति ! वह सुबोध को घूर-घूरकर देखने लगा ।

सुबोध उसके अन्तर्मन की बात समझ गया । तुरन्त उसके स्वार्थ को स्पर्श करता हुआ बोला, 'मैं तो केवल आपकी ही स्याही प्रयोग में लाता हूं । इधर आपको मैंने नहीं देखा । आप स्वस्थ तो है ?' उसने पैनी दृष्टि से रोमी को घूरा, 'लेकिन यह मैं दावे से कह सकता हूं कि आपकी स्याही तमाम स्याहियों से अच्छी है । साहब, इसपर पानी का भी असर नहीं होता ।'

अपनी प्रशंसा में कहे गए इस वाक्य को सुनकर रोमी को सुबोध में तनिक दिल-चस्पी हुई । सुबोध को उसने ऐसे देखा जैसे वह उसका गंभीरतापूर्वक अध्ययन कर रहा हो । फिर बोला, 'आप बिजनेस करते हैं ?'

'नहीं तो ?'

'फिर ?'

'छोटी-सी जमींदारी है ।'

'ओह, आप मकान-मालिक हैं ।'

'जी, ...वैरा एक कप काफी और ।'

सुबोध ने बात का सिलसिला जोड़ा, 'फिर आपका बिजनेस कैसा चल रहा है ? मेरे विचार से अब तो आपका व्यापार खूब चल पड़ा होगा ।'

'कहां चल पड़ा है । हमारे एक पड़ोसी सज्जन मिस्टर बोस ने धार्मिक धृष्टि को लेकर उस फार्मूले को जन साधारण को बताया । अब इस स्याही के तीन कारखाने हैं ।'

सुबोध ने अपनी दृष्टि रोमी से हटाकर दीवार पर लगे जनसम दर्पण पर जमा दी। दर्पण में किसी युवती का चेहरा स्पष्टतया झलक रहा था, उसे देखकर उसकी दृष्टि चंद क्षणों के लिए भटक गई।

बैरा यदि काफी लाने की सूचना नहीं देता तो न जाने सुबोध कब तक उस अपरिचित युवती के अपरिसीम सौन्दर्य को देखता रहता।

‘आपको काफी दो।’ सुबोध ने रोमी की ओर संकेत किया।

‘लेकिन मैंने तो...’

‘कोई बात नहीं, काफी ऐसी चीज़ नहीं है कि नुकसान पहुंचाए। लीजिए न?’ सुबोध ने अपने विचारों को पुनः रोमी पर केन्द्रीभूत किया। ललाट पर हाथ फेर-फेर वह बोला, ‘मिस्टर बोस ने आपकी रोज़ी छीन ली। वास्तव में ये बंगाली लोग ऐसे ही होते हैं। थोड़े-से लोभ-लालच में ये अपने आत्मीय तक को बड़ी से बड़ी हानि पहुंचा सकते हैं।’

रोमी को एक झटका-सा लगा। प्याले को रखता हुआ वह व्यग्रता से बोला, ‘नहीं-नहीं, आप ऐसा न कहिए, वह बंगाली नहीं है, वह ईसाई है, मेरी अपनी जात का है। उसने धार्मिक द्वेष के कारण ही यह अनर्थ किया है। सोचता हूं कि जिस धर्म के मानने वालों में सहिष्णुता नहीं है, क्या वह धर्म चिरायु रह सकता है? मैं आपको सच कहता हूं कि जिस धर्म के अनुयायी अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए रुपये खर्च करते हैं, प्रलोभन देते हैं, उस धर्म के अवलंबी कभी उसके मर्म को नहीं समझ सकते।’

‘लेकिन आपने...’

‘मैंने एक बंगाली युवती से प्यार किया था। मैंने उसे कभी भी ईसाई बनने को नहीं कहा। जबकि हर ईसाई युवती, जो अपने सौंदर्य का संमोह किसी युवक पर डाल सकती है, अपने प्रेमी को इस बात के लिए अवश्य विवश करती है कि वह ईसाई हो जाए। अथवा एक लड़का, जो किसी परिस्थिति-पीड़ित युवती से प्रेम करता है, वह प्रेम के प्रचुर प्रदर्शन के साथ-साथ आंतरिक रूप से इस बात के लिए पूर्णरूप से सचेष्ट रहता है कि वह उसे ईसाई बनने के लिए तैयार करें। ऐसा करने वाला युवक ही हमारे संप्रदाय में एक सच्चा यीशु-भक्त कहला सकता है।’

रोमी इतना कहकर चुप हो गया। सुबोध भी किसी गहरे विचार में खो गया। दर्पण वाली युवती मेज पर अंगुलियां नचा रही थी। उसके चेहरे पर गहरी उदासी छा गई थी। यदा-कदा वह दीर्घ सांस छोड़ देती थी।

‘आपकी सहिष्णुता अनुकरणीय है। क्या वह भी इतनी ही सहिष्णु है?’ सुबोध ने तनिक सहमते हुए यह प्रश्न किया। रोमी भाव-लोक में वह गया। कौन बात कहनी चाहिए अथवा नहीं कहनी चाहिए, इसपर बिना सोचे ही वह निरंतर बोलने लगा, वह मेरे जैसी सहिष्णु नहीं है। उसके विचारों में अनेक विचित्र ग्रंथियां हैं। वह मुझे प्रेम भी करती है किंतु उसके साथ वह यह भी चाहती है कि मैं रोमी से राम बन जाऊं। यह मुझे अच्छा नहीं लगता। अपने विचारों को दूसरों पर थोपना अधिक श्रेयस्कर नहीं हो सकता। हालांकि मैंने उसकी इस बात का कड़ा विरोध विरोध के रूप में नहीं किया, सैद्धांतिक रूप से मैंने उसे समझाया कि हम यह प्रयास ही छोड़ दें कि हम एक दूसरे को अपने-अपने धर्म में घसीटेंगे क्योंकि यह धर्म के पचड़े ही पारिवारिक शांति का हरण कर लेते हैं। किंतु वह मुझे राम बनाने पर तुली हुई है और मैं राम बन ही जाऊंगा।’

‘ऐसा क्यों?’

‘उपकार का बदला प्रत्युपकार ही हो सकता है। कुछ ऐसी बातें होती हैं जिन्हें प्रकट करना स्वयं की निम्नता का प्रदर्शन करना होता है किंतु वे बातें प्रायः हमारे मन में सत्य की तरह गूंजती रहती हैं और हमें चिंतित करती रहती हैं। वैसी ही एक बात मैं आपको कहना चाहता हूं—जब हमारा पारिवारिक जीवन भावना के परे यांत्रिक रूप में चलता हो तब हमें एक दूसरे को अधिक से अधिक अहसानों से दवाना चाहिए। इन्दिरा का और मेरा नाता करुणा को लेकर जन्मा। उसके मनोविज्ञान की बात मैं नहीं करता, किंतु यह सही है कि उसने मुझपर बहुत बड़ा अहसान किया है। इस अहसान का बदला यही है कि मैं चुप रहूं। उसके निर्देश में चलूं।’

सुबोध ने अपने नेत्रों को उठाकर कहा, ‘आपके कथनानुसार तो एक व्यक्ति की हत्या होती है पर व्यक्ति को अपनी ही हत्या नहीं करनी चाहिए।’

‘व्यक्ति की हत्या इतनी महत्वपूर्ण नहीं, जितनी परिस्थिति। परिस्थिति को

देखकर यदि मैं उससे क्षणिक समझौता नहीं करूँ तो परिणाम यह होगा कि मुझे अपनी पत्नी से विलग होना पड़ेगा। उसका वियोग मेरे लिए सह्य नहीं। मैं उससे अलग नहीं रह सकता। सचमुच मैं उसे अंतस् से प्यार करता हूँ।’

‘इसका तात्पर्य यह हुआ कि आप सब कुछ सहन करेंगे?’

‘क्यों नहीं? यदि ऐसा नहीं करूँगा तो वह मुझे छोड़कर चली जाएगी। वह बड़ी अस्थिर चित्त वाली है। देखो न आज चार...’। रोमी हठात् सावधान हो गया। उसका मुख गंभीर हो गया। उन्मन भाव उसके चेहरे पर बरसाती बादलों की तरह छा गए।

‘आप चुप क्यों हो गए?’ सुबोध ने अधीरता से पूछा।

‘मनुष्य बहुत दुर्बल है तभी वह अपनी कमजोरियों को अपने दिल में नहीं छिपा सकता।’ उसने अत्यंत शांति से कहा। उसके चेहरे पर महात्मा-सा सारल्य था, ‘और यह दुख भी क्या है? हृदय में छुप नहीं सकता। देखिए न, मैंने आज आप को पहली बार देखा, न जान और न पहचान। प्रथम परिचय के पश्चात् ही...’

सुबोध क्षणिक मंद मुस्कान के साथ बोला, ‘संबंध का गहरा होना समय के दायरे में नहीं बंधा है। आप तीक्ष्ण बुद्धि वाले हैं और इसपर...! सचमुच यदि मैं आपके काम आ सका तो अपना सौभाग्य मानूंगा। आप निश्चित रहिए, मैं आपको कोई हानि नहीं पहुंचाऊंगा। आप यह मानकर चलिए कि मैं आपका बहुत ही पुराना मित्र हूँ। सुख-दुख का साथी और सर्वस्व!’

मेज पर रखे हुए सुबोध के हाथों को मजबूती से पकड़ता हुआ रोमी बोला, ‘भूख और अभाव ही मनुष्य की सबसे बड़ी परीक्षा है, अग्नि-परीक्षा। सच कहता हूँ...’

‘प्रेमेंद्र...!’ सुबोध ने अपना नया नाम बताया।

‘प्रेमेंद्र बाबू, ऐसे दुर्दिन मैंने नहीं देखे। ऐसे कष्ट मेरे जीवन में आज तक नहीं आए। संपूर्ण रूप से प्रकृति मुझसे रूठी हुई है। मन में शंका-सी उठती है, प्रभु ईसा मुझसे बदला ले रहा है।’

‘यीशु और बदला?’ उसने विस्मय से पूछा।

‘हां, वे धर्म-विद्रोहियों अथवा घातकों से बदला भी ले सकते हैं क्योंकि उनके

हाथ में नंगी तलवार भी है। हमारी पुस्तकों में एक उदाहरण है—एकवार यहूदियों के पुरोहितों और ईसाइयों के पादरियों में विवाद हुआ। अन्त में यहूदियों ने कहा, 'अगर तुम्हारा ईसामसीह सचमुच आकाश पर जिन्दा है तो वहां से उतरकर हमें इसी वक्त दिखाई दे, हम तुम्हारा धर्म मान लेंगे। इसपर उसी समय वादल गरजे, बिजली चमकी और हजरत ईसा दिखाई पड़े। उनके सिरपर मुकुट और हाथ में नंगी तलवार थी।...यह नंगी तलवार कुछ भी नहीं प्रतिशोध लेने की प्रतीक ही है। ईसा प्रभु और नंगी तलवार?...' फिर अभाव सब कुछ सोचने के लिए विवश कर देते हैं।'

दो काफी और टोस्ट का आर्डर दिया गया। समीप की मेज पर एक बंगाली थोड़ा उन्माद भरी हंसी हंस रहा था। दर्पणवाली युवती के उदास मुखपर अब उल्लास की उमियां नाच उठी थीं! उसके अधरों पर मुस्कान थी क्योंकि उसकी ओर एक सुन्दर युवक आ रहा था। दर्पणवाली युवती ने उससे हाथ मिलाया और धीरे-धीरे वे दोनों बातचीत में संलग्न हो गए।

रोमी और सुबोध ने गहरा मौन धारण कर रखा था। काफी और टोस्ट आ गए थे। एक-एक टोस्ट उठाते हुए उन्होंने एक दूसरे को देखा। सुबोध ने मौन तोड़ा 'आपने प्रसंग को छोड़ दिया। चार कहकर...'।

रोमी की आंखों में सहज मानवीय लज्जा तैर उठी। काफी पर दृष्टि जमाता हुआ वह बोला, 'चार दिन से हम बड़े कष्ट में हैं। मेरा मन काम करने को नहीं चाह रहा है और इन्दिरा को कोई जाब नहीं मिल रहा है। दंभी इतनी है कि किसीसे उधार तक नहीं मांगती। इस कारण हम दोनों के बीच, '...और मुझे कौन रुपए उधार दें? मेरे अपने सम्प्रदाय वाले मुझसे रुठ हैं। धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले को कौन मदद दे?'

सुबोध ने अपनी जेब से सौ रुपए निकालकर रोमी को दे दिए और बोला, 'आज से मेरे और तुम्हारे आत्मिक सम्बन्ध शुरू होते हैं। लेकिन एक शर्त है कि इन्दिरा को कुछ भी मालूम न हो। पुरुष को सदा स्त्रियों के समक्ष सवा सेर ही बनकर रहना चाहिए। यदि वह पूछे तो कह देना कि स्याही बनाने के आर्डर के एडवांस लाया हूं।'

रोमी की आंखें सजल हो उठीं, 'प्रेमेन्द्र बाबू'... आपने आज मेरी लाज रख ली। मैं किसी भी शर्त पर इन्दिरा को सुखी देखना चाहता हूं। आपकी यह मदद...'

'कोई किसीकी मदद नहीं करता। कोई करुणा से देता है, कोई स्वार्थ से देता है, कोई किसीको नीचा दिखाने के लिए देता है, बस ये ही देने के नियम हैं।' सुबोध बीच में बोल पड़ा और उठ गया... 'मैं तुम्हें एक सप्ताह के बाद यहीं मिलूंगा लेकिन तुम अपनी शर्त पर अटल रहोगे।'

रोमी ने उठते हुए हाथ मिलाया।

सुबोध जैसे ही दृष्टि से ओझल हुआ वैसे ही रोमी ने एक बार उन रुपयों को प्यासी निगाहों से देखा और फिर वह बाजार की ओर चल पड़ा।

३१

दूर-दूर तक विस्तृत किले के मैदान में अनेक नर-नारी घूम रहे थे। एक नीरव छोर पर नरोत्तम तारिणी का हाथ पकड़े खड़ा था। रोग उसका नहीं के बराबर हो गया था। किंतु कभी-कभी वह तृप्ति और इन्दिरा को लेकर परेशान हो जाया करता था।

हरीतिमा पर उछलते हुए मेढ़कों को देखकर तारिणी हंस पड़ी। नरोत्तम चौंक गया। तारिणी ने मुक्त हारय के साथ उसका हाथ खींचा और हरीतिमा पर लेट गई। नरोत्तम उसके पास यंत्रवत् लेट गया। उसने अखंड मौन धारण कर लिया। कुछ बोला नहीं। तारिणी समझ गई कि अभी तक उसके मन का कांटा नहीं निकला है। अतः वह मुस्कराती हुई बोली, 'तुम अपने आपको व्यर्थ परेशान क्यों करते हो? देखो, तुम अब कितने स्वस्थ हो चुके हो?'

'फिर भी...?'

'मैं तुम्हें कई बार कह चुकी हूं कि भूत-प्रेत कुछ भी नहीं हैं। मन का भ्रम... बस !'

'आज मैं तुम्हें फिर एक विचित्र घटना सुनाती हूं—एक सुखी-सम्पन्न परिवार

है। वहां भी संयुक्त परिवार की प्रणाली है। घर का मुखिया आज भी उस परिवार की सर्वोपरि सत्ता का संचालक है। उस संचालक के दो बेटियां थीं। प्रकृति का प्रकोप समझिए—वे दोनों अकालमृत्यु को प्राप्त हो गईं। अकालमृत्यु से मेरा तात्पर्य यह है कि चेचक के भयानक रोग में वे दोनों अपने मन की तमाम इच्छाओं को लेकर चल बसीं।

‘अशिक्षितों में भूत-प्रेतों की कई कथाएं प्रचलित होती ही हैं। उनके आधार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। भूत-प्रेतों की योनि की मान्यताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं। उनमें एक यह भी है कि जिस व्यक्ति की लालसाएं, इच्छाएं और स्वप्न अधूरे रह जाते हैं, वे भूत बनते हैं। उनकी मुक्ति नहीं होती

‘इसलिए उनकी दोनों बेटियां भूतनियां हो गईं।

‘अब प्रश्न यह उठता है कि वे भूतनियां बनकर किसको दिखलाई पड़ीं ?

‘गौर कीजिए—एक थी उन दोनों की बहुत गहरी भायली।

‘एक थी—उनकी समवयस्क, परिवार की भांजी !

‘मैंने उस घटना का बहुत ही गहराई से अध्ययन किया है। वे दोनों हम-उम्र थीं। उनके आपसी विचारों में तादात्म्य था। दोनों में घनिष्ठ मैत्री-भाव एवं सामीप्य था। हमउम्र होने के कारण यौवन की बहुत-सी बातें परस्पर एक दूसरी युवती में एक-सी मिल ही जाती हैं। वे घंटों में आपस में एक दूसरे को अपने छद्म जीवन की बातें बताया करती थीं। वे एक दूसरे की शुभ कामना करती थीं। उनका पारस्परिक सम्बन्ध इतने तक ही सीमित नहीं रहता था बल्कि वे आपस में अपने-अपने पतियों के साथ हुई बातें तक कर लेती थीं। तीज-त्यौहार, मेला, मंदिर आदि किसी भी कार्यक्रम में वे दोनों साथ-साथ रहा करती थीं। दोनों ने कई प्रकार की प्रतिज्ञाएं भी की थीं जैसे साथ-साथ तीर्थाटन करेंगे, साथ-साथ परदेस जाएंगे, हमेशा साथ रहेंगे।

‘इन बातों से एक वस्तु का स्पष्टीकरण हो जाता है कि वे दोनों एक मन, दो प्राण थीं। यह मुहावरा भी हमारे उस सामूहिक मन की बात की पुष्टि करता है।

‘अचानक चेचक की बीमारी फैलती है। चेचक छूत का रोग होता है। वह व्यक्ति को अपने आक्रमण से इतना भयानक बना देता है कि आप पहचान नहीं

सकते कि रोगी कौन है ? उसकी विभीषिका का चित्रण स्पेन की नोबल पुरस्कार विजयिनी सेल्मा लेजर ब्रॉफ ने अपने उपन्यास 'आउट कास्ट' में बहुत ही मार्मिक किया है। वह तो यहां तक लिखती है कि इस रोग के भय से पति ने पत्नी को नहीं छूया।

फिर भी ऐसे भयानक रोग में एक बहिन ने दूसरी बीमार बहिन की भरसक सेवा की। पर उसकी सेवा व्यर्थ गई। एक बहिन मर गई और दूसरी उसी रोग में जकड़ गई।

‘उसके ठीक पांचवें दिन उसकी भी मृत्यु हो गई। वर्षों से अन्धकार में मानस को परिपक्व करने वाले कह उठे कि बड़ी बहिन छोटी बहिन को ले गई अर्थात् उसने भूतनी बनकर अपनी सगी बहिन का गला दबा दिया।

‘मरी वह रोग से है पर फिर भी इस अध्यात्मवाद की धरित्री की प्रजा विचित्र है। यहां अजीब-सी धारणाएं और मान्यताएं हैं।

‘कुछेक औरतों ने इसे भी इस तरह की भाषा में कहा, ‘एक बहिन दूसरी बहिन को किस तरह छोड़ती ? दोनों में परस्पर गहरा प्रेम था, दांत काटी रोटी थी।’

‘इन दोनों बहिनों की मृत्यु के बाद भूत-प्रेतों में विश्वास रखने वाली वे दोनों युवतियां इस आतंक से कैसे बच सकती थीं।

‘उनके मन में पूर्णरूप से यह बात बैठ गई कि अब वे दोनों उन दोनों को लेकर जाएंगी। भाव, विचार और संस्कार सभी कुछ उन चारों के समान थे ही। धीरे-धीरे उनके अचेतन मन में वही भय दिन-प्रति दिन भयंकर होता गया। हर क्षण की मृत्यु की आशंका उन्हें विक्षिप्त-सी करने लगी।

‘दोनों एकांत में बैठकर बातें किया करती थीं। वे ही बातें और प्रतिज्ञाएं ! उनकी निरन्तर पुनरावृत्ति !

‘साथ रहेंगे, साथ घूमेंगे।’

‘और एक दिन मैंने स्वयं अपने कानों से सुना—

‘उसकी भांजी ‘देवी’ अपनी सखि इन्दु से कह रही थी, ‘कल रात बड़ी बहिन मुझे दिखलाई पड़ी थी।’

‘‘और छोटी मुझे दीखी थी।’

‘क्या कहा तुम्हें ?’

‘कहा, तुमने साथ रहने का वायदा किया था, अब मुझसे दूर क्यों रहती हो ?’

‘तुमने क्या उत्तर दिया ?’

‘मैं चुप हो गई पर तुम्हें बड़ी ने क्या कहा ?’

‘बहिन, वह चेचक के कारण बड़ी भयानक लगने लगी है। उसका सारा चेहरा दागों से भरा है।...वाप रे, कहने लगी कि बस अब मैं तुम्हें लेने आने वाली हूँ।’

‘इस प्रकार की बातों में हर समय रहते-रहते व्यक्ति का क्या हो सकता है ? हमारी भावना ही तो सर्वस्व है।’ जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी...वही बात है। जब पत्थर की निष्प्राण प्रतिमा में भी चैतन्य के दर्शन सुलभ हो सकते हैं, फिर क्यों नहीं किसी आत्मा में अन्य आत्मा का प्रतिविम्ब झलक पड़ता है ?

‘धीरे-धीरे वे दोनों भूतनियां बोलने लगीं।

‘लेकिन कुछ डाक्टर बड़े विवेक से काम लेते हैं। उन्होंने शनैः-शनैः उनके भय को दूर कर दिया। उन संस्कारों की नींव ही खोद डाली जो उनकी जीवात्मा पर छा गए थे। फिर वे एकदम अच्छी हो गई।’

...नरोत्तम एक अच्छे छात्र की तरह तारिणी की बातें सुन रहा था।

३२

एक सप्ताह के बाद सुबोध की भेंट रोमी से पुनः हुई। इस बार उसके साथ सुनंदा थी। सुनंदा अपनी उत्सुकता को नहीं रोक सकी। उसने हठ ही पकड़ लिया कि वह रोमी को देखेगी। वह उस ईसाई को देखेगी जिसने उसकी दीदी का धर्मभ्रष्ट किया है।

जल्दी से काफी पीकर वे वहां से उठे।

रोमी ने सबसे पहले पूछा, ‘यह कौन है प्रमेन्द्र बाबू ?’

सुनंदा ने भोलेपन से देखा। उसके अधरों पर हल्की-सी मुस्कान नाच उठी। उसका जीजा अभिनय कर रहा है।

‘यह मेरी साली है। मुझे अधिक चाहती है। लाजवंती और गुणवंती ! नमस्कार करो इन्हें।’

सुनन्दा ने अनिच्छा से नमस्कार कर दिया।

रेस्तरां पीछे छूट गया था।

रोमी कह रहा था, ‘मैंने इन्दिरा को आपकी ही बात कही। रुपया देखते ही उसका गुस्सा आधा हो गया और जब मैंने अपने व्यापार की कहानी बढ़ा-चढ़ाकर शुरू की तब तो वह फूली न समाई।’

समीप से एक भिखारी गुजर रहा था। उसके साथ उसकी बीबी थी। दोनों पागल ईसाई थे। मस्त और स्वयं में तन्मय ! दोनों की उम्र होगी पचास के लगभग। अग्नी भिखारी की पत्नी ने जोर का ठहाका लगाकर अपने पति से कहा, ‘डियर ! आदमी जिन्दगी से खेल रहा है, अब उसके सुख के दिन कितने रहे हैं ?’

पति ने अपना भुर्रियोंदार चेहरा यंत्रवत् हिलाया। दन्तहीन मुराख जैसे मुंह को खोलकर अस्पष्ट भाषा में बोला, ‘अब उसका सुख कभी नहीं मिटेगा ?’

‘क्यों ?’

‘अब वह सुख और दुख का भेद ही भूल गया है।’ वाक्य की समाप्ति के साथ उस पागल दम्पति ने फिर जोर का ठहाका लगाया।

रोमी उस पागल दम्पति की बात सुनकर कुछ देर तक गंभीर रहा। उसके चेहरे पर विचित्र भाव आए जैसे उसके अन्तस् पर किसीने अदृश्य हथौड़ा चला दिया हो।

सुबोध उसके मन की बात जान गया। सुनन्दा उसके साथ ऐसे चल रही थी जैसे वह कोई अपरिचित यात्रिक हो जिसका इन दोनों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो।

सुबोध ने मौन तोड़ा, ‘रोमी, मैंने तुम्हें पहले भी कहा था कि आदमी कभी भी बिना स्वार्थ के किसीकी सहायता नहीं करता। मुझे तुम्हारा व्यापार पसन्द है अतः मैं तुम्हें सुखी देखना चाहता हूं। तुम्हारे व्यापार में वृद्धि होगी तो मुझे भी लाभ होगा।’

रोमी ने कठिन्ता से मुस्कराकर कहा, ‘इन्दिरा रुपए देखकर बहुत खुश हुई। उसकी आंखों में चमक और उत्साह उमड़ आया। वह बीते दिनों का सारा राग-द्वेष

भूलकर मुझसे प्यार करने लगी। उसने उस दिन नई साड़ी पहनी और कल की चिंता से निश्चित होकर बोली, 'डियर रोमी, आज हम पिक्चर देखकर होटल में ही खाना खाएंगे।' उस दिन हमने बड़े आनंद से रात बिताई। वह बुलबुल की तरह चहकती रही। मुझे लगा कि इन्दिरा के मन की कोई थाह नहीं। निरन्तर कलह करनेवाली वह क्षण भर में बदल गई, भूल गई क्षणभर पहले के बीते हुए पल को।'

सुबोध ने सुनन्दा की ओर देखकर कहा, 'सुख में प्यार इसी मात्रा में ही उमड़ता है। इसलिए खूब पैसा कमाओ।'

'कोशिश करता हूँ पर....'

सुनन्दा ने कहा, 'घर चलिए जीजा जी, देर हो रही है।'

'हां-हां, चलो, अच्छा रोमी?'

रोमी का मुख हठात् सफेद हो गया।

'प्रेमोद्भवाबू, एक बात!'

सुबोध और रोमी एक ओर गए। रोमी ने कहा, 'पचास रुपए दीजिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि समय पर सब लौटा दूंगा। पाई-पाई। जीवन में आप अकेले ही मेरे आर्थिक संरक्षक के रूप में आए हैं।'

सुबोध ने उसके विह्वल स्वर और उतरे मुंह को देखा। पचास रुपए निकालकर दे दिए। गुड़ इविनिंग की, और चल पड़े।

उसके जाते ही सुनन्दा ने कहा, 'आपने इसे रुपए क्यों दिए?'

'बेचारा बड़ी तंगी में है।'

'एक तो आपकी बहू को ले रखा है, उसपर आप सौहार्द का स्नेह दे रहे हैं। यह क्यों?' सुनन्दा का स्वर तीखा था।

'इन्दिरा तुम्हारी दीदी है न, बड़ी दीदी, उसे आजकल जीवन के अनेक कष्ट घेरे हुए हैं। मैंने उससे छल करके उसके जीवन के पथ को ही बदल दिया। यदि परोक्ष रूप में वह मेरे द्वारा सुख पा सके तो क्या बुरा है। अपने पाप का प्रायश्चित्त ही हो जाएगा। यदि मैं उसके महादान को प्रभु-प्रार्थना की भांति ग्रहण करता तो आज उसे रोमी से सम्बन्ध नहीं बनाना पड़ता।..... फिर इन्दिरा से हमारा रक्त-सम्बन्ध कैसे टूट सकता है।'

सुनन्दा ने इधर-उधर देखकर कहा, 'मैं इन्दिरा को अपनी दीदी नहीं मानती।'

सुबोध ने शांति से कहा, 'फिर मैं अपनी स्त्री कैसे मान सकता हूँ ? फिर मुझे यह कभी भी सोचकर गुस्सा नहीं करना चाहिए कि वह मेरी वह को अपनी पत्नी बनाकर बैठा है। ... ये विचार तुम्हारे अपने हैं कि मैं उसे अपनी दीदी नहीं मानती ... किंतु मैं यह नहीं भूल सकता कि इन्दिरा तुम्हारी दीदी है और मेरी त्यागी हुई पत्नी।'

बीच में ही बोली सुनन्दा, 'मैं फिर कहती हूँ कि मेरी दीदी मर गई।'

बस की घर्रर् सुनकर सुबोध ने कहा, 'पहले सड़क पार करके मैदान में चलो, वहां थोड़ी देर तक सुस्ताएं।'

दोनों मैदान में आ गए।

सुनन्दा ने बैठते हुए कहा, 'मेरी दीदी मर गई, उसी दिन मर गई जब उसने अपने वर को क्षमा नहीं किया। सुबोध बाबू, नारी इतनी कठोर नहीं हो सकती। वह अपनी इज्जत पर सर्वस्व विसर्जन कर देती है और दीदी ने आपको छोड़ा, मां को छोड़ा, बाबा को छोड़ा, मुझे छोड़ा और ईसाई से सम्बन्ध किया। छिः छिः ! वह यौवन के प्रवाह में अन्धी हो गई है। वह वासना में नारी की श्रद्धा को भूल गई है। पति की अर्चना के अलावा एक स्त्री को कहां सुख मिल सकता है। क्या वह अपने हठ के लिए सबके हृदयों पर आघात कर सकती है ? नारी इतनी निर्मम हो सकती है ?'

'परिस्थिति सब कुछ करा सकती है ?' सुबोध ने दूब पर दृष्टि जमाते हुए कहा।

'ना, कभी नहीं। मैं मृत्यु को स्वीकार कर लूंगी पर धर्म को नहीं छोड़ूंगी। धर्म इतना सस्ता नहीं होता। दीदी के कारण बाबा असमय ही चले गए। मां ...' सुनन्दा की आंखें भर आईं।

सुबोध ने उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा, 'उठो, रात हो रही है !' फिर वह भीड़ की ओर देखता हुआ बोला, 'भगवान तुम्हें श्रेष्ठ वर दे ताकि बाबा की आत्मा आनन्द से विभोर हो जाए।'

सुनन्दा कुछ नहीं बोली ।

चौरंगी की रौनक बढ़ती ही जा रही थी ।

३३

क्षितिज की ओर ढलता हुआ चांद अत्यन्त मनोरम लग रहा था । जैसे-जैसे चांद क्षितिज की ओर द्रुतगति से भाग रहा था, वैसे-वैसे तारागण और प्रखर होकर दीप्त हो रहे थे । पवन के मन्द-मन्द झकोरे अंग-अंग में कम्पन पैदा कर रहे थे ।

प्रेस से थकामांदा आया नरोत्तम कवियों की तरह चांद को अपनी छत पर लेंटा हुआ भावुकता से देख रहा था । तारिणी के पांवों की आहट सुनकर वह चौंक पड़ा ।

तारिणी ने कहा, 'चांद को देखकर कविता करने का विचार है ?'

'हां ?'

'कुछ तुकबन्दी की है ?'

'हां ।'

'क्या की है ?'

'सुनना चाहती हो ?'

'जी !' वह नरोत्तम के पास आ गई । उसकी गोद में अपना सिर रखकर बोली, 'अब सुनाओ ।'

नरोत्तम ने झट से किसीकी दो पंक्ति सुना दीं—

गगन का चांद मुझे अप्रिय लगने लगता है तब

कि नया चांद आके गोद में जब गुनगुनाता है ।

तारिणी अवश-शी खड़ी रही । उसने अपनी बांहें नरोत्तम के गले में डाल दीं । नरोत्तम सुन्न-सा बैठा रहा ।

अचानक वह तारिणी को बैठाता हुआ बोला, 'अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूं न तारिणी, अब मुझे तृप्ति यदा-कदा दीखती है । फिर भी मुझे यह सन्देह बराबर बना रहता है कि कोई मेरे पीछे-पीछे चला आ रहा है । आज दफ्तर में मैंने बात ही बात

में यह प्रश्न प्रोफेसर मंगल से कर दिया था। मंगल अट्टहास कर उठे। फिर बोले, 'सब बकवास ! अरे भौई, यह सब मन के भ्रम हैं। और उन्होंने मुझे एक दृष्टान्त देकर काफी बल पहुंचाया। उन्होंने बालों पर हाथ फेरकर कहा—बाहरी वातावरण और अन्तर मन में छिपा आंतरिक भय आदमी में ऐसे भ्रम उत्पन्न कर देता है। किन्तु यह सत्य नहीं होता, इन्हें असाध्य नहीं समझा जा सकता, इनसे भयभीत नहीं हुआ जाता। ये भूत-प्रेत भी अन्य रोग की तरह रोग हैं। उपचार से इनसे भी सरलता से मुक्ति मिल सकती है।

‘उन्होंने चाय की मांग करके पुनः कहा, ‘एक छोटा-सा उदाहरण आपके सामने रखता हूं।’

‘मेरा एक मित्र यहीं रहता था। उसके घर के ठीक सामने एक शराबी रहता था। वह पड़ा-लिखा था और सरकारी आफिस में एक अच्छे पोस्ट पर कार्य करता था। लेकिन जब वह शराब पीकर आता तब अपनी पत्नी को बहुत पीटता था। उसपर अमानुषिक अत्याचार करता था। उसकी पत्नी उससे बहुत असन्तुष्ट रहती थी। बाद में वह वेश्यागामी भी बन गया।

‘‘एक दिन उस व्यक्ति ने शराब के नशे में अपनी पत्नी को इतने जोर से पीटा कि उसे सख्त आन्तरिक चोट आई।... फिर वह धीरे-धीरे घूल-घुलकर अपने पति-परमेश्वर को कोसती हुई, अभिशाप देती हुई मृत्यु की ओर दौड़ने लगी।

‘मृत्यु के कुछ दिन पूर्व उसने अपने पति से सख्त नाराज होकर ‘शाप’ दिया कि तुम्हें कभी भी पत्नी-सुख नहीं मिलेगा।

‘कुछ दिन बाद वह मर गई।

‘वह व्यक्ति किसी दूसरे शहर से नई दुलहिन ले आया।

‘गृहस्थी चल पड़ी।

‘इस बीच उस नई दुलहिन ने अपने पति की पिछली जिन्दगी के सारे कारनामे सुन लिए। उसने यह भी अच्छी तरह सुना कि उसके पति ने उसकी सौत बेचारी को तड़पा-तड़पा कर मारा। उसे कभी भी सुख नहीं दिया। वह हमेशा उसके नाम को रोती रही। बिलखती रही।

‘‘उस नव विवाहिता को यह भी पता चला कि उस युवती ने अपने पति को

मरते समय यह शाप भी दिया था कि वह उसे कभी भी सुख से नहीं रहने देगी। सदा उसके पीछे छाया-सी लगी रहेगी।

‘कुछ रोमांटिक स्वभाव वाली औरतों ने उसे यह भी कह दिया कि मकान के पूर्वी कोने में हमने कई बार तुम्हारी सौत को देखा भी है। ... अन्य पड़ोसी की नई दुलहिन ने उसे घबराकर यह भी कहा कि जब उसका पति उसे प्यार करने लगा तब वह आकर उन दोनों के बीच खड़ी हो गई थी, ... मुझे यह ताबीज इसी-लिए ही बनवाकर पहनना पड़ा।

‘इस प्रकार की बातें उस नई पत्नी के लिए बड़ी हानिकारक सिद्ध हुईं। धीरे-धीरे वह उस कोने की ओर देखती रही जिसकी ओर सबका संकेत था। विचारों और भावनाओं के लगातार प्रयास पर उसे अपनी सौत उसी कोने में दिखाई पड़ने लगी। भूत-प्रेतों के प्रति हमारे संस्कारों में जन्मजात भय रहता ही है।

‘बस, धीरे-धीरे उसकी नववधू ने पति के संग को छोड़ दिया। अब यदि उसका पति उसे प्यार करता तो वह चीख पड़ती थी। ठीक वैसे ही जैसे उसने अपनी मृत सौत के बारे में सुना था। वह हरदम यह कहती नज़र आती थी कि कोई उसके पीछे खड़ा है, पीछे !

‘अब एक प्रश्न और हमारे समक्ष प्रस्तुत है कि कभी-कभी कलकत्ते के प्राणी के संस्कार बम्बई वाले से कैसे मिल जाते हैं ? हम सब पांच तत्त्वों से निर्मित हैं। हमें बनाने वाली प्रकृति है। भक्त लोग कहा करते हैं कि आदमी मिट्टी से उत्पन्न होता है और मिट्टी में विलीन हो जाता है। ... और यही कारण है कि हम कभी-कभी बड़ी हैरत में पड़ जाते हैं कि अरे इसकी सूरत हमारे जिगरी दोस्त ‘क’ से मिलती है पर यह ‘क’ नहीं है। यह साम्य क्यों है ? क्योंकि हम एक ही प्रकृति के फल हैं। वैसे ही जब ‘एक मन दो प्राण’ की बात करते हैं, तब हमें पुनः एक सामूहिक मन की कल्पना होती है। जैसे मैं विराट का एक अकिंचन रूप हूँ। असीम का ससीम अंश हूँ। ठीक उसी प्रकार उस सामूहिक मन के हमारे मन अलग-अलग टुकड़े हैं। जिस प्रकार हमारी सूरतें परस्पर यदा-कदा ही एक दूसरे से मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार बहुत ही कम रूप में हमारे मन के संस्कारों की भी समता है। तब हम इस नतीजे पर बड़ी आसानी से पहुँच सकते हैं कि एक दूरस्थ व्यक्ति के

संस्कार एक दूसरे अन्य दूरस्थ व्यक्ति के संस्कारों से यथासंभव मेल खा सकते हैं।... और हमारे चेतन, अवचेतन और संस्कारों की इसी क्रिया-प्रक्रिया और प्रतिक्रिया को हम भूत-प्रेत, देव और न जाने क्या-क्या कहते हैं।’

‘प्रोफेसर ने इतना कहकर गहरी सांस ली और लापरवाही के स्वर में बोला, ‘नरोत्तम बाबू, प्रेस की गड़गड़ाहट में भूत-प्रेतों की काल्पनिक चीखें मत सुना कीजिए। भूत-प्रेत कुछ नहीं हैं। अपने मन को व्यस्त रखिए। इस प्रेस और प्रकाशन को चलाइए।’

‘तारिणी, मुझे प्रोफेसर की बात पसंद आई। मैंने अनुभव किया, ये भूत-प्रेत सचमुच व्यर्थ हैं।’

तारिणी पुनः उसका हाथ अपने हाथ में लेती हुए बोली, ‘प्रोफेसर की एक बात पर ध्यान दो, अपने मन को व्यस्त रखो अपने आपको अपने कामों में तन्मय कर दो, बस !’

चांद पर बादल का टुकड़ा आ गया। हल्का अन्धकार फैल चुका था।

नरोत्तम ने तारिणी का हाथ बड़ी मजबूती से पकड़ लिया।

३४

सुनंदा ने आखिर सुबोध को पराजित कर ही दिया। उसने सुनंदा की शपथ खाई कि वह अब भविष्य में रोमी की किसी प्रकार भी मदद नहीं करेगा।

सुबोध के कथन पर सुनंदा को विश्वास नहीं हुआ। वह भरीए स्वर में बोली, ‘मेरी दीदी मर चुकी है, और मुझे उस ईसाई-कीट से बड़ी घृणा है। यह मैं सच कहती हूँ कि यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं गले में फांसी का फन्दा लगाकर मर जाऊंगी।’

पहली बार सुबोध ने सुनंदा में नारी-हठ पाया। पहली बार सुबोध ने सुनंदा के नेत्रों में घृणाजनित मोतियों से आंसू देखे।

वह स्वयं पिघल गया।

विगलित स्वर में बोला, 'मैं पीड़ादायक पुनरावृत्ति नहीं कर सकता। सुनंदा, तुम्हारा और इस परिवार का स्नेह मुझे मिलता रहे, यह मेरे लिए बहुत है।'

सुनंदा ने अपनी आँखों के आंसू पोंछकर कहा, 'हमारा स्नेह आपके आश्रित है सुबोध बाबू, आपकी कृपा न होती तो हमारी कैसी दुर्दशा होती? हम रोटी के लिए मुंहताज हो जाते।'

सुबोध इस बार निरुत्तर रहा।

सुनंदा की मां आ गई थी। दोनों को उन्मन देखकर बोली, 'क्या बात है बेटा?'

'कुछ नहीं, सुनंदा पागल है। इन्दिरा का नाम लेते ही विगड़ जाती है।'

'हां, बेटा अब तुम्हें उसका नाम नहीं लेना चाहिए।... उसने सारे कुटुम्ब की मान-मर्यादा मिट्टी में मिला दी है।'

और इन्दिरा !

क्रोध में आहत सांपिन-सी हुई रोमी से पूछ रही थी, 'आखिर तुम्हारा वह व्यापारी गया कहां? हजारों का सौदा होने वाला था न! इन्दिरा मैं तुम्हें राज-रानी बना दूंगा।... प्रेमेश्वर बाबू यह हैं, वह हैं, भाग्य ने साथ दिया तो विलायत भी ले चलूंगा। मैं पूछती हूं कि तुम्हारे प्रेमेश्वर बाबू गए कहां?... कितनी बार कहा, मुझे उनसे मिलाओ तो सही।... लेकिन तुमने मेरा कहना नहीं माना।... रोमी... रोमी... रोमी, आखिर यह तमाशा क्या है? तुम इतने बदल कैसे गए? तुम मिथ्या भाषण, छल और फरेब मुझसे क्यों करते हो?'

रोमी पत्थर की भांति अनुभूतिहीन होकर बैठा था।

प्रेमेश्वर उसे धोखा दे गया।

वह आखिर क्या करे? उसका भाग्य ही साथ नहीं देता, वह यह सोचकर मन ही मन चिहंक पड़ा, वह कितना बदल गया है, वह कितना कमजोर हो गया, भाग्य, भगवान, निर्यात... नहीं-नहीं, वह किसीको नहीं मानता, नहीं मानता... सत्र बकवास है।... आदमी महाबली है। महा शक्तिवान है।... सर्वोपरि है।... और उसने अपने आपको देखा। विडम्बना अट्टहास कर उठी।... आदमी दुर्बल है, ...दुर्बल है... मिट्टी का पुतला, लाचार और दीन !

इन्दिरा ने कड़ककर पूछा, 'तुम चुप क्यों हो ?'

'मैं अभी बोलना नहीं चाहता । अभी बोलूंगा तो भगड़ा हो जाएगा ।'

'भगड़ा क्यों हो जाएगा ? बात-बात में क्या तुम मुझे भगड़ते रहोगे ?'

'नहीं, फिर भी मैं अभी चुप रहना ही श्रेयस्कर समझता हूँ ।' उसने बड़ी शांति से कहा, स्थिति को देखकर कदम उठाना चाहिए । अभी तुम दुख में पागल हो । तुम्हें सही बात भी कहूंगा तो वह तुम्हें सही नहीं लगेगी । '... बस इतना ही कहना चाहता हूँ । प्रेमेन्द्र बाबू छल नहीं कर सकते । अवश्य कोई दुर्घटना हो गई होगी ।'

इन्दिरा इस बार चुप रही । वह अपने दोनों हाथों से मुंह ढंक कर रोने लगी ।

रोमी ने उसे समझाया, 'तुम्हारे मन को समझना आसान नहीं है । पता नहीं, कब तुम्हारा कैसा मूड हो जाए ? दूसरे, तुम बहुत अस्थिर मन वाली हो । इस अस्थिरता के कारण तुम हर परिस्थिति में वाचाल हो जाती हो ।'

इन्दिरा ने रुष्ट-रोदन स्वर में कहा, 'अब तुम्हीं मुझे ऐसा नहीं कहोगे तो कौन कहेगा ? मैंने तुम्हारे लिए सर्वस्व... !'

बीच में ही रोमी बोल पड़ा, 'देख लिया न, मैंने साधारण ढंग से एक बात कही और तुम बात का बतंगड़ बना बैठी । इसलिए ही मैं कहता था कि मुझे चुप रहने दो । ... अच्छा मैं चला । जब तुम रोककर शांत हो जाओगी और तुम्हारे मन का सारा रोष निकल जाएगा, तब मैं तुमसे बातचीत करूंगा ।' वह उठा और दर-वाजे पर खड़ा होकर पुनः बोला, 'मैं दो घंटे में आ रहा हूँ । तुम मुझे यहीं पर मिलना ।'

रोमी हवा की तरह बाहर निकला । हृदय में विरक्ति के भाव इतनी तेजी से उमड़ रहे थे कि उसने वापस मुड़कर ही नहीं देखा । वह सीधा चला आया—किले के मैदान में । वह किले के मैदान को पार करके जैसे ही ईडन गार्डन की ओर बढ़ा वैसे ही उसे सुबोध के दर्शन हो गए । उसमें जिन्दगी लौट आई । वह उत्साह और प्रसन्नता से बोला, 'प्रेमेन्द्र बाबू... प्रेमेन्द्र बाबू... !'

सुबोध खड़ा हो गया ।

'प्रेमेन्द्र बाबू, आप बड़े हृदयहीन हैं । मुझे बड़े संकट में डाल दिया । इन्दिरा अभाव के कारण धीरे-धीरे मेरा विश्वास खो रही है । वह कह रही है कि प्रेमेन्द्र

बाबू से मुझे मिलाओ ।’

सुबोध एक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ा हो गया। अपने हाथों को बगलों में दबाकर बड़ी सहज मुद्रा में बोला, ‘रोमी, मैं इधर काफी व्यस्त था। तुमसे मिल नहीं सका ।’

रोमी की आंखें सजल हो उठीं। वह विगलित स्वर में सुबोध के कदमों की ओर देखता हुआ बोला, ‘आप नहीं जानते कि आपके दर्शन न होने से मुझे गृह-दाह की पीड़ा में कितना जलना पड़ा। मेरा साहस टूट गया। मुझे लगा कि मैं फिर निस्सहाय हो गया हूँ। मेरा अपना कोई नहीं है।’ वह एक साथ यह सब उगल गया। उसकी सांस तेज हो गई।

‘मनुष्य को कभी नहीं घबराना चाहिए। उसे श्रम करना चाहिए। सत्य का सहारा नहीं छोड़ना चाहिए। देखो, सफलता तुम्हारे चरणों में स्वयं आ जाएगी।’

‘आप जो कह रहे हैं, वह सच हो जाए तो मैं इन्दिरा को सुख दे दूँ।’... उसकी अस्थिरता उसके जीवन की महत्वाकांक्षाओं की अपूर्णता की वजह से है। उसके पति ने उससे छल किया। स्कूल के बच्चों ने उसे घृणा के सागर में फेंक दिया, मैं अभाव के कारण उसे सम्पूर्ण रूप से प्यार नहीं कर सका। मैं ईसाई हूँ—इसका उसे दुख है। यदि उसका पति उससे छल नहीं करता तो वह मुझे अपरिमित करुणा का दान देती। मैं समझता हूँ—केवल उसकी करुणा पाकर मैं एक अलौकिक आनंद पाता। अधिक सुखी होता।’

‘पता नहीं रोमी, आदमियों के बीच धर्म ने कैसी विकट घृणा पैदा कर दी है। उस घृणा को हम अपने हृदयों से सम्पूर्ण रूप से निकाल नहीं सकते।’ ‘मनुष्य एक है’ इसके बारे में सुन्दर भाषण अवश्य दे सकते हैं, साथ खा-पीकर के एकता-प्रदर्शन भी कर सकते हैं लेकिन अन्तर में गूँजने वाले इस वाक्य को—मैं ईसाई हूँ या सनातनी या जैनी।—वे क्या भूल सकते हैं !... तुममें भी अपने धर्म के प्रति सम्मोह है। इन्दिरा में है। मुझमें है। पर हम क्यों नहीं यह प्रयास करते कि एक ऐसा धर्म हम मानें जो केवल एक प्रकृति का पूजक हो और मनुष्य को प्राणी मात्र का हित करने वाला बनाता हो।’

रोमी ने सुबोध को देखा। उसे उसकी आंखों में समुद्र-सी गहराई नज़र आई।

वह उसे देखता रहा। धीरे से बोला, 'इस यांत्रिक युग में ऐसे धर्म का उदय होना बहुत जरूरी है। तभी आदमी का दुखों से छुटकारा होगा।'

सुबोध ने मधुरता से कहा, 'मैं चलूँ।'

'फिर?' उसकी आंखों में जो करुणा भरी याचना थी, सुबोध का मन उस याचना से डोल उठा। तभी सुनन्दा द्वारा खाई हुई शपथ उसे याद हो उठी। फिर उसे रोमी का करुणाभरा मुख।

सुनन्दा का हठ, रोमी की आवश्यकता !

चंद क्षण वह उसी पर विचारता रहा। हठ से आवश्यकता बहुत बड़ी है। नैतिक छल इतना पीड़ाजनक नहीं, जितना पेट की भूख ! उसने अपनी जेब से एक नोट निकाला और रोमी के हाथ में दे दिया। चलता हुआ बोला, 'दो-चार दिन के बाद मैं तुम्हें वहीं पर उसी रेस्तरां में मिलूंगा।'

'प्रेमेन्द्र बाबू, वायदा सच्चा करना।'

'मैं अवश्य आऊंगा।'

सुबोध धीरे-धीरे रोमी की आंखों से ओझल हो गया। दस का नोट रोमी के हाथों में मुड़ा पड़ा था। उसे देखकर एक बार उसके मन में आया कि क्यों नहीं, वह अपना सिर फोड़ लेता। 'आदमी इतना मजबूर क्यों है ? तब उसके सामने वर्तमान सड़ी-गली व्यवस्था और भ्रष्टाचार से भरी राजसत्ता घूम गई। वह सरकार को गाली देता हुआ रेस्तरां की ओर बढ़ने लगा।

सूर्य डूब रहा था।

खून-सी उसकी लाली क्षितिज पर बिखरी हुई थी। चौरंगी का कोलाहल बढ़ रहा था।

विचित्र लोग, विचित्र भाषाएं और विचित्र वेश !

पन्द्रह दिन बाद ।

रंग-विरंगी विजलियों से चौरंगी जगमगा रही है । बंगाली, राजस्थानी, गुजराती, मद्रासी और पंजाबी सभी जातियों के लोग यहां दिखाई पड़ते हैं । इन सभी कालों के बीच कभी-कभी चुर्रुट या सिगरेट मुंह में दबाए हुए गोरे अकड़ के साथ चलते हुए भी दिखाई पड़ जाते हैं । वे गोरे अभी तक हम हिन्दुस्तानियों के लिए विस्मय की वस्तु बने हुए हैं । छोटे-छोटे शहरों एवं गांवों से आए हुए व्यक्ति उन्हें देखकर स्तब्ध रह जाते हैं । '...खट् खट् की ध्वनि करती हुई कोई अंग्रेज या फ्रेंच महिला अर्द्ध नग्न वेश-भूषा में चौरंगी पर घूमती है तब ऋषि-मुनियों के इस लोक की आंखें उस ओर जम जाती हैं । भूख और अतृप्ति को आप उन आंखों में अचञ्ची तरह देख सकते हैं जैसे यह मिट्टी सेक्स की बुभुक्षा लिए हुए है ।

कुछ फेरी वाले अजीब मनःस्थिति में आपको विभिन्न वस्तुएं बेचते हुए दिखाई पड़ेंगे । जिनपर पुलिस वालों की कृपा है, वे घूम-घूमकर चौरंगी पर अपना सामान खुल्लमखुल्ला बेच सकते हैं अन्यथा उन्हें लुक-छिपकर सामान बेचना पड़ता है । ये फेरी वाले इन नैतिकता हीन पुलिस वालों को चोर, लुटेरे और यमदूत से कम नहीं समझते ।

एक अंधा क्रिश्चियन हाथ में बैजो लिए कोई अंग्रेजी धुन बजाता हुआ घूमता रहता है । वह धुन के बदले रोटी और कपड़ा मांगता है । कभी-कभी कोई दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति उस अन्धे गायक से भी मजाक कर लेता है याने गाना सुनकर पैसों के लिए अंगूठा दिखा देता है ।

नरोत्तम और तारिणी दोनों चौरंगी से गुजर रहे थे । नरोत्तम इधर अपने आपको काफी स्वस्थ अनुभव कर रहा था । आजकल उन्होंने सेन्ट्रल एवेन्यू पर अलग मकान ले लिया था । सेठजी से अनुरोध करके तारिणी ने नरोत्तम के लिए जो प्रेस खरीदवाई थी इससे आजकल अत्यन्त सुन्दर प्रकाशन हो रहा था और उसका संचालन भी लाभप्रद था ।

नरोत्तम के मां-बाप वापस गांव चले गए थे । नरोत्तम और तारिणी स्वयं

उन्हें छोड़ने गांव गए थे। नरोत्तम ने गांव में बहुत-से परिवर्तन देखे। इतने वर्षों के बाद उसने देखा कि नवजागरण के नए देवता जाग रहे हैं। अज्ञान का अन्धकार ज्ञान के महा आलोक में लुप्त हो रहा है। प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरोध के बावजूद लोग पुनर्निर्माण कर रहे हैं।...राजिया की भाभी कहीं भाग गई है। उसके बारे में भिन्न-भिन्न अफवाहें हैं। कुछ कहते हैं कि उसने किसी अन्य मिल-मजदूर से नाता कर लिया है तो कुछ यह भी कहते हैं कि वह वेश्या बन गई है। सत्य और तथ्य विवादास्पद हैं।

पर उसकी भाभी और भैया उसी मर्यादा की लकीर पर चल रहे हैं। वही घूँघट, वही पर्दा और वही एक दूसरे के प्रति अपरिचीन श्रद्धा और प्रेम।

एक रात गांव में तारिणी ने नरोत्तम से बताया था, 'तुम्हारी भाभी देवी है। उसके हृदय में ममत्व और प्यार के आलावा कुछ है ही नहीं। वह मुझे भी बहुत प्यार करती है। मैंने यों ही मजाक में कह दिया कि भाभी, यह घूँघट और लज्जा अब कितने वर्ष और चलेगी, तब वह हंसकर कहने लगी कि देवरानी जी, आधी उम्र बीत गई है और इसी तरह आधी और बीत जाएगी।'

'मुझे रहा नहीं गया। नारी अपने महान जीवन को निराशा के इस एक वाक्य में क्यों समाप्त कर देती है। इसलिए मैं गंभीर होकर बोली, 'तुम्हारी अपनी भी कुछ आशाएं, सपने, इच्छाएं होंगी?'

'बस एक ही है कि जीवन का शेष सपना इनके चरणों में ही पूरा हो। मैं लाल चूनर ओढ़कर इनका कंधा लेकर चली जाऊं।'

'तब वह अपना भी आत्मिक नहीं दवा सकी। बोल पड़ी, 'देवरानी, तुम्हारा स्वप्न क्या है?'

'मैं क्या उत्तर देती ?

'सहमकर बोली, 'बस उनकी सेवा, उनको संतोष, उनको सुख देती रहूँ। नारी का कर्तव्य यही तो है कि अनुचित रूढ़ियों और बन्धनों से मुक्त होकर पति के लिए आत्मोत्सर्ग कर देना।'

'तुम्हारी भाभी भौंचक्की मुझे देखने लगी। बड़प्पन से बोली, 'तुम पढ़-लिख-कर भी ऐसी बातें करती हो?'

‘में क्या उत्तर देती ! चुप हो गई। मन में यह जरूर ख्याल आया कि नारी आखिर नारी है। नारी पुरुष को समर्पण करके मां बनती है और पुरुष फिर भी स्वतन्त्र रहता है। पुरुष धरती में बीज डालता है लेकिन बीज जब नए वृक्ष का रूप धारण करता है तब धरती की छाती विदीर्ण हो जाती है। तब उसकी असीम व्यथा की अनुभूति उसे पूर्णत्व की ओर ले जाती है। लेकिन ‘पूर्ण’ होने पर जो रक्त-संबंध उत्पन्न होते हैं, उनसे नारी दुर्बल हो जाती है और वह नर का आसरा पकड़ लेती है।’

नरोत्तम की आंखों में प्रश्न नाच उठा था।

वह गंभीर होकर बोला, ‘इसका क्या मतलब ? क्या नारी सदा पुरुष की दासी रहेगी ? ये रक्त-सम्बन्ध नारी को दुर्बल करते हैं ?’

‘हां ? अनुचित हस्तक्षेप और अधिकार रहित होकर भी नारी को एक रूप से पुरुष की अधीनता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। नारी मां बनती है और मां बनने पर वह कैसे स्वतन्त्र रह सकती है ? संसार के इतिहास में स्वतन्त्र नारी का चरित्र मानवीय मूल्यों पर उचित नहीं ठहरा है। यह अपवाद रूप में हो सकता है कि कोई नारी मां बनना चाहे ही नहीं। लेकिन पूर्ण नारीत्व पुरुष के स्पर्श से ही उभरता है और पनपता है। मेरे गांव में जब एक किसान लड़की का विवाह हो रहा था तब एक पढ़ी-लिखी युवती ने कहा था कि अभी लड़की छोटी है। जानते हो, एक किसान वृद्धा ने क्या उत्तर दिया ? सुनोगे तो हंसोगे।

‘वह वृद्धा बोली कि लड़की का क्या छोटा और क्या बड़ा ? विवाह-यज्ञ का धुआं जैसे ही उसके बदन से लगेगा, वैसे ही वह पूर्ण नारी बन जाएगी।

‘हालांकि यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है फिर भी इसमें तथ्य अवश्य है। एक आस्था है और आस्था आशयहीन नहीं होती।

‘और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। शूर्पनखा सोने की लंका के स्वामी की बहिन थी। क्यों लक्ष्मण पर आसक्त हुई ? ... आपकी ही इन्दिरा ने रोमी को क्यों अपनाया ? ... मेरा यह मतलब नहीं है कि नारी मनुष्य के पांव की जूती बनी रहे पर मैं इतना जरूर चाहती हूं कि वे पारस्परिक होड़ न करें और न एक दूसरे के घातक बनें। औचित्य पथ के यात्री बनकर वे एक दूसरे के

पूरक वनें ।’

नरोत्तम अपनी पत्नी से बहुत प्रसन्न रहता था । तारिणी के भाव बड़े स्पष्ट थे । गांव की स्मृति उनके मानस-पटलों पर अमर बन गई ।

फिर वे दोनों कलकत्ता आ गए ।

नए जीवन का आह्वान किया गया ।

वे पैदल ही घूम रहे थे । न्यू मार्केट और लिङ्से स्ट्रीट पर स्थित एक रेस्तरां में वे दोनों चाय पीने के लिए घुसे ।

सामने ही रोमी बैठा था ।

नरोत्तम उसे नहीं पहचान सका क्योंकि उसके गलों की हड्डियां उभर आई थीं । नेत्र गड्ढों में धंस गए थे । चेहरा इस तरह सूख गया था जैसे वह बहुत दिनों से बीमार हो ।

रोमी नरोत्तम और तारिणी को अचरज भरी दृष्टि से देखता रहा । उसका भी साहस नहीं हुआ कि वह नरोत्तम को पुकारे । क्या पता, वे अभी एक रूपवती युवती के साथ का पूर्णरूप से आनंद उठाना चाहते हों और इस समय किसीको भी अपना साथी बनाना न चाहते हों । यही सोचकर शायद उन्होंने मुझे न पहचानने का बहाना भी कर लिया हो ।

तारिणी और नरोत्तम रोमी के सामने वाली मेज पर बैठ गए । रोमी उन्हें बार-बार घूर रहा था । धीरे-धीरे नरोत्तम को भी सन्देह-सा होने लगा कि उसने इस व्यक्ति को कहीं न कहीं देखा है ।

वैरा चाय ले आया था ।

नरोत्तम ‘कटलग’ का एक टुकड़ा मुंह में डालकर तारिणी से बोला, ‘तारिणी, इस व्यक्ति को मैंने कहीं देखा है पर याद नहीं आ रहा है कि इसे कहां देखा है ?’

तारिणी तपाक से बोली, ‘जाकर पूछ लीजिए, इसके लिए व्यर्थ अपने दिमाग को क्यों कष्ट देते हैं ?’

‘पूछ आऊं ?’ उसने किंचित विस्मय मिश्रित उपहास से कहा ।

‘बड़े आज्ञाकारी हो गए हैं ?’ उसने मुस्कराकर कहा, ‘जाइए ।’

नरोत्तम ने जाकर रोमी से पूछा। रोमी ने आह भरकर इतना ही कहा, 'भला तुम हम गरीबों को कैसे पहचानोगे ?'

'रोमी।' वह किलककर बोला, 'उठो, हमारे साथ चाय पीओ।'।

'मैं चाय का आर्डर दे चुका हूँ।'।

'वहीं आ जाएगी।'।

दोनों उठकर तारिणी के पास आए। नरोत्तम ने तारिणी से उसका परिचय कराया, 'यह इन्दिरा का पति रोमी है। इन्दिरा आजकल इसे 'राम' कहती है। दार्शनिक है।' और यह हैं मेरी पत्नी तारिणी देवी। हाल ही में विवाह हुआ है।'।

'नमस्कार भाभी जी।'।

तारिणी विस्मय से बोल उठी, 'आप पहले क्रिश्चियन मिले हैं जिन्होंने विशुद्ध हिन्दी में नमस्कार किया।'।

'इसकी माया ही विचित्र है। कहता है कि मैं ईसाई धर्म को धर्म न मानकर एक सम्प्रदाय मानता हूँ।' तारिणी की ओर मुखातिब होकर नरोत्तम बोला, 'यह इन्दिरा को बहुत प्यार करता है और इन्दिरा इसे।' पर रोमी तुम इतने कमजोर कैसे हो गए ?'

'चिंताओं के मारे !'

'तुम्हारे विजनेस का क्या हाल है ?'

'चौपट।'।

'क्या कहते हो ?' नरोत्तम ने आंखें फाड़कर कहा।

'सच कहता हूँ कि भविष्य में यदि पादरी को मुझे अपने गुनाह सुनाने का अवसर मिला तब मैं उससे कहूंगा कि संसार के पापियों के पापों को सुनकर उसका उद्धार करने वाले तू यदि एक पापी का ही वास्तविक उद्धार कर देता तो कितना उत्तम होता !' रोमी की बुझी हुई आंखों में अवसाद की छाया चमक उठी। शरीर में जड़ता आ गई।

'बात क्या है ?'

'मेरे पास मिस्टर ब्रोस नामक एक महाशय रहा करते थे। वे भी क्रिश्चियन ही थे। अपने से खूब मित्रता रखते थे। लेकिन जब मैंने इन्दिरा से बिना धर्म-परि-

वर्तन कराए विवाह कर लिया और वह भी बिना गिर्जे में जाकर, तबसे वे मुझे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। इन्दिरा ने 'रोमी' से राम और बनाकर रही-सही कसर पूरी कर दी। उसने मेरी नेम-प्लेट को भी बदल दिया। एक दिन उसने गिर्जा जाना भी बन्द करा दिया। फिर क्या था, ईसा के बन्दे आपे से बाहर हो गए। पादरी को ऐसा विश्वास था कि मैं धर्म का घातक हूं। और मैंने अपने धर्म को बड़ी ठेस पहुंचाई है।

'जानते हो सहिष्णुता का अतिक्रमण करके बोस ने मेरे साथ क्या धोखा किया? इधर मेरे इंक का बिजनेस प्रगति पर था। इनकम भी ठीक होने लगी थी।...' लेकिन उसी बोस ने मेरा फार्मूला मित्रता-मित्रता में पूछकर कई आदमियों को बता दिया। धार्मिक द्वेष लिए हुए दो आदमियों ने उसी स्याही को एकदम सस्ती करके बेचना शुरू कर दिया।...' मुझे इस कुकृत्य पर बड़ा रंज हुआ और एक दिन मैं गुस्से में आकर उस बिजनेस के सभी सामान को गंगा मां की गोद में फेंक आया ताकि मैं आत्मपीड़न से बच जाऊं।' रोमी की आंखें सजल हो गई थीं। वह चाय के प्यालों से खेलने लगा था।

'यह तुमने अच्छा नहीं किया?' चाय का घूंट लेकर नरोत्तम बोला, 'इस कलकत्ता में कितने दूकानदार हैं। सभी अपनी-अपनी मिठाई बेचते हैं। सभी अपनी-अपनी मेहनत का खाते हैं।'

'मैं भी शांति से सोचता हूं तब ऐसा ही लगता है लेकिन मनुष्य की जघन्य मोहवृत्ति से मैं तत्काल इतना पीड़ित हो गया था कि मैं अपने आप पर काबू नहीं रख सका। सोचता हूं कि धर्म-परिवर्तन करके हिन्दू बन जाऊं। इस प्रकार किसी-का अहित करके या उसे मजबूर करके कौन किसको अपने धर्म में रख सकता है और उस धर्म का आधार भी कितने दिन तक बुलंद रह सकता है? फिर इन्दिरा की आन्तरिक इच्छा भी यही है कि मैं हिन्दू ही बन जाऊं।'

नरोत्तम ने महसूस किया कि इस प्रकार की चर्चा से रोमी को कष्ट हो रहा है, इसलिए उसने बात का रुख बदल दिया, 'इन्दिरा का क्या हालचाल है?'

'नौकरी की तलाश में घूम रही है।'

'क्यों, अभी तक उसे नौकरी नहीं मिली?'

‘नौकरी मिल जाती तो मेरा हाल यह नहीं होता ।’

तारिणी ने हठात् कहा, ‘आप इन्हें सेठजी से कहकर कहीं लगवा दीजिए न ? इतना बड़ा बिजनेस है ।’

‘तुम मुझसे कल मिल लेना ।’ नरोत्तम ने कहा, ‘और पाकेट से पचास रुपए देकर बोला, ‘यह मैं तुम्हें उधार दे रहा हूँ । जब आए वापस दे देना । इन्दिरा को मेरा नमस्कार कहना । कुछ कहे तो कहना कि आजकल मैं पूर्व की अपेक्षा कुछ स्वस्थ हूँ । अपनी श्रीमती के कहने पर ही मेरा उठना-बैठना होता है । पूरा पत्नीव्रत धर्म पालन कर रहा हूँ ।’ तारिणी ने नरोत्तम को तीखी नज़र से देखा । वह चुप हो गया ।

रोमी पचास रुपए लेकर चला गया । उसने रुपए लेते समय उचित-अनुचित का ख्याल तक नहीं किया । उसे बड़ा अभाव था ।

उसके जाने के बाद नरोत्तम ने कहा, ‘आज मुझे इन्दिरा को देखने की इच्छा हो गई है । इन्दिरा, चक्रवर्ती बाबू का परिवार और बेचारी भोली सुनंदा ।’

तारिणी ने कहा, ‘तुम्हें अधिक से अधिक मित्र बनाने चाहिए । तुम अपने मन को जितना व्यस्त रखोगे, उतने ही तुम्हारे संस्कार मिटेंगे ।’

‘कल मैं वहाँ जरूर जाऊंगा ।’ उसने निर्णय करते हुए कहा ।

वहाँ से वे दोनों खाना खाकर लगभग दस बजे लौटे ।

३६

उसी दिन तारिणी ने नरोत्तम के रहे-सहे भ्रम का निवारण भी सेन बाबू का पत्र मंगवा कर दिया । सेन बाबू ने अपने पत्र में लिखा था कि हमें तृप्ति कभी भी दिखाई नहीं पड़ी । उन्होंने अपने मार्मिक पत्र में लिखा था कि मरने के बाद कौन किसको दिखता है ? वह तो बेचारी देवी थी जो आई और आकर चली गई ।

तारिणी ने कहा, ‘क्यों मिस्टर, जितना पुराना नाटक था, वह वहम ही था ?’ नरोत्तम धीरे से हंस पड़ा । वह रात उनके लिए बड़ी मादक रही ।

दूसरे दिन ही सवेरे-सवेरे इन्दिरा नरोत्तम के यहां पहुंची। नरोत्तम उसे देख-कर बहुत प्रसन्न हुआ। तारिणी से उसका परिचय कराया।

परिचय के बाद इन्दिरा ने अपने पर्स से पचास रुपए निकालकर कहा, 'मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ लेकिन अब इनकी जरूरत नहीं है। आपके उपकारों से मैं पहले ही बहुत दब चुकी हूँ।'

नरोत्तम हतप्रभ हो गया।

तारिणी चाय बनाने के लिए चली गई थी।

इन्दिरा बोली, 'हम इतने गए-बीते नहीं हैं कि आपकी दया की भीख सदा लेते रहें। हमसे इतनी ही आत्मीयता रखनी थी, तब हमें कम से कम अपने विवाह के उत्सव में सम्मिलित करते। हम भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भेंट देते।'

नरोत्तम सफाई देता हुआ बोला, 'इधर मैं पागल हो गया था। मुझे भूतनी लग गई थी।

'इस वैज्ञानिक युग में इस प्रकार की बातें आपके मुंह से अच्छी नहीं लगतीं। भूत-प्रेतों का युग गया।'

'लेकिन रोमी तो कह रहा था कि आजकल हम बड़ी तंगी में है। दिन....'

'हम भूखे मरेंगे पर....'

बीच में ही बोल उठा नरोत्तम, 'यह नहीं हो सकता।'

'क्यों?'

'मैं तुम्हें प्यार ...।' आवेश में नरोत्तम कहता-कहता रुक गया।

इन्दिरा की आंखों में विजलियां चमक उठीं। वह आंसू भरकर आहिस्ते से बोली, 'इसीलिए तुम मुझे रुपए दिया करते थे, इसलिए तुम अपने को पागल कहते हो, इसीलिए तुमने मुझे मिल में बदनाम कराया और अब चांदी के टुकड़े फेंक तुम मुझे मजबूर करते हो कि मैं तुम्हारे अनौचित्य को भी सहन करूं। ... पागलपन के ढोंग में सृष्टि की सहानुभूति प्राप्त करना अत्यन्त सहज होता है पर मैं.... अच्छा नमस्कार।....'

इन्दिरा तूफान की तरह बाहर चली गई।

नरोत्तम जड़ हो गया। वह समझ नहीं रहा था कि यह सब कैसे हो गया।

उसने ऐसा क्यों कह दिया ।

तारिणी जब चाय लेकर आई तब आते ही उसने 'पूछा, 'इन्दिरा दीदी कहां हैं ?'

'चली गई ।'

'क्यों ?'

'वह पचास रुपए वापस करने आई थी ।'

'लेकिन चाय तो पीती जाती ।'

'उसे जल्दी थी ।'

'मालूम पड़ता है उसकी नस-नस में घमण्ड बसा हुआ है ।'

'तारिणी, मैं अभी बहुत परेशान हूं । लगता है कि किसीने मेरे मस्तिष्क पर मन भर का पत्थर रख दिया है ।'

उसने चाय नरोत्तम को देकर पूछा, 'तुम इतने गंभीर कैसे हो गए ? यह बेवजह की उदासी कैसी ?'

चाय की चुस्की लेकर नरोत्तम दार्शनिक के स्वर में कहने लगा, 'तारिणी ! बात यह है कि आज मैंने इन्दिरा को भावावेश में यह कह दिया कि मैं तुम्हारी सहायता इसलिए करता हूं क्योंकि मुझे तुमसे अनुराग है । वह बेचारी यह सुनकर रो पड़ी । कई लांछन उसने मुझपर लगा दिए और चली गई ।'

तारिणी गंभीर हो गई, 'इसके पूर्व आप नारियों से भयभीत होकर उनके सम्मुख अपने मन की बातें नहीं रख सकते थे, इसी कारण आपको इतने दिन मानसिक यातना भोगनी पड़ी । सच कहा जाए तो आप तृप्ति को बहुत अधिक प्यार करते थे और इन्दिरा को भी । अच्छा किया कि आपने उस कांटे को आज बाहर निकाल दिया । अन्यथा यह जीवन भर आपको चुभता रहता । आप सदा इस बात को लेकर परेशान रहते कि मैं एक बार इन्दिरा को कहकर तो देखता ?'

'फिर भी मेरा मन इन्दिरा से सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहता । मैं चाहता हूं कि वह कहीं भी रहे पर मुझे सम्बन्ध रखे । मैं उससे मिलने-जुलने का सिलसिला रखना चाहता हूं । यह भी चाहता हूं कि रोमी से उसका छुटकारा हो जाए ।'

'क्यों ?' तारिणी चौंक पड़ी ।

‘रोमी मुझे अच्छा नहीं लगता । न जाने क्यों मेरे अन्तस् में इसके प्रति घृणा है । मैं समझता हूं कि ईसके साथ इन्दिरा सुखी नहीं रह सकती । फिर वह ईसाई भी है । उसकी वजह से इन्दिरा के मां-बाप बड़े दुखी हैं ।’

‘आप सरासर गलत कहते हैं ।’

‘मैं ठीक कहता हूं ।....’

‘आपकी घृणा सत्य है, और सब भूठ । आप अब भी इन्दिरा पर अधिकार रखना चाहते हैं, खैर अब आप स्नान करिए, आफिस का समय हो गया है और आज आपसे साढ़े नौ बजे कोई लेखक भी तो मिलने के लिए आने वाले हैं ?’ तारिणी उद्विग्न हो गई थी ।

‘हां-हां, वे हिंदी के यशस्वी कलाकार हैं । मैं उनकी कई पुस्तकें छापना चाहता हूं ।’ वह हड़बड़ाकर उठ बैठा ।

‘फिर होइए तैयार ।’ तारिणी ने अनिच्छा से चुटकी बजाई ।

नरोत्तम मस्ती में आ गया । आंखों में मादकता भरकर बोला, ‘तुमने तो मुझे अपना वन्दर बना लिया है ।’

तारिणी गुस्से में भीड़ें टेढ़ी करके बोली, ‘धत्....’ वह भीतर चली गई ।

नरोत्तम मुंह से सीटी बजाने लगा—ओ दूर जानेवाले....

३७

तीन माह के बाद एक मादक प्रभात ।

नरोत्तम चाय पीकर पुनः बिस्तरे पर लेट गया । उसने एक दीर्घ सांस लिया ।

तारिणी बोल उठी, ‘लम्बी आहें क्यों भर रहे हो ?’

‘सोचता हूं कि ईश्वर ने तुम्हारी रचना अवश्य फुसंत से की होगी । मुझे कालिदास का एक श्लोक याद हो आया है—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कांतिप्रदः ।

शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ॥

वेदाम्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो ।

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥

जानती हो, इसका अर्थ क्या है—इसकी (उर्वशी की) सृष्टि के लिए कांति प्रदान करनेवाला चन्द्रमा स्वयं ब्रह्मा बना होगा या शृङ्गार रस के देवता कामदेव ने इसे बनाया होगा अथवा कुसुमाकर वसन्त ने इसकी रचना की होगी । अन्यथा वेद के अम्यास से जड़ीभूत तथा विषयोपभोग से दूर रहने वाले बूढ़े ऋषि ऐसा मनोहर रूप क्योंकर उत्पन्न कर सकते हैं ! अर्थात् नहीं कर सकते । ... इसी प्रकार हे तारिणी सुन्दरी, आपका यह रूप अनंग द्वारा बनाया हुआ है और मैं उसमें सर्वस्व विसर्जन कर डूब गया हूँ ।

नरोत्तम का कथन सच था । इधर नरोत्तम तारिणी में इतना डूबा, इतना डूबा कि उसका सारा मानसिक रोग दूर हो गया । भारतीय नारी नर की निर्देशिका होती है—इस उक्ति को तारिणी ने पूर्ण रूपेण प्रमाणित कर दिखाया । वह सुन्दर थी ही और उसने सभी प्रकार से नरोत्तम को अपनी ओर इतना तन्मय रखा कि नरोत्तम एक पल भी उसके बिना नहीं रह सकता था । ... तृप्ति की स्मृति निर्धूम अग्निशिखा-सी होगई । कौन करता बेचारी को याद ! फिर तारिणी ने उसके मन को पल भर के लिए भी अपने पर से हटने नहीं दिया । उसपर प्रकाशन-कार्य और लेखक-वर्ग । बौद्धिक चेतना के नेता और वाद-विवाद । सभी बातों ने नरोत्तम को अपने में इतना लीन कर लिया कि उसे वर्तमान के अतिरिक्त भूत का ध्यान ही नहीं रहा ।

लेकिन इन्दिरा ?

उसे वह नहीं भुला सका । तारिणी को बार-बार वह कहा करता था कि न जाने क्यों वह इन्दिरा से अपने सम्बन्ध बनाए रखना चाहता है । उसकी एक साध भी है कि वह पूर्ण सुखी बने ।

और तारिणी उत्तर देती थी, 'ये मन के बन्धन हैं, मानवीय नाते हैं, ये कभी टूटेंगे नहीं ।' वह विद्रूप भरी हंसी हंसकर कहती, 'इन्दिरा को आप नहीं पा सके, अब उसे आप पीड़ा पहुँचाकर आनंद लेना चाहते हैं ।'

तभी नरोत्तम रोमी को छिप-छिपकर सदा आर्थिक सहायता करता रहा । कई बार वह इन्दिरा से मिला भी था लेकिन इन्दिरा ने उसकी चाय तक नहीं पी ।

नरोत्तम को उसका जरा भी रंज नहीं था ।

तारिणी ने चाय के बर्तन साफ कर लिए थे । बोली, 'कवि महाराज, सोए ही रहेंगे या कपड़े बदलकर सेठजी के यहां चलेंगे ।'

नरोत्तम सेठजी का नाम सुनकर चौंक पड़ा, पूछ बैठा, 'वहां क्यों चलना है ?'

'आज वे हमें खाना खिलाएंगे ?'

'क्यों, किसीका श्राद्ध है या वर्षगांठ ?'

तारिणी ने उसका हाथ पकड़कर बिठाते हुए कहा, 'चुप ! ... आज वे आपको मेरे पीछे खाना खिलाएंगे ?'

वह बच्चों की तरह रूठता हुआ बोला, 'फिर मैं नहीं चल सकता । आज मैं सेठानीजी को साफ-साफ कह दूंगा कि आपके घर में दिन-प्रति दिन जो सम्मान मेरी वजह से इसका बढ़ रहा है, इसे मैं नहीं सह सकता ।'

तारिणी ने उसकी परवाह न करते हुए एक सोने की जंजीर दिखाकर कहा, 'माता जी (सेठानी) ने कल मुझे यह भी दी है । और कहा है कि अगर तुम ...'

तारिणी कहती-कहती चुप हो गई । उसका मुख लज्जा से आरक्त हो गया । एक अजीब कशमकश उसकी आंखों में तैर उठी ।

'चुप क्यों हो गई ?'

'यू ही ।' पर तारिणी की आंखें अन्तस् का भेद नहीं छिपा सकीं । नरोत्तम उठकर उसके समीप आया । उसका हाथ पकड़कर बोला, 'या तो सीधी-सीधी बता दो अन्यथा मैं तुम्हें ठीक कर दूंगा ।'

'जरा करो न ?'

'देखो तारिणी, तुम मेरी पत्नी, मित्र और सब कुछ हो । इस नाते मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूं कि तुम माता जी को किस चीज पर इतनी लुभा रही हो ?'

'हर बात तुम्हें कैसे बताऊं ?'

'बतानी पड़ेगी ।'

'न बताऊं तो ?'

'तुम भी बच्ची से कम नहीं हो ।' कहकर वह अपना मुंह तारिणी के मुंह के पास ले गया, 'देखो भाई, फिर मैं वहीं ऐसी-वैसी हरकत कर बैठूंगा तो तुम नाराज

हो जाओगी ।’

‘धत् तेरे की ।’ वह फिर नाराज हो गई ।

‘नरोत्तम ने लपककर उसका वाजू पकड़ा । बाला, ‘अरे - फिर यह नखरा, लो...’

तारिणी ने हठात् कह दिया ।

‘वैरी गुड, चलो हमारी ओर से भी तुम्हें एक फर्स्टक्लास चीज भेंट दी जाएगी । फिर चलोगे न खाना खाने के लिए ? माता जी ने बड़े चाव से बुलाया है ।’ उसके स्वर में प्रार्थना थी ।

‘तुम नए इन्सान को जन्म दो और मैं तुम्हारे साथ खाना खाने न चलूँ, यह कैसे हो सकता है ?’ नरोत्तम के स्वर में उपहास भरी गंभीरता आ गई, ‘कितना अच्छा होता कि हिन्दुस्तान की जन संख्या कम होती और एक आन्दोलन चलता कि अधिक बच्चे पैदा करो अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ एक प्रतियोगिता करता कि जो देश अधिक सन्तान उत्पन्न करेगा, उसे इतने करोड़ रुपये पारितोषिक दिया जाएगा तो मेरी समझ में अभी भारतवर्ष प्रथम आता ! ...जिसे देखो, तुरंत बीज धारण कर लेती है । मेरे दफ्तर में जगदीश नारायण प्रसाद सिंह है, विवाह किए दो महीने भी नहीं बीते हैं कि कल बेचारा कह रहा था कि उसकी पत्नी को गर्भ है ।

‘मैंने कहा कि फिर मिठाई हो जाए । तब जगदीश बड़ी निराशा से बोला कि यार, मेरी मिठाई बस हो ही गई । ...मेरी समझमें आप भी इस उत्पादन के के विषय को लेकर नया रेकार्ड कायम करेंगी ।’

तारिणी ने उसे उठाकर कमरे के बाहर धक्का दे दिया, ‘मेरी समझ में अब आपकी वे सिर-पैर की बातें खत्म हो गई हैं । अब आप चट से तैयार होइए और चलिए ।’

इसके बाद दोनों आपस में चोंचलेबाजी करते हुए चले गए ।

दफ्तर में प्रोफेसर मंगल बड़ी देर से नरोत्तम की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह किसी स्थानीय कालेज में फिलासफी के प्राध्यापक हैं। आजकल नरोत्तम के घनिष्ठ मित्रों में हैं। नरोत्तम शीघ्र ही उनकी एक पुस्तक प्रकाशित करने जा रहा था।

प्रोफेसर का जीवन बिल्कुल सादा था। जीवन के प्रति सोचने का तरीका उनका अपना था। प्रायः इंडिया काफी हाउस में नरोत्तम उनसे विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद किया करता था।

शादी के प्रति प्रोफेसर का इतना ही कहना था कि मनुष्य को किसी सुन्दर, गृहस्थ धर्म में आस्था रखने वाली स्त्री से विवाह कर लेना चाहिए और उसे ही अपने हृदय का अगाध प्रेम और स्नेह प्रदान कर देना चाहिए। 'मैं कहता हूँ कि ऐसा करने से मनुष्य की शक्ति का ह्रास केवल 'प्रणय-अन्वेषण' में नहीं होता।' उनका यह भी कहना था कि कालिदास की 'शकुन्तला' या राजा शूद्रक की 'वसन्तसेना' अथवा कीट्स की 'मैडेलाइन', लुई की 'एफोडाइट', होमर की ट्राय की 'हेलन' सभी समयान्तर अरुचिकर सिद्ध हो जाती हैं। 'मेरा अभिप्राय यह है कि धीरे-धीरे जैसे-जैसे मनुष्य की विषय-लिप्सा का शमन होता रहता है, वैसे-वैसे उसमें अपनी प्रिय वस्तु के प्रति एक विकर्षण-सा उत्पन्न हो जाता है। जब यह सत्य है तब क्यों इसके पीछे भटका जाए। दूसरे, हमारे यहां सौन्दर्य-वृम्भित लोग बहुत हैं। कई लोग तो अपनी पत्नियों एवं मित्रों के अतिरूप के कारण परेशान नज़र आते हैं। मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि सौन्दर्य-विमुख आप रहें। मेरा कहना है कि आप सबसे पहले नारी के सद्गुण देखें। आप यह देखें कि उसमें यांत्रिक सभ्यता के कीटाणु तो नहीं हैं। प्रत्येक नारी में इस 'मिट्टी' की भावुकता होनी चाहिए कि उसमें समर्पण के साथ त्याग भी हो।'।

और यही कारण था कि प्रोफेसर साहब ने एक अति साधारण परिवार की सद्गृहस्थ महिला से विवाह किया। उन्हें न तो सौन्दर्य के प्रति आसक्ति थी और न किसी विशेष प्रलोभन के प्रति लालसा ही। दो-तीन बच्चे थे। चिन्तन-मनन के क्षणों के अलावा वे उन्हीं बच्चों की मधुर किलकारियों और नटखट गतिविधियों

में खोए रहते थे।

दपतर का टाइपिस्ट निरन्तर खट-खट करता जा रहा था। उसकी अंगुलियाँ एक पल के लिए भी विश्राम नहीं ले रही थीं। एक क्लर्क मिस्टर दास हर समय बेचारे चपरासी को डांटता रहता था। दस से लेकर चार बजे तक वह व्यक्ति निरा यंत्रवत् कार्य करता था। न बेचारे चपरासी को सांस लेने देता था और न खुद लेता था।

प्रोफेसर मंगल दास को यांत्रिक मनुष्य कहता था। प्रोफेसर साहब का कहना था कि धीरे-धीरे यह दास अपनी सभी मानवीय अनुभूतियों को विस्मृत करके यंत्र हो जाएगा। इसका समग्र कार्य-कलाप यंत्रनुमा हो जाएगा। यदि उसकी पत्नी उत्पादन—‘मेरा अभिप्राय काम करने की क्षमता’ से है—नहीं करेगी तो यह उसपर आग-बबूला होगा। क्योंकि यह क्या, जितने भी नौकर पेशा लोग हैं, वे सब यांत्रिक बनते जा रहे हैं। वे एक यंत्र की भांति अपनी दिनचर्या बिताते हैं। यदि उस दिनचर्या में ज़रा भी अड़चन उत्पन्न हो जाए तो वे इतने व्यग्र और चिन्तित हो जाते हैं जैसे कोई बड़ा अनिष्ट हो गया है।

दास अब भी उस चपरासी को डांट रहा था। वह कठोर स्वर में कह रहा था, ‘तुम आदमी नहीं गधे हो, यहां से चाय लाने में तीन मिनट से अधिक नहीं लग सकते और तुम पूरे छह मिनट लगाकर आए हो।’ ‘यह भी कोई काम का तरीका है?’

चपरासी गिड़गिड़ाकर बोला, ‘मुझे मेरे गांव का एक आदमी मिल गया था, मैं उससे ज़रा अपने घर वालों के बारे में पूछने लगा।’

‘छट्टी के बाद नहीं पूछ सकते थे?’ कड़ककर दास बोला, ‘यह प्रवृत्ति बहुत बुरी है। यह दपतर है, मालिक तुम्हें छह घंटे का पैसा देता है, पांच घंटे, चौवन मिनट्स का नहीं। समझे!’

चपरासी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिला दिया।

दास फाइलों में अपने को तल्लीन करते हुए अपने आपसे तीव्र स्वर में कहने लगा, ‘कल मैं जब बिल देने बेन्टिक स्ट्रीट गया था तब मुझे मेरा लड़का अक्षय मिल गया, पर मैंने उससे बात नहीं की। मालिक का समय मालिक के लिए होना

चाहिए। समझे ?'

'रामप्रसाद !' दास जोर से बोला।

चपरासी हाथ जोड़कर बोला, 'जी हुजूर !'

'एक गिलास जल देना तो।'

और प्रोफेसर साहब सोच रहे थे कि क्यों नहीं ऐसे मनुष्यों को किसी पाश्चात्य देश में भेज देते जहां यांत्रिक सभ्यता मानवी सभ्यता पर लौह आवरण-सी छाती जा रही है। 'नरोत्तम को कहकर मैं इस दास को समझा दूंगा कि वह कहीं और चला जाए जहां नौकर अपने मालिक के लिए सब कुछ दान कर देता है।'

टाइपिस्ट अभी तक खट-खट करता जा रहा था।

प्रोफेसर साहब ने घड़ी की ओर देखकर टाइपिस्ट अलख से पूछा, 'क्यों, आज नरोत्तम जी नहीं आएंगे क्या ?'

'जरूर आएंगे।' अलख ने उत्तर दिया।

तभी नरोत्तम ने दफ्तर में प्रवेश किया। मंगल को देखकर वह प्रसन्नता से बोला, 'हलो प्रोफेसर, देरी के लिए क्षमा !'

'कोई बात नहीं। बैठो।'

नरोत्तम बैठ गया।

'कहो, क्या हालचाल है ? आज इतनी देर कहां लगा दी !' प्रोफेसर बोले। उनकी आंखों में उत्सुकता थी।

'आज मैं अपनी पत्नी के साथ सेठजी के यहां खाना खाने गया था।'

'पत्नी के साथ, क्या मतलब ?'

'वह मां बनने वाली है।'

'बधाई।'।'

'क्यों प्रोफेसर, यदि यह रफ्तार अभी से शुरू हो गई तो जवानी के ढलते-ढलते ट्राई की तीन नैपार हो जाएगी।'।'

'अभी दो-तीन तो होने दो, इसके बाद सोचा जाएगा।' कहकर प्रोफेसर अपनी बात पर आए। 'आपने मेरा उपन्यास 'सृष्टि के खंडहर' पढ़ लिया ?'

'हां !'

‘आप उसे छापेंगे ?’

‘निस्संदेह ।’

‘इसमें प्रतिपादित विषय और घटनाएं आपको पसंद आई ?’

‘जी, पर मुझे आपसे दो-तीन बातों पर ज़रा विचार-विमर्श करना है। मेरे ख्याल में नारी इतनी कठोर नहीं हो सकती है कि वह अपने चाहने वाले को अंत समय छूने भी न दे। जब उसे यह भी पता है कि अब उसे प्यार करने वाला खुद उसकी भांति विवाहित है ।’

‘हां, चूँकि मेरी हीरोइन सविता उसके किसी भी सहयोग को एक ही दृष्टिकोण से अपनाती है कि वह उसका अपमान कर रहा है अथवा वह उसपर अहसानों का बोझ लादकर उसे दुर्बल कर रहा है। इसलिए वह ज़रूरत से अधिक सचेत रहती है। इसी कारण वह आवश्यकता से अधिक कठोर भी है। उसकी घृणा की भावना भी उसी तरह गहरी होती जाती है ।’ प्रोफेसर ने उत्तर दिया ।

नरोत्तम ने अपने मुँह को दोनों हाथों से ढक लिया। ललाट पर सलबटें डालकर बोला, ‘फिर पहले सविता किशोर से हंस-हंसकर रुपए क्यों मांगती थी ?’

प्रोफेसर सिगरेट का कस खींचकर बोले, ‘सविता जानती थी कि किशोर बुद्धू है। उससे उसका अटूट सम्बन्ध केवल नाम मात्र का है। वह उसके हाथ का खिलौना है। जिस तरह एक बच्चा एक खिलौने से अपना मन बहलाव किया करता है उसी प्रकार वह किशोर के रुपए लेकर अपना मन बहलाव किया करती है। पर बाद में जैसे ही उसे यह पता चला कि किशोर बुद्धू नहीं, केवल प्यार के वशीभूत होकर ऐसा करता है, इतना ही नहीं, वह उसपर अधिकार की भावना भी रखता है, तब वह एकाएक अपने को चरित्रहीनता के लांछन से बचाने के लिए ऐसा कर बैठती है। यदि वह ऐसा नहीं करती है तब उसका पति उसके मन-बहलावों में पाप की छाया देखने लगेगा। तभी तो वह अपने पति को बार-बार कहती है कि तुम उसके पास मत जाया करो, वह बड़ा पतित है। उसने मेरी मित्रता का गलत अर्थ लगाकर मुझे बहुत दुख पहुंचाया है ।’

प्रोफेसर के चुप होते ही नरोत्तम को इन्दिरा का स्मरण हो आया ।

सविता और किशोर !

नरोत्तम और इन्दिरा !

यह घटना-साम्य कैसा ! वह इस निगूढ़ तत्त्व के सत्य को खोजने लगा ।

‘तुम गम्भीर कैसे हो गए ?’ प्रोफेसर ने पूछा । उनकी आकृति पर जड़ता-सी प्रतीत हो रही थी ।

‘ऐसे ही ।’ नरोत्तम ने अपने भावों को दबाकर झूठ कहा ।

‘और कुछ ?’

‘एक बात और है । आपने लिखा है कि हमारा आज का समाज वर्बरता की ओर जा रहा है । साथ ही यहां साम्प्रदायिक भावना दिन-प्रतिदिन प्रबल हो रही है ? क्या यह सही है जब कि समस्त विश्व यह घोषित कर रहा है कि हम प्रगति कर रहे हैं । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना बढ़ रही है ।’

प्रोफेसर बोलने के लिए उद्यत हुए ही थे कि टेलीफोन की घंटी बजी । नरोत्तम ने रिसीवर उठाकर तहकीकात की और प्रोफेसर से बोले, ‘आपका फोन है ।’

‘हलो !’ प्रोफेसर ने कहा, ‘क्या कहा, कौन ? शुक्लजी ? मैं अभी आया ।’ नरोत्तम से मधुर स्वर में बोले, ‘आज आप मुझसे काफी हाउस में मिलिए, मुझे अभी जाना है, अच्छा ओके...!’

प्रोफेसर साहब चले गए ।

नरोत्तम काफी देर तक विचारमग्न बैठा रहा ।

फिर दास से बोला, ‘मैं बाहर जा रहा हूं । आऊंगा जरूर पर कह नहीं सकता कब तक लौट पाऊंगा ।’

नरोत्तम चल पड़ा ।

३९

लगभग इधर पंद्रह दिन से रोमी नहीं मिला था । इन्दिरा की भी कोई खबर नरोत्तम को नहीं मिली थी । चक्रवर्ती के यहां उसने प्रायः जाना छोड़ ही दिया था । कुछ तारिणी ने भी उसपर ऐसा सम्मोहन का जादू कर दिया था कि वह अपने मन

को उसके ध्यान से अलग कर नहीं पा रहा था ।

आज नरोत्तम खूब सोचकर इन्दिरा की ओर रवाना हुआ ।

दोपहर के तीन बजे थे ।

ड्राम प्रायः खाली थी । नरोत्तम ड्राम में बैठा हुआ सोच रहा था कि प्रोफेसर ने अपने उपन्यास में अत्यन्त स्वाभाविक चरित्र का चित्रण किया है । वह चाहे पाठकों के विचार जगत से तनिक दूर भले ही हो पर है वह सत्य ।

इन्दिरा उससे सविता की भांति घृणा करती है । वह इन्दिरा को सुखी देखना चाहता है । रोमी उसे कभी सुखी नहीं कर सकता । इसीलिए वह इन्दिरा को बार-बार कहता है कि वह कहीं काम कर ले । पर इन्दिरा रोमी से चिपटती ही जाती है ।

इन्दिरा की बाड़ी आ गई थी ।

वह उतरा और सीधा ऊपर चला गया । द्वार खटखटाया । इन्दिरा ने द्वार खोला । नरोत्तम को देखकर वह चौंक पड़ी ।

‘आज आपका आगमन कैसे हुआ ?’ व्यंग्य से वह बोली ।

‘तुमसे मिलने के लिए आ गया ।’ वह कुर्सी पर बैठता हुआ बोला ।

‘मुझे क्यों ?’

‘मन नहीं माना !’

‘देखो नरोत्तम, तुम अपने इस मन को मना लो । कहीं वह मेरा अनिष्ट न कर दे । मैंने रोमी को सब बता दिया है । मैंने उसे यह भी कह दिया है कि वह मुझे प्यार करता है और तुमसे घृणा करता है इसलिए वह मुझे तुमसे छीनना चाहता है । मेरे और तुम्हारे बीच व्यवधान डालना चाहता है । इसलिए मेहरबानी करके नरोत्तम, यहां मत आया करो ।’

नरोत्तम कुछ देर तक मौन बैठा रहा । फिर आहिस्ता से बोला, ‘सत्य का उद्घोष यहां न तो प्रियकर है और न रुचिकर । वासना रहित मेरे अपनत्व को तुम मर्जी आए वैसा आवरण पहनाती हो, यह उचित नहीं है...’ इन्दिरा ! मैं तुमसे कदापि और किसी भी सूरत में सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करूंगा, चाहे तुम्हें मुझे कितनी ही घृणा क्यों न हो । फिर भी मैं तुम्हारे पास सम्मानहीन होकर भी आऊंगा । न जाने तुम्हारे बिना मुझे एक अभाव-सा क्यों लगता है । फिर मैं तुम्हें

सुखी भी देखना चाहता हूं।’

‘मैं सुखी होना नहीं चाहती। इसपर भी तुम मेरी आत्मा को कष्ट देना चाहते हो तो देते रहो। यहां हर रोज आग्री, प्रेम का नाटक खेलो, उस गरीब प्राणी की आत्मा को दुखाग्री, मुझे रुलाग्री।’ कहते-कहते वह फफक पड़ी।

‘घर की कुछ खबर है?’ नरोत्तम ने नया प्रश्न किया।

‘हां, तुम्हें एक खुशखबरी सुना रही हूं। सुबोध वापस आ गया है। एक दुख की खबर सुना रही हूं—बाबा का देहान्त हो गया है।’

‘चक्रवर्ती...’ नरोत्तम का गला अवरुद्ध हो गया। वह कुछ दुःखित होकर बोला।

‘मालूम हुआ।’ उसने रुकते-रुकते कहा।

‘घरवाले अनाथ हो गए।’

‘तुम गई थी?’

‘हां, पर मां ने मेरा अपमान करके मुझे दुःख पहुंचाया।

‘उसने मुझे कहा कि तुम्हींने अपने बाबा को मारा है। तुम्हीं हमारे घर के सर्वनाश का कारण हो।’ इन्दिरा की आंखों में हल्का रोप था जिसपर आंसुओं की नमी तैर रही थी।

‘तुम्हें रोष आ रहा है? मां ने तुम्हें सही कहा था। तुमने समाज की तनिक भी परवाह न करके एक ईसाई से नाता जोड़ा, उसका फल तुम्हारे मां-बाप को और क्या मिल सकता है? अपमान, यातना, मृत्यु! देखो इन्दिरा, अब भी यदि तुम्हें सुबोध ग्रहण करने को तैयार है तो तुम वहां चली जाओ।...’ नारी इस द्विविधा में कभी भी सुख और संतोष नहीं पा सकती कि उसके विचार दो पुरुषों पर केन्द्रित हों। भले ही एक से वह घृणा करती हो और एक से प्यार! पर दो पुरुषों पर केन्द्रित होना ही असन्तोष है।’

‘अभी रोमी आकर यह सब अपने कानों से सुन लेता, कितना उत्तम होता। वह जान जाता कि तुम उससे स्नेह करने नहीं, उसकी पत्नी को उसके विरुद्ध बरगलाते आते हो। तब वह तुम्हें धक्के मारकर बाहर निकाल देता।’

‘वह मुझे क्या निकालेगा। वह मेरा मित्र है। मैंने उसकी सदा आर्थिक सहा-

यता की है। आज से कुछ दिन पूर्व वह मुझसे पचीस रुपए फिर ले गया था।' उसने एक खूँटी की ओर संकेत करके कहा—

‘और यह साड़ी भी मैंने ही रोमी को भेंट की थी।’

‘यह साड़ी !’

‘हां, यही साड़ी ! उसने मुझसे कहा था कि इन्दिरा के लिए एक सुन्दर साड़ी की आवश्यकता है। उसके बिना उसे अत्यन्त कष्ट होता है।’

इन्दिरा की आंखों में आंसू आ गए। वह भरपूर स्वर से बोली, ‘उसने मेरे हठ का कोई मूल्य नहीं समझा। मैंने उसके लिए अपने जन्म देने वाले मां-बाप को छोड़ दिया और वह तुम्हें भी नहीं छोड़ पाया। इतना बड़ा छल ? इसे मैं क्या समझूँ ? क्या अभाव आदमी से इतने बड़े छल करवा सकते हैं ?’

उसके आंसुओं को देखकर नरोत्तम कोमल स्वर में बोला, ‘पर मैंने किसी अप-वित्र भावना से प्रेरित होकर ऐसा नहीं किया। सच कहता हूँ इन्दिरा, अपने जीवन का शेष स्वप्न यही है कि तुम सुखी रहो, तुम भाग्यशाली होओ, तुम अपनी बनो।’

‘तुम्हारा यह शेष स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा।’ वह अश्रुओं को पोंछती हुई दृढ़ता से बोली।

‘जरूर होगा। मैं तुम्हें रोमी से मुक्त कराके ही दम लूंगा। अच्छा हुआ कि सुबोध आ गया।’

‘गौरांग प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे तुमसे पराजय न दिलाए !... और बेचारा रोमी भी मुझपर सर्वस्व-विसर्जन करता है। न मालूम वह तुम्हारे पास कुत्ते की तरह बार-बार क्यों जाता है ?’

नरोत्तम कुर्सी को हल्के-हल्के बजाता हुआ बोला, ‘वह मेरे व्यवहार में सौहार्द के दर्शन करता है। उसे मुझसे कोई शिकायत नहीं है। हालांकि मैं तुम्हें उससे अलग कराने की चेष्टा में हूँ पर फिर भी अभावग्रस्त रोमी मुझे ही अपना सबसे बड़ा हितैषी समझता है।’

‘आज मैं तुम्हारी इस दुष्ट भावना से प्रेरित सभी पतित बातों को रोमी के समक्ष रख दूंगी। उसे कहूंगी कि नरोत्तम एक ही भयानक उद्देश्य लेकर यहां आता है कि हमारे-तुम्हारे बीच वैमनस्य उत्पन्न हो।’

‘तो भी वह मुझसे विलग नहीं होगा। तो भी वह मुझसे मिश्रता नहीं तोड़ेगा।’ वह विश्वास के साथ बोला।

‘क्यों?’ जैसे कोई अनहोनी हो रही हो, ऐसे भाव इन्दिरा की आंखों में तैर उठे।

‘यही प्रश्न मैं सदा अपने से किया करता हूँ कि इन्दिरा से बार-बार अपमानित होने पर भी मैं उसके पास क्यों जाता हूँ तथा घृणा करने पर भी मैं उसके बारे में इतना क्यों सोचता-विचारता हूँ? क्यों उसके मंगल की कामना करता हूँ और क्यों उसको पूर्ण सुखी देखना चाहता हूँ? इन प्रश्नों का उत्तर यही है कि मैं बस, तुम्हें सुखी देखना चाहता हूँ। मेरा तुमसे आत्मिक अनुराग है और रोमी मुझे नहीं छोड़ सकता—उसका-मेरा आर्थिक सम्बन्ध है। बिना पैसे आज सांस लेना भी अपराध लगता है। आदमी अपना सर्वस्व देकर भी पैसा उपार्जन करता है और रोमी को तो केवल एक-दो भूठ बोलना पड़ता है। अभावों को रोना-बताना पड़ता है। जिस व्यक्ति से इतनी सरलता से रुपए लिए जा सकते हैं, उससे सम्बन्ध कैसे तोड़ा जा सकता है?’

नरोत्तम ने इतना कहकर गंभीर मौन धारण कर लिया।

इन्दिरा ने उठकर रुखाई से कहा, ‘अब तुम जा सकते हो। यदि इसी प्रकार मेरे पीछे पड़े रहे तो मुझे यहां से जाना पड़ेगा। मैं कलकत्ता ही छोड़ दूंगी।’

‘पीछा करने वाले बहुत ढीठ होते हैं।’ उसने भीहें टेढ़ी करके कहा, ‘मृत्यु तक पीछा नहीं छोड़ते!’

‘अब तुम जाओ।’ उसने झुंझलाकर कहा।

‘जाता हूँ।’ कहकर नरोत्तम द्वार की ओर बढ़ा, ‘इन्दिरा, संसार का पंथ विकट और अनंत है और आदमी जब यौवन काल में भटक जाता है तब बुढ़ापा चारों ओर लगी आग के बीच विल्ली के बच्चों की भांति निस्सहाय हो जाता है।’

‘अपने दर्शन की बातों का एक संकलन क्यों नहीं छपा लेते, दार्शनिकों में नाम हो जाएगा।’ इन्दिरा ने चिढ़कर कहा।

नरोत्तम चला आया। उसके जाते ही इन्दिरा ने उस साड़ी को उठाकर कंची से कतरना प्रारंभ कर दिया। उसने उन्मत्त की भांति अपने आपसे कहना शुरू

किया, 'तभी यह साड़ी मुझपर खिलती नहीं थी। तभी किसीने इसकी प्रशंसा नहीं की। तभी यह सदा प्रभावहीन रही।' और वह उसका ढेर बनाकर फूट-फूट कर रो पड़ी, 'और यह रोमी, उसने मुझसे छल किया। उसने मेरे विश्वासों को बल देने के बजाय आघातों से छलनी कर दिया। आज मैं उससे पूछूंगी कि क्या संसार में तुम एक व्यक्ति के बिना नहीं रह सकते?'

४०

नरोत्तम वहां से सीधा चक्रवर्ती के यहां पहुंचा। चक्रवर्ती का परिवार उसी घर में रहता था। उसकी दशा पहले से कुछ अधिक जीर्ण हो गई थी, इसलिए नरोत्तम को स्वामी हीन गृह का दृश्य पीड़ाजनक लगा।

उसने द्वार पर खड़े होकर पुकारा 'सुनंदा !'

स्वर धीमा था, इसलिए पहुंच नहीं सका। भीतर एक स्त्री-पुरुष का कंठ-स्वर आपस में वार्तालाप भी कर रहा था। स्त्री के स्वर को नरोत्तम पहचान गया। वह सुनंदा का था। सुनंदा कह रही थी, 'सुबोध बाबू, मां पार्वती फूफी के यहां गई हुई है। संध्या तक लौटेगी।'

'कुछ आवश्यक काम था?'

'नहीं, कह रही थी, बैठे-बैठे मन दुर्भावनाओं एवं कल्पनाओं के सहारे उड़ता रहता है जिससे हृदय का क्लेश और कष्ट दोनों बढ़ते हैं, अतः आज मैं तनिक पार्वती फूफी से मिल आती हूं। कुछ उसकी सुन आऊंगी और कुछ अपनी सुना दूंगी। और वह चली गई।'

तभी नरोत्तम ने जोर से पुकारा, 'सुनंदा !'

सुनंदा ने कहा, 'कौन है?'

वह नीचे आई! नरोत्तम को देखकर स्नेहाभिभूत हो उठी। लपककर चरण स्पर्श कर लिए। नरोत्तम ने मन ही मन आशीर्वाद दिया।

‘उठो सुनंदा, मां कहां है ?’

सुनंदा की आंखें धर आईं। बोली, ‘मां बाहर गई है। आप आइए, सुबोध बाबू, यही हमारे नरोत्तम दा हैं।’

‘नमस्कार नरोत्तम बाबू।’ सुबोध ने शालीनता से उसे ऊपर चढ़ने का संकेत करते हुए कहा, ‘आइए, मैं आपके लिए चाय का बंदोबस्त करवाता हूं।’

‘नहीं, उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।’

‘ऐसा कैसे हो सकता है।’ सुबोध ने विस्मय से कहा, ‘आप महीनों बाद हमारे घर आए और हम आपका सम्मान न करें यह कैसे हो सकता है।’

‘बात यह है कि कई महीने से आने की सोच रहा था पर परिस्थितिवश आ नहीं सका।’ नरोत्तम ने सफाई पेश की।

‘सुनंदा, अपने दादा के लिए स्पेशल चाय बना कर ला। दादा बिना चाय पिए कैसे जा सकते हैं?’

अब तक वे दोनों ऊपर तक पहुंच गए थे।

वे दोनों एक दूसरे के आमने-सामने बैठे थे।

नरोत्तम सोच रहा था कि बात किस तरह शुरू की जाए। सुबोध इस तरह चुप था जैसे वह भूसाभरा हुआ कृत्रिम मनुष्य हो।

आखिर नरोत्तम बोला, ‘आप मुझसे एक बार मिले थे न? याद है आपको, रेल में, आपने मुझे कहानी सुनाई थी?’

‘याद है।’

‘फिर आपने पुनः गृहस्थ धर्म में कैसे प्रवेश कर लिया?’

सूरज पर एक बदली छा गई थी। जिससे कमरे में हल्का अन्धकार छा गया था। सुबोध ने सुनंदा को खिड़की खोलने के लिए कहा। खिड़की खुल जाने के बाद हवा भी तेज चलने लगी।

सुबोध ने एक पपड़ी उतरी हुई दीवार पर दृष्टि जमाते हुए कहा, ‘एक तो चक्रवर्ती बाबू की मृत्यु हो गई थी और दूसरे स्वयं मेरे बाबा की। मेरी मां वैधव्य का एकाकी जीवन कैसे गुजारती? वह वेदना के कारण उन्मत्त और उन्मादित होने लगी।... एक और बात थी कि मैंने इन सब लोगों से व्यावहारिक बन्धन

तोड़ लिए थे पर आन्तरिक बन्धन तोड़ने में मैं सदा असफल रहा। मेरी यह देह काशी, पुरी और प्रयाग रहती थी पर यह आत्मा सदा स्वजनों के आसपास चक्कर लगाया करती थी। इस दुर्बलता को लेकर मैं कितने दिन अशांति का जीवन यापन करता। 'और इसी बीच मेरी भेंट गंगा के तीर पर सास से हो गई। सास ने मेरे पांव पकड़कर कहा कि बेटा, यदि अब तुम हमारी देखभाल नहीं करोगे तो हमारा सर्वनाश निश्चित समझो। मोह से मैं भी मुक्त नहीं था। वास्तव में मैं अपने संन्यासी-जीवन से संतुष्ट नहीं था। सास के तनिक हठ ने मेरी दुर्बलता को प्रोत्साहन दिया और मैं पुनः पारिवारिक बन्धन में बन्ध गया। 'आपको विश्वास नहीं होगा, जब मेरी मां को यह सूचना मिली तब उसने सौ रुपए की वधाइयां बांट दीं।'

सुबोध निश्चल भाव से नरोत्तम को देखने लगा।

नरोत्तम मधुर मृदुल स्वर में बोला, 'इन्दिरा?'

सुबोध शून्य हो गया।

सुनंदा चाय ले आई थी। दोनों को चाय देकर वह पुनः चली गई। नरोत्तम ने अपनी दृष्टि चाय के प्याले पर जमा दी थी, जैसे उसने यह कहकर उचित नहीं किया। उसे स्वयं अपने आपपर भुंभलाहट आई कि वह क्यों किसीसे गुह्य से गुह्य प्रश्न पूछ बैठता है। इतनी सावधानी रखने पर भी वह ऐसी भूलें प्रायः कर बैठता है।

सुबोध चाय को समाप्त करके बोला, 'इन्दिरा से अब मेरा कोई वास्ता नहीं है।'

नरोत्तम पर वज्रपात हो गया। उसके नेत्र विस्फारित हो गए। वह एकटक उसे देखता रहा।

सुबोध खिड़की की राह अनंत-विस्तीर्ण शून्य की ओर ताकता हुआ बोला, 'उसपर अब मेरा कोई अधिकार नहीं है। वह सदा अस्थिर विचारों की रही है। उसकी अन्तश्चेतना में महत्वाकांक्षाओं का बहुत बड़ा स्रोत है। मेरे प्रणय-प्रसंग में उसे अपने जीवन की सभी महत्वाकांक्षाएं फलीभूत होती हुई प्रतीत हुईं। उसे यह भी विश्वास था कि मैं उसके रूप-माधुर्य में आत्मविस्मृत-सा हो जाऊंगा पर मैं उसका होते ही पतन के पथ पर आरूढ़ हो गया। निष्कर्ष यह निकला कि इन्दिरा

की छटपटाती महत्वाकांक्षाएं विद्रोह कर उठीं। मैं भी लापरवाह था। मेरी यह भी धारणा थी कि जहां पैसा है, वहां सब कुछ है। और यह सही भी है। मैंने तुरन्त एक अन्य युवती से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। लेकिन बाद में मुझे यह पता चला कि जो त्यागमयी भावना से परिपूर्ण निश्छल प्यार सामाजिक अधिकारों से प्राप्त एक पत्नी दे सकती है, वह पूंजी के बल पर प्राप्त की हुई पत्नी या प्रेयसि नहीं दे सकती। अतः मैंने पराजित योद्धा की भांति अपना आत्मसमर्पण इन्दिरा के सम्मुख कर दिया पर इन्दिरा ने उसे एकदम अस्वीकार कर दिया।... तब अपमान और लोक-लज्जा से आतंकित होकर मैंने इस समाज से ही पलायन कर लिया, लेकिन मुझे उस जीवन में तनिक भी शांति नहीं मिली। जो अतृप्तियां और अभाव मेरे मन में थे, वे मुझे सदा कचोट-कचोटकर दुर्बल कर रहे थे, इसलिए परिस्थिति बदलते ही मैं पुनः उसी जीवन में आ गया, जिसको मेरा अन्तर्मन स्वीकार करता था। इससे मुझे एक और लाभ हो गया कि लोगों को कहने के लिए मुझे एक बहाना मिल गया कि सास और मां के परिवार की रक्षा हेतु मुझे पुनः अनिच्छापूर्वक गृहस्थ बनना पड़ा।

इसके बाद इधर-उधर की चर्चाएं होती रहीं। एकाएक नरोत्तम ने बताया, 'इन्दिरा बड़े कष्ट में है। पता नहीं बेचारे रोमी को कौन-सा ग्रह लग गया है, एक पैसे की इन्कम नहीं होती। एक रोज मुझे कहने लगा कि मेरे भाग्य बिलकुल मंद पड़ गए हैं। कोई प्रेमेन्द्र बाबू नामक मित्र आजकल उसकी मदद कर रहा है।'

'इन्दिरा के बारे में अब मैं चिन्ता क्यों करूं?' सुबोध ने भूठ कहा।

'और यदि वह अब आपके पास आए तो...?'

'तो...?'

एक जलता प्रश्न महाकाल-सा सुबोध के समक्ष खड़ा हो गया। वह जलती हुई आंखों से उसे देखने लगा और नरोत्तम यंत्रवत् कहता गया, 'मैं चाहता हूं कि इन्दिरा रोमी को छोड़कर पुनः तुम्हारे पास आ जाए। उसका सुख केवल तुम्हारे साथ है। मैं इस प्रयत्न में हूं कि उसमें और रोमी में द्वन्द्व व संघर्ष उत्पन्न हो, व्यवधान पैदा हो, घृणा की भावना खड़ी हो।'

'लेकिन मैं आपसे कतई सहमत नहीं हूं। मैं उसे जितना हो सके सुखी करने की

चेष्टा करूंगा। अपनी सम्पत्ति का एक भाग उसके नाम इसलिए कर दूंगा कि वह रोमी के साथ अपने जीवन को पूर्ण सुखी बना ले।' सुबोध 'काफी गंभीर हो गया था। क्षण भर रुककर बोला, 'आप कहते हैं कि वह उसके साथ सुखी नहीं हो सकती और मैं कहता हूँ कि उसका वास्तविक सुख ही रोमी के साथ है। क्योंकि रोमी भी उसे बहुत ही चाहता है। वह अपना अस्तित्व मिटाकर इन्दिरा को छोड़ना नहीं चाहता।'।

नरोत्तम आह छोड़कर बोला, 'आप आदर्श की चरम सीमा पर पहुंचकर विचार करते हैं, ये विचार बड़े थोथे हैं।'।

सुबोध ने दृढ़ता से कहा, 'नहीं, मनुष्य को अत्यन्त उदार होना चाहिए।... और मैं भी आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप अपना यह विचार त्याग दें।'।

४१

प्रोफेसर ने काफी का घूट लेकर कहा, 'आपने पूछा कि युग प्राचीनता की ओर क्यों जा रहा है? आप ध्यान से देखिए और समझिए। अजन्ता और एलोरा की सभ्यता का प्रभाव हमारे रहन-सहन और जीवन पर आने लगा है। भारतीय नारियां जिनका अंग भी गत दिनों देखना अति दुर्लभ था, आज हम उनका पेट और कमर दोनों देख सकते हैं। मैं इसे पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण मानने को कदापि तैयार नहीं हूँ। लेकिन कोई लहर इसमें अवश्य मिल गई होगी।... और आप देखेंगे कि थोड़े दिनों में यह प्रगति केवल कुचकी और झलमलाते सलमों व सितारों से युक्त लहंगों की ओर हमें ले जाएगी जिनके भीति-चित्र हम कई प्राचीन स्थापत्य कला पर अंकित हुए देख सकते हैं। और तो और, यह खदूर के जो ब्लाउज-पीसेज आज-कल प्रचलित हुए हैं, उन्हें पिछड़ी जातियां बहुत असें से पहनती आ रही हैं। मेरे विचार से वे इन्हें पुरानी फैशन समझकर छोड़ेंगी और हम सभी इसे नई समझकर अपनाएंगे। और तो और, केश-विन्यास में भी प्राचीन संस्कृति-सभ्यता का पूर्ण प्रभाव लक्षित हो रहा है। सेक्स की स्वतन्त्रता क्या हमें वैदिक संस्कृति का स्मरण

नहीं करा देती, जब कहीं-कहीं आतिथ्य की पूर्णता के लिए पत्नी तक को दे दिया जाता था ? आज रूप बदले हैं, तथ्य बदले हैं, तरीके बदले हैं पर मूलोद्देश्य नहीं बदला है। आज जब हम एक क्लब में जाते हैं और सुरा की मादकता में तन्मय होकर भूमते-नाचते और आपस में अनैतिक कृत्य करते हैं तब कहां यह ध्यान रखा जाता है कि यह मेरी पत्नी है या दूसरे की ? आदिम काल में जब कबीले सुरा की मादकता में मस्त हो जाते थे तब लोग इसी भावना के अभिभूत होकर आनंद लूटते थे। रही आतिथ्य के लिए पत्नी तक को दे देना। प्राचीन समय में आतिथ्य सर्वोपरि धर्म था और आज 'पैसा' हमारा इष्टदेव बन चुका है। एक नहीं, हजारों ऐसे आदमी मिल जाएंगे जो पैसों के लिए अपनी पत्नी का एक साधन के रूप में उपयोग करते हैं। उनकी पत्नी अपने पति के धर्म अर्थात् पैसों के लिए विभिन्न अभिनय करके उद्देश्य की पूर्ति करके सुख और संतोष को प्राप्त करती है। मैंने कहा न, रूप बदले हैं, तथ्य बदले हैं, तरीके बदले हैं पर मूलोद्देश्य नहीं बदला है।' प्रोफेसर इतना कहकर चुप हो गए। सिगरेट सुलगाकर वे पीने लगे। काफी ठंडी हो गई थी, इसलिए दूसरे कप का आर्डर दिया गया।

नरोत्तम उनकी बात से धीरे-धीरे सहमत हो रहा था।

'दूसरी बात है कि देश में साम्प्रदायिकता पनप रही है। यह भी सही है। हममें एक दूसरे प्रति कोई स्नेह, नहीं, कोई अपनत्व नहीं। बंगाली मारवाड़ी को डाकू समझता है तो मारवाड़ी बंगाली को ढीली धोती वाला मानता है। गुजराती और मराठी के बीच भी यही भावना काम कर रही है। ईसाई अधिक से अधिक इसी प्रयास में हैं कि कौन-सा व्यक्ति असन्तुष्ट है जिसे हम प्रभु यीशु की शरण में ले लें। सिक्ख अपने को अलग समझते हैं और सिन्धी अपने को। सबके अपने-अपने समाज और संस्थाएं हैं। हिन्दू ने भूल से गिर्जे के आगे सभा कर ली तो ईसाई बंधु सारी सहिष्णुता का परित्याग करके खून-खराबी पर उतर आए। किसी मंदिर में भूल से कोई ईसाई घुस गया तो हिन्दू धर्म के ठेकेदारों ने सत्याग्रह करने प्रारंभ कर दिए। इधर बौद्धों ने पुनः जोर पकड़ा है। छोटी-छोटी संस्थाओं में यह भावना बड़ी तेजी से कार्य कर रही है। मैं नाम लेना नहीं चाहूंगा। एक 'यूनियन है। उसमें बंगाली और हिन्दुस्तानी दो दल हैं।

बंगाली बंगाली को मत देगा और हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानी को। यहां तक कि एक पंजाबी पंजाबी को और एक गुजराती गुजराती को ही मक्कन किराए पर देगा। उससे भी आप अधिक गहराई में जाकर देखिए—एक बीकानेरी राजस्थानी का मकान है। दो राजस्थानी मकान किराए पर लेने गए तो वह पहले बीकानेरी को ही देगा। अब आप सोचिए कि यह संकीर्ण मनोवृत्ति आगे चलकर क्या रूप ले सकती है। छोटी-छोटी यूनियनों एवं देश के चुनावों में भी यही दुर्भावना काम कर रही है। इसीलिए मैं कहता हूं कि हम चाहे स्वीकार न करें, पर हममें साम्प्रदायिक भावना ही अधिक पनप रही है। '...विश्व के प्रांगण में रूसी और अमरीकी गुट जो बन रहे हैं, वे क्या साम्प्रदायिकता का व्यापक रूप नहीं हैं? मैं तो इससे अधिक भयंकर और अमानुषिक कल्पनाएं नहीं कर सकता हूं। लेकिन यह विद्वेष अणु-परमाणु बमों के रूप में जब फूटेगा तब यह असंभव नहीं कि आदमी आदमी का भक्षण करने लगे। इसीलिए मैंने अपने उपन्यास के अंत में लिखा है, ओ प्राणियो, हम शाब्दिक ऐन्द्रिकता में अपने आन्तरिक कलुषता और घृणा को भूल रहे हैं। हम यह भूल रहे हैं कि हम मानव एक प्रकृति के पुत्र हैं। जिस प्रकार एक वृक्ष के फलों के आकार में साम्य नहीं होता उसी प्रकार हममें भी नहीं हैं पर हमारा उद्गम एक ही शक्ति से हुआ है। जिस प्रकार रंग-विरंगे फूल होते हैं, उसी प्रकार हम सभी प्राणी हैं। पर जिस प्रकार सभी फूलों की माता धरती है, उसी प्रकार हम सब प्रकृति की शक्ति हैं। हमें भेदभाव को विस्मृत करना चाहिए, सम्बन्धों से ऊपर उठकर सोचना चाहिए तभी हमारा कल्याण है, तभी हमारी विजय है।'

प्रोफेसर बिलकुल मौन हो गए।

नरोत्तम ने कहा, 'हम आपकी पुस्तक छापेंगे।'

४२

रात को नरोत्तम ने तारिणी को सारा किस्सा सुनाया ।

तारिणी बोली, 'तुम्हें इन्दिरा के बारे में बिलकुल नहीं सोचना चाहिए । जब वह तुमसे सम्बन्ध रखना ही नहीं चाहती फिर तुम उसके पीछे क्यों पड़ते हो ?'

नरोत्तम ने उसकी बात को न मानते हुए कहा, 'इन्दिरा को मैं स्नेह (मन में उसने प्यार ही कहा) करता हूँ और रोमी से घृणा ! मैं चाहता हूँ कि वह किसी भी तरह सुबोध की हो जाए ।'

तारिणी ने हंसकर कहा, 'इससे किसी सुफल की प्राप्ति नहीं होगी । यह सभी बातें किसी भयंकर दुर्घटना का संकेत करती हुई जान पड़ती हैं । मैं समझती हूँ कि आप व्यर्थ किसी दुर्घटना के क्यों जिम्मेवार बनते हैं । इन्दिरा बड़ी हठी और मान वाली है । कहीं वह कुछ कर बैठी तो उचित नहीं रहेगा ।'

नरोत्तम कुछ नहीं बोला और न ही उसने कोई प्रतिज्ञा ही की ।

सड़क पर कोई शराबी नशे में धुत अर्नगल प्रलाप करता हुआ जा रहा था ।

४३

इन्दिरा ने कल शाम से रोमी से बोलना बन्द कर दिया । रोमी बेचारा उसको मना-मनाकर थक गया । उसने अपने विश्वास को रखने के लिए जो कुछ कहा था, एक पापी की तरह कह दिया—साफ़-साफ़ । सुना है कि भगवान से पापी कुछ नहीं छुपाता है और रोमी ने भी इन्दिरा से कुछ नहीं छुपाया ।

दोपहर का तनिक शांत वातावरण ।

पड़ोसिन का अपने बच्चे को डांटना । ऊपर रहनेवाली बुढ़िया बोंस की बहू की अप्रिय-खोखली हंसी ।

रोमी उन सबको सुनता और विचित्र कल्पनाओं में खो जाता। उन कल्पनाओं में कोई तारतम्य नहीं था।

उसके सामने इन्दिरा और उसका चित्र टंगा हुआ हवा के मन्द-मन्द भोंकों से हिल रहा था। कोई चिड़िया उन दोनों की नज़र बचाकर उसपर वीट कर गई थी। हैंगर में डाली हुई रोमी की कमीज भी रोमी की विचारधारा का केन्द्र-बिन्दु बनी हुई थी। जेब में जो स्याही का घब्बा था, उसे लेकर वह अजीबोगरीब व्यर्थ कल्पनाएं कर रहा था।

कहने का तात्पर्य यह है—रोमी के लिए कमरे की प्रत्येक वस्तु सोचने का केन्द्र-बिन्दु थी।

और इन्दिरा ?

अवसन्न-सी बिस्तरे पर पड़ी थी। न हिलती और न बोलती। खाना उसने छोड़ दिया था। जल वह स्वयं उठकर पी लेती थी। आज का दिन भी इसी तरह बीतने लगा।

बुढ़िया ने आकर पूछा, 'क्यों रे राम, वहू की तबीयत कैसी है ?'

'ठीक है।' रोमी ने धीमे से उत्तर दिया।

'अरे, जाकर इसे कोई ओषधि क्यों नहीं दिला लाता, लोअर चित्तपुर रोड पर एक बहुत बड़े कविराज हैं, उन्हींके पास बहू को ले जा।'

'मां जी, यह चलती नहीं है।' रोमी ने इस तरह कहा जैसे वास्तव में इन्दिरा बीमार हो।

'अब समझी !' बुढ़िया ने अपनी आंखों को अजीब तरह से मटकाया और बोली, 'कहीं बच्चा... !'

रोमी हठात् बीच में ही बोला, 'ना-ना, ऐसी कोई बात नहीं। वैसे ही सिर में हल्की-हल्की-सी पीर है।'

'अरे, तुम्हारा तो चूल्हा भी नहीं जला !'

'मैं बाजार से सब कुछ ले आया था।' और रोमी तुरन्त उठकर सन्दूक संभालने लगा। यदि वह ऐसा नहीं करता तो बुढ़िया उसको छोड़ती नहीं।

बुढ़िया के जाते ही रोमी ने इन्दिरा का हाथ अपने हाथ में ले लिया। विग-

लित स्वर में बोला, 'आखिर तुम मुझपर यकीन क्यों नहीं करतीं। मैं सच कहता हूँ कि सुबोध ने मुझे सदा धोखे में रखा है।'

'उसने तुम्हें धोखा दिया। रोमी, तुम बच्चे नहीं हो कि सुबोध तुम्हें बना जाए।' वह ईर्ष्या से स्वर को दबाकर बोली। उसने अपना हाथ छुड़ा लिया।

'मैं प्रभु ईसा की सौगन्ध खाता हूँ कि इससे पहले मैं सुबोध को बिलकुल नहीं जानता था।'

'तुम नास्तिक हो, तुम्हारी सौगन्ध का मैं तनिक भी विश्वास नहीं करती।...' रोमी, सच कहती हूँ कि यह धोखा मैं नहीं सह सकती। जिन व्यक्तियों ने मेरा सर्वनाश करना चाहा, उन्हीं व्यक्तियों के आश्रय में तुम... छिः छिः, मनुष्य का क्या इतना पतन हो सकता है? सुबोध के सामने तुम हाथ फैलाते रहे, नरोत्तम तुम्हें भिक्षुक समझकर पैसे फेंकता रहा। और तुम... तुम, उन रूपों से मेरा पोषण करते रहे। इससे तो मैं भूखों मर जाना उत्तम समझती।' वह सिसक पड़ी।

रोमी ने उसका हाथ अपने हाथ में पुनः लेना चाहा पर इन्दिरा ने ऐसा नहीं होने दिया, 'तुम मुझे छूओ मत, मैं तुमसे भी घृणा करती हूँ। भगवान मुझे अब इतना बल दे कि हमारा सम्बन्ध सृष्टि के समक्ष मधुर अभिनय करता हुआ सदा बना रहे। तुम सुबोध के समक्ष हाथ फैलाना या उस पतित नरोत्तम के सामने गिड़-गिड़ाना, मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूंगी।'

रोमी का स्वर तेज हो गया, 'तुम्हारी अस्थिरता हमें सुफल नहीं दिखा सकती। कह दिया न, प्रेमेन्द्र बाबू के रूप में आए सुबोध से अब मैं जीवन भर बातचीत नहीं करूँगा और तुम्हारी घृणा का पात्र नरोत्तम जब सामने से गुजरेगा तब मुंह घुमाकर चला जाऊँगा।'

'मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं होता।'

'क्यों नहीं होता जबकि मैं तुम्हारा अखंड विश्वास करता हूँ। गलती इन्सान से होती है।'

'छल, धोखा, कपट सभी कुछ इन्सान से ही तो होता है। रोमी, मुझे इस सुन्दर शब्दावली से घृणा है।'

'घृणा, तुम्हें यह घृणा कभी ले डूबेगी।'

रोमी इस वार ताव में आ गया। अपने हाथों से कुर्सी को मजबूती से पकड़कर बोला, 'मैंने जीवन की रक्षा के लिए नरोत्तम से कुछ कर्ज लै लिया तो बुरा हो गया और जब तुमने उससे रुपए उधार लिए तब ?'

'तब मैं उसके मन के पाप से परिचित नहीं हुई थी।'

'और मैं परिचित होकर भी उसे एक अच्छा मनुष्य समझता था क्योंकि तुममें शीघ्र पूर्वाग्रह जाग जाता है।' रोमी एक क्षण चुप रहा। उसके नेत्रों में आंसू चमक आए। वह रुआंसे स्वर में बोला, 'फिर भी मैं अपनी गलती स्वीकार करता हूँ। मुझे नरोत्तम और सुबोध से नहीं बोलना चाहिए था, किंतु परिस्थिति से मैं भी विवश था। आखिर मैं तुम्हें कष्ट में कैसे देख सकता हूँ ? इन्दिरा, तुम्हें क्या पता कि मैं तुम्हारे सुख के लिए कितना नीचे गिर सकता हूँ ? ... अब मुझपर अविश्वास करके मेरी आत्मा को पीड़ा न पहुंचाओ। भविष्य में मैं सुबोध और नरोत्तम से ही नहीं, किसी अन्य पुरुष से भी नहीं बोलूंगा। बस, तुम अब खाना खा लो।'

इन्दिरा के नेत्र भर आए।

रोमी पुनः बोला, 'मैं चंद घड़ी घूमकर आता हूँ, तब तक तुम अपना हठ छोड़ दोगी। ... इन्दिरा, सच कहता हूँ कि मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता। यह सही है कि हमारा सम्बन्ध हो जाने के बाद विषमताओं के कारण हम एक दूसरे को अतीव स्नेह नहीं दे पाए हैं। लेकिन भविष्य में हम पूर्ण सुखी हो जाएंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरा व्यापार भी अब ठीक हो गया है और तुम्हें भी सविस मिलने वाली है।'

रोमी ने इससे अधिक कुछ नहीं कहा। वह बाड़ी से बाहर आया। उसने ट्राम में कदम रखा और सीधा सुबोध के घर पहुंचा। सुबोध कोई उपन्यास पढ़ रहा था। रोमी को देखकर वह शीघ्रता से बोला, 'हलो, आज संध्या-बेला कैसे आना हुआ।'

'सुबोध ...'

'सुबोध ?' चौंक पड़ा सुबोध। वह विस्फारित आंखों से रोमी को देखने लगा।

'आपने मुझे धोखा क्यों दिया ? जब कि आप यह अच्छी तरह जानते थे कि

इन्दिरा आपसे सख्त घृणा करती है ।’

सुबोध चुप रहा ।^६

रोमी ने कहा, ‘भविष्य में मेरा-आपका कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा । मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप गुप्तसे बातचीत नहीं करेंगे । नमस्कार !’

वह पागल की तरह उठा और नरोत्तम के दफ्तर में गया । रास्ते में उसने कुछ भी नहीं देखा । वह भागता रहा, भागता रहा । उसे भी उसने यही कहा, ‘भविष्य में आप मुझसे कोई सम्बन्ध न रखें । इन्दिरा आपसे घृणा करती है और उसके लिए मुझे भी आपसे घृणा करनी चाहिए ।’

नरोत्तम जोर से हंस पड़ा ।

उसकी हंसी सुनकर रोमी को गुस्सा आ गया । वह चीखकर बोला, ‘चुप हो जाओ !’

सचमुच नरोत्तम उसकी चीख सुनकर चुप हो गया ।

दफ्तर में सन्नाटा छा गया ।

रोमी अपनी बांह से आंखों को पोंछता हुआ दफ्तर से बाहर निकला ।

‘आदमी कुत्ते हो गए हैं । लाचारी पर अट्टहास करते हैं । नीच, कमीने... कुत्ते...!’ रोमी निरन्तर बड़बड़ाता जा रहा था ।

वह बावला-सा हो रहा था । वह अपने आपसे कह उठा, ‘यह कोई जीवन है ! इस जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी !’

उसकी आंखों में घृणा थी, गुस्सा था, द्वेष था ।

वह परेशान इतना था कि उसे कुछ सूझ नहीं रहा था । वह एक शराब की दुकान में गया और थ्री एक्स का एक पौवा लेकर दवा की तरह उसे पी गया ।

कभी-कभी हमारे जीवन में आशा के विपरीत बहुत-सी बातें हो जाती हैं जिसे हम जीवन में अस्वाभाविक और कभी-कभी असंभव भी मानते हैं। लेकिन वे सभी घटनाएं-दुर्घटनाएं, यदि हम जीवन को पर्यवेक्षण व गहराई से देखेंगे तो, साकार नाचती हुई नज़र आएंगी। हम मनुष्य हैं, इसलिए हम इस सृष्टि की सुन्दरतम वस्तु की कामना करते हैं, मानव-मानवी निरन्तर अनन्त पथ पर चलकर जीवन का महा सुख प्राप्त करने का सतत प्रयास करते हैं, किन्तु परिस्थिति तथा युग की विषमताएं हमें मनोवांछित फल प्राप्त नहीं करने देतीं। यह परिस्थिति हमें और हमारी बातों को अपने अनुसार छोटी और बड़ी, दैविक-तिलस्मी और न जाने कैसे-कैसे विचित्र रूपों में ढाल देती है कि हम जिज्ञासु बालक की भांति उन्हें टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं। तब हम हठात् उन बातों एवं घटनाओं को देखकर कह उठते हैं—यह संभव नहीं था फिर भी घटित हो गया, ऐसा हो ही नहीं सकता, पर हो गया। आदमी नियति का खिलौना है।

आज रोमी ने पहली बार शराब पी। पहली बार वह असीम व्यथा में इतना डूबा कि उसे अपने आपको भुलाना पड़ा। वह शराव पीकर किसी कोने में लुढ़क गया।

व्यस्त नगर के सभ्य नागरिक उस निरीह-व्यथित प्राणी पर अपनी दृष्टि फेंकर चल पड़ते थे, तृण विचित्र-विचित्र रिमार्क कसकर हंस देते थे।

और इन्दिरा कमरे के घोर अन्धकार में बैठी पागल-सी सोच रही थी कि उसका इस संसार में कोई नहीं है। सभी छल, प्रपंच और धोखे के पुतले हैं। इस अन्धकार की भांति यहां के मनुष्यों के मन काले हैं। सुबोध ने उसे धोखा दिया, नरोत्तम ने उसकी आत्मा पर आघात पहुंचाया, रोमी ने उसका सर्वस्व लेकर उसको जीते जी मार दिया। यह कैसा संसार है ? वह धीरे-धीरे अपने आपको पीड़ा पहुंचाती रही।

घड़ी ने बारह का घंटा बजाया।

उसने अन्धेरे में भयानक आवाज करती हुई दीवार-घड़ी को देखा। देखते-देखते

उसके विचार उग्र हो गए और...?

और उसने भयभीत होकर अपने दोनों हाथों से अपना गला दबा लिया। उसकी आंखें घड़ी पर इस तरह जमीं जैसे वह घड़ी घड़ी नहीं, मृत्यु हो, जो घड़ी की आकृति में दीवार से चिपट गई हो। वह पागल की भांति उन्मत्त होकर मन ही मन चिल्लाई, मैं पागल हो गई हूँ क्या? अच्छा होता यदि मैं पागल हो जाती ताकि इस पतित और नीच रोमी का ऐसा नग्न रूप तो नहीं देखती। इस घृणित चेतना का मुझे अनुभव तो नहीं होता। मां काली, तू मुझे शीघ्र पागल बना दे ताकि मुझे इस दारुण दुख को वहन करना न पड़े। मैं अपनी चेतना और बुद्धि को इसी क्षण नष्ट करना चाहती हूँ। ..

घड़ी की भयंकर टिक् टिक् अब भी सुनाई पड़ रही थी। उसने लपककर अपने द्वार खोल दिए। सभी पड़ोसी सो गए थे। पता नहीं, बुढ़िया क्यों खांस रही थी।

अचानक उसे ख्याल आया कि रोमी अभी तक क्यों नहीं आया? एक बार उसने उसका नाम लेकर अनंत निलय की ओर देखा, फिर उसने घृणा से थूक दिया।

‘रोमी कुत्ता है जो हड्डियों के लिए उन दो व्यक्तियों के पीछे पूंछ हिलाता हुआ होटलों में घूमता होगा।’

‘सुबोध और नरोत्तम!’ वह दोनों का नाम लेकर सांप काटे हुए प्राणी की तरह बेचैन हो गई। उसके अंग-अंग में विष की लहरें उठने लगीं। वह क्रोध में पागल हो गई। उसने अपने आप से एक बार फिर कहा, ‘मैं पागल हो जाती तो कितना अच्छा होता!’

उसने लपककर दीवार पर लगे उस चित्र को खिड़की की राह सड़क पर फेंक दिया जो उसने रोमी के साथ उतरवाया था। उसे फेंककर उसने अपने बालों को खींचा और फिर शरीर पर एक-दो बार चुटकी भरकर इस बात का पता लगाया कि वह वास्तव में पागल हो गई है या नहीं?

फिर उसने रोमी का एक दूसरा चित्र सड़क पर फेंक दिया और चित्र फेंककर उसने कहा—मैं पागल हो गई हूँ।

वह कुछ देर तक वैसी ही बैठी रही।

फिर उसने उस अन्धकार को कमरे से भगाया। प्रकाश होते ही उसे नया-नया

अनुभव हुआ ।

उसने कुछ लिखना शुरू किया और कुछ देर तक लगातार लिखती रही । जब उसने लिख लिया तो वह दृष्टि से उस लिखे हुए कागज को देखा और पुनः अन्धकार कर लिया ।

ऐसा भीषण अन्धकार जो जीवन में एक बार ही होता है ।

४५

सवेरे-सवेरे नरोत्तम इन्दिरा के यहां आया ।

नीचे से आवाज लगाई, 'रोमी, मिस्टर रोमी !'

उत्तर न पाकर वह ऊपर चढ़ा । बुढ़िया ने ऊंचे स्वर में कहा, 'भीतर होंगे बाबा, मियां-बीबी में भगड़ा चल रहा है ।'

नरोत्तम ने अनिच्छा से कहा, 'मैं अपना पावना लेने आया हूं ।' इतना कहकर वह चुप हो गया । क्षण भर उसने इन्दिरा के कमरे की ओर देखा और फिर विचारने लगा कि जब तक रोमी मेरी रकम नहीं देगा तब तक मैं यहां आना नहीं छोड़ूंगा ।

उसने जोर से दरवाजा खटखटाया ।

कोई उत्तर नहीं मिला । लाचार उसने पड़ोसी को पुकारा । पड़ोसी ने साफ कह दिया कि वे इन मियां-बीबी के भगड़े में जरा भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते ।

नरोत्तम को एक उपाय सूझा । उसने किवाड़ के बीच से झांककर देखा । उसके मुंह से एक चीख निकली—'खून !'

वह जोर से चिल्लाया—'खून...खून खून !'

बाड़ी के सभी लोग एकत्र हो गए । किवाड़ तोड़े गए । इन्दिरा फांसी के झूले में झूल रही थी ।

देखते-देखते चारों ओर हल्ला मच गया । नरोत्तम को वह कागज मिल गया जो इन्दिरा ने लिखा था । उसने चुपके से उस कागज को अपने कब्जे में किया और

बोला, 'मैं इनके घर वालों को बुलाकर लाता हूँ !'

नरोत्तम सीधा वहाँ से चलकर एकान्त में आया। उस कागज को खोलकर पढ़ने लगा—

मैं अपनी इच्छा से आत्महत्या कर रही हूँ। आत्महत्या का विचार एकाएक मेरे मन में नहीं आया। आज नहीं, वर्षों से यह विचार मेरे मन में चक्कर लगा रहा है। पहली बार मेरे प्रथम पति सुबोध ने जब मेरा सर्वस्व लेकर एक पहाड़िन छोकरी के साथ व्यभिचार किया था तब मैं ग्लानि में इतनी डूबी, इतनी डूबी कि मैंने पहाड़ से कूदकर जीवन-लीला समाप्त करनी चाही। इसके बाद जब मैं मिस्ट्रेस थी और लड़के तक मुझसे सख्त घृणा करने लगे तब मुझे अपना जीवन व्यर्थ लगा और मैंने अपने आपको मिटाना चाहा था। और अब रोमी ने मेरे सभी स्वप्नों को खंड-खंड कर दिया है। मैं स्वप्न की समाप्ति के बाद जीवित रहना नहीं चाहती। रोमी द्वारा विश्वासघात पाकर मेरा मन सभी अनुभूतियों से हीन हो गया है। अब मेरे मन में घृणा के अलावा कुछ भी नहीं है। घृणा लेकर व्यक्ति का जीना दूभर होता है, पीड़ाजनक होता है।

आज की रात उतनी ही क्रूर है जितनी एक दुर्भाग्यग्रस्त प्राणी का भाग्य ! मैं उस कठोर व निर्दय भाग्य की अनवरत ठोकें खा रही हूँ। मुझे विश्वास है— इस दुर्दान्त दुख के कारण मैं शीघ्र ही पागल हो जाऊँगी, संभवतः मैं पागल हो भी गई हूँ तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि मैं अपनी स्वाभाविक चेतना और बुद्धि को सर्वथा खो बैठी हूँ। यह मेरा रोमी क्रूर अपराधी है, घृणा का देवता है, भूठ का सागर है। यह मुझे अन्तिम क्षण तक छलता रहा, मुझे धूमने को कहकर वह फिर सुबोध और नरोत्तम के यहाँ गया। प्रकृति के इस निर्दय अभिनय को मैं अब सहन नहीं कर सकती। उसकी यह तपती हुई घृणा मेरा अन्तर नहीं सह सकता। उसकी छल नीति मेरे कोमल मन को खूँखार भेड़िए की तरह नोच रही है। ओ नीच प्राणी ! प्रकृति तुम्हें भी कठोर से कठोर दंड देगी।

आज का मनुष्य विश्वसनीय नहीं। मुझे लगा कि मनुष्यों के बन्धनों व रिश्तों के मूल में भयंकर स्वार्थ कार्य कर रहा है। जब यह धिनौना चरम सत्य मेरे सामने आया तब मनुष्य मुझे यंत्र-सा लगा। उसके भाव-लोक में यंत्रों की अप्रिय-कर्कश

ध्वनि सुनाई पड़ी। और रोमी एक यंत्र की शकल में इधर-उधर भागता हुआ दिखाई पड़ा, जैसे यह लोहे का मनुष्य हो।

सचमुच वह लोहे का आदमी है। वह मुझे एक कवि के रूप में मिला और अन्त में एक गवार-अनपढ़ फेरीवाले की तरह नीरस बन गया। उसकी भावुकता, उसके सद्बिचार, उसकी पवित्र शब्दावली पता नहीं किस शून्य में विलीन हो गई। मनुष्य के स्वभाव का यह परिवर्तन भी मेरे लिए नया ही था।

एक बार मैं फिर कहूंगी कि मैं अपनी इच्छा से आत्महत्या कर रही हूँ। मुझे अपना जीवन भारस्वरूप लगता है, क्योंकि इस संसार में मेरा अपना कोई नहीं है। मैं अकेली हूँ, नितान्त अकेली !

मैं प्रार्थना करूंगी कि मेरी मृत्यु को लेकर बेचारे उस दीन प्राणी ईसाई रोमी को कोई नहीं सताए, वह ईसाई बना रहे, वह मेरे कारण राम बना था और अब मेरी आज्ञा से पुनः रोमी बन जाए, प्रार्थना करे, गिर्जे जाए।

हां, मेरी लाश को दफनाएं नहीं, उसे हिन्दू-पद्धति से जलाया जाए।

मैं किसीको भी आशीर्वाद नहीं देती और न यह कहने को तैयार हूँ कि मैं किसीसे प्यार करती हूँ। मैं सभी मनुष्यों से घृणा करती हूँ, घृणा ! हां, मैं अब पागल हो चुकी हूँ !

—इन्दिरा

नरोत्तम ने उस पत्र को अपनी जेब में डाला और सीधा सुबोध के पास गया। उसने सुबोध को सारी बातें बताकर घृणा से कहा, 'इन्दिरा ने एक पत्र लिखा है कि मैंने आत्महत्या अपनी इच्छा से की है किंतु मैं उस ईसाई के बच्चे को इस केस में फंसाकर मृत्युदंड दिलाऊंगा, क्योंकि यह सत्य है कि इन्दिरा के प्यार में पागल रोमी यह अवश्य कहेगा कि मैंने ही इसे मारा है, मैं इसका हत्यारा हूँ।'।

सुबोध पर वज्रपात हो गया। वह व्याकुल स्वर में बोला, 'नरोत्तम बाबू, मनुष्य को इतना नीचे नहीं गिरना चाहिए। हमारे बीच यही घृणा दुराव उत्पन्न करके हमें पथ-विमुख कर रही है। मनुष्य से मनुष्य का प्यार छीन रही है। जीवन के महाप्रांगण में अनेक रूपों में सहस्रों सुमन खिले हैं किंतु उनकी मां धरणी है, वे सभी उसकी सन्तान हैं और हम भी उसी उसी मां के बच्चे हैं।

‘मनुष्य को मनुष्य से घृणा नहीं करनी चाहिए। क्या वह किसीसे घृणा करके जीवन के सच्चे और आत्त्विक आनन्द को प्राप्त कर सकता है? ईसाई, हिन्दू, मुसलमान हम सभी एक ही हैं, किंतु आज हम उस चरम सत्य को भूल बैठे हैं। हम भटक गए हैं। इसलिए मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि इस सत्य को पहचानो—हमारे अन्तराल में अपार, अगाध और अलौकिक प्रेम-सागर है। इस सागर की अनंत लहरें विश्व-मानवों और भारतीयों के हृदय और मस्तिष्क में उज्ज्वल और पवित्र ज्योति को जन्म दे रही हैं, उन लहरों के चिरन्तन स्पर्श के लिए हमें अपने हृदयों की इस कलुषित घृणा को त्यागना होगा तभी हमारा पथ मंगलमय, निष्कण्टक और आनन्ददायक होगा। तभी हम भय, युद्ध और द्वेष से मुक्त हो सकेंगे।’

नरोत्तम निरुत्तर रहा। सुबोध ने उसका कन्धा पकड़कर स्नेहपूरित स्वर में कहा, ‘मैं समझता हूं कि तुम रोमी के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहोगे। इस पत्र को मुझे दे दो, साधनहीन होकर तुम पाप की ओर अग्रसर नहीं होओगे।...’ दे दो न।’

नरोत्तम ने उस पत्र को एक अपराधी की भांति विवशता से दे दिया।

सुबोध ने पत्र को अपनी जेब में रखकर कहा, ‘चलो, हमें उसका दाह-संस्कार करना है। सुनंदा को भी खबर करनी है।’

४६

इन्दिरा का शव आंगन में निस्पंद पड़ा था। उसकी आंखें फटकर बीभत्स भावना की सर्जना कर रही थी। समीप रोमी दूटे इन्सान-सा बैठा व्यथा भरा करुण क्रन्दन कर रहा था। इन्दिरा का पांडुर मुख, अन्धकार की भांति उसके काले अधर, सीप-सी दीप्त उसकी आंखें, उसका ठंडा शरीर सभी रोमी को अनन्त पीड़ाओं से बेध रहे थे।

सुबोध जड़वत् खड़ा था।

नरोत्तम और तारिणी निश्चल और मौन खड़े थे ।

सुनन्दा रोते-रोते थक गई थी ।

सुबोध सोच रहा था—इन्दिरा इतनी भाग्यशालिनी है, मृत्यु उपरान्त उसने सबका अगाध स्नेह और आदर पा लिया । जो सबसे घृणा करती थी, उसने सबका प्यार पा लिया ।

आखिर शव मरघट की ओर चला ।

रास्ते में एक भिखारी अपने दर्दिले स्वर में गा रहा था—

पेये छि छुटि बिदाय दाओ भाई !

सबारे आमि प्रणाम करे जाई ।

फिराये दिनू द्वारेर चाबी

राखि ना आर घरेर दाबी

सबार आजि प्रसाद वाणी चाई ।

अनेक दिन छिलाम प्रतिवेशी

दियेछि जत नियेछि तार बेशी ।

प्रभात हये ऐसे छे राति

निबिया गेल कोनेरे बाति

पड़ेछे डाक चलेछि आमि ताई ।*

तीनों भुवनों के समस्त दुख अपने स्वर में उड़ले हुए भिखारी गा रहा था—
मुझे छूट्टी मिल गई, अब विदा दो, हे भाई, मैं सबको प्रणाम करके जा रहा हूँ ।

मैं द्वार की कुंजी लौटा रहा हूँ, अब इस गृह के द्वार कभी भी बन्द नहीं रखूंगा ।
आज मैं सबके आशीर्वचन चाहता हूँ ।...बहुत दिनों तक हम पड़ोसी रहे, मैंने जितना दिया उससे अधिक ले चुका हूँ । अब रात्रि गुजर गई, प्रभात हो चुका है ।
दीपक बुझ गया है । बुलावा आ चुका है, इसलिए मैं जा रहा हूँ ।

अर्थी मरघट पर पहुँच गई ।

सचमुच इन्दिरा सभी को अन्तिम प्रणाम करके चली गई ।

* महाकवि रवीन्द्र का गीत

सुबोध सोच रहा था—तुम जा रही हो, अनन्तपथ की अनन्त मंजिल को, ईश्वर तुम्हें शांति दे ।

रोमी का हर अश्रु अपनी मौन भाषा में कह रहा था—‘तुमने विदा मांग ली, फिर मैं क्यों रहूँ । मैं अब एक क्षण भी जीवित रहना नहीं चाहता । मैं आऊंगा, तुम प्रतीक्षा करना, मैं इस स्पन्दनहीन जीवन को अधिक वहन नहीं करूँगा ।’ उसने भावावेश में इन्दिरा के मृत कपोलों को चूम लिया । उसके अन्तस् से फूट निकला, ‘तुम जीवन में प्रिय थी और मृत्यु में भी प्रिय हो ।’

नरोत्तम को अपरिसीम वेदना थी ।

दुख, केवल दुख !

वेदना का साम्राज्य !!

